ISSN : 2394 6989

अक्षय खेती

कृषि जानकारी से परिपूर्ण, खेत-खलिहान को समर्पित पत्रिका

2024
अंक–11

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

ISSN : 2394 6989

अक्षय खेती

कृषि जानकारी से परिपूर्ण, खेत-खलिहान को समर्पित पत्रिका

2024

अंक-11

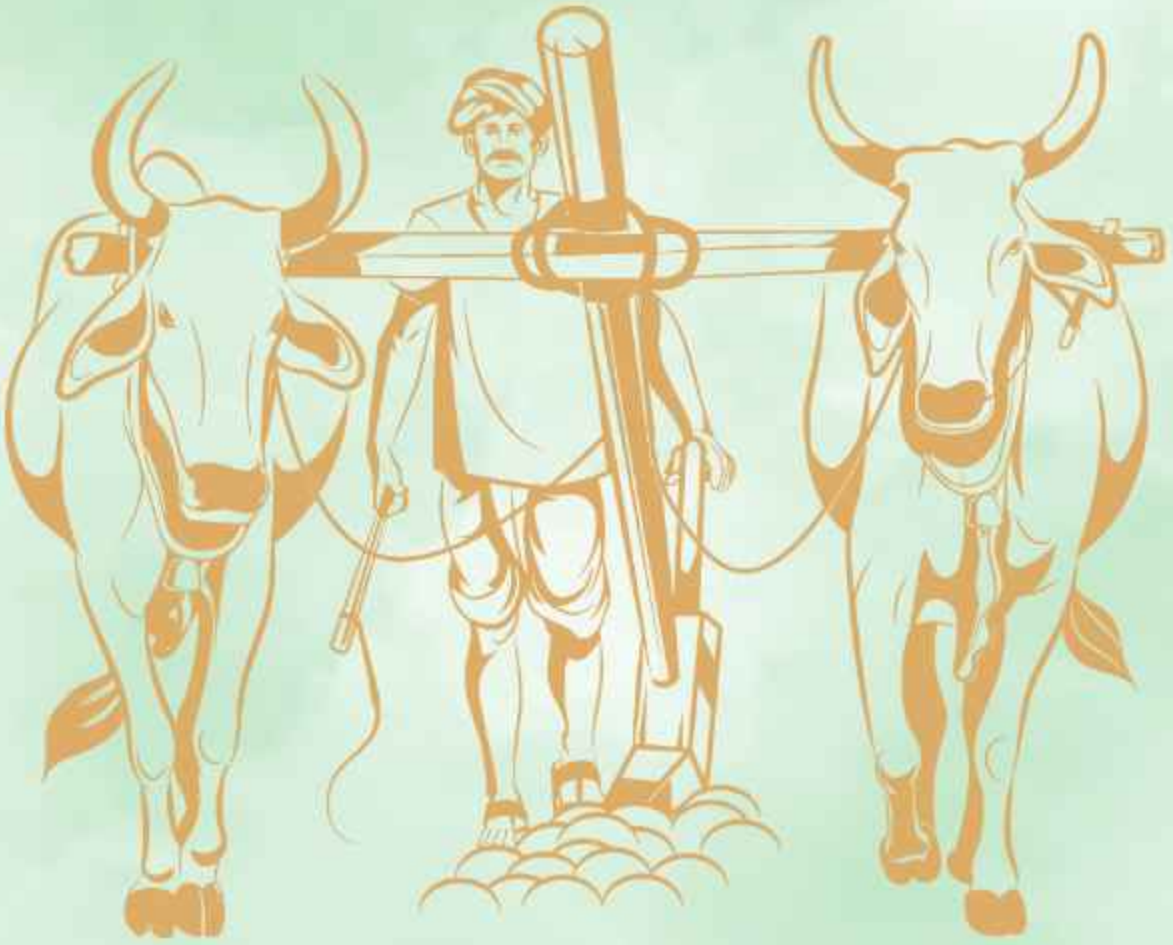

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर

पोस्ट ऑफिस : बिहार वेटनरी कॉलेज, पटना-800 014 (बिहार)

अक्षय खेती

कृषि जानकारी से परिपूर्ण, खेत-खलिहान को समर्पित पत्रिका

-:: प्रकाशक ::-

निदेशक
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

-:: संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति एवं संपादक मंडल ::-

डॉ. अनुप दास, निदेशक	**अध्यक्ष**
डॉ. आशुतोष उपाध्याय, प्रभागाध्यक्ष	उपाध्यक्ष एवं संयोजक
डॉ. बाल कृष्ण झा, प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. शिवानी, प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. ज्योति कुमार, वरिष्ठ वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. रजनी कुमारी, वरिष्ठ वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. कुमारी शुभा, वैज्ञानिक	सदस्य
श्रीमती प्रभा कुमारी, सहायक प्रशासनिक अधिकारी	सदस्य
श्रीमती अणिमा प्रभा, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी (हिंदी अनुवादक)	सदस्य
श्री आकाश पटेल, वैयक्तिक सहायक	सदस्य
श्री उमेश कुमार मिश्र, वरिष्ठ तकनीकी सहायक (हिंदी अनुवादक)	सदस्य-सचिव

नोटः अक्षय खेती में प्रकाशित लेखों में विचार, रेखांकन, छाया चित्र एवं अन्य सामग्री लेखकगण की है। इस संबंध में संपादक मंडल की सहमति आवश्यक नहीं है।

मुद्रकः

वर्चु इंटरप्राइजेज

पटना, संपर्कः 9304410331, 9162040001

सत्यमेव जयते

डॉ. एम. एल. जाट
सचिव, डेयर एवं महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग
एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001
दूरभाष : 23382629, 23386711
फैक्स: 91-11123384773
ई-मेल : dg.icar@nic.in

संदेश

देश के पूर्वी क्षेत्र में कृषि के महत्त्व को सुदृढ़ रूप से स्थापित करते हुए, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना निरंतर कृषि विकास को गति प्रदान करने और लघु एवं सीमांत किसानों की आय तथा आजीविका में सुधार लाने के लिए प्रयासरत है। संस्थान में फसल उत्पादन, भूमि एवं जल संसाधन प्रबंधन, बागवानी, डेयरी, बकरी पालन, मत्स्यिकी और कुक्कुट पालन जैसे विविध क्षेत्रों में उल्लेखनीय अनुसंधान कार्य किए जा रहे हैं। कृषि प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन पर आधारित तकनीकों के विकास को विशेष प्राथमिकता दी गई है, जिससे कृषि उत्पादों की उपयोगिता और किसानों की आय में वृद्धि हो सके। साथ ही, ग्रामीण समुदायों के समग्र विकास और आत्मनिर्भरता को बढ़ाने के लिए संस्थान सामाजिक-आर्थिक पहलुओं से जुड़े अनुसंधान में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

संस्थान जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा हेतु धान परती भूमि प्रबंधन, जलवायु अनुकूल कृषि, प्राकृतिक खेती, पोषण वाटिका, सौर ऊर्जा व समेकित कृषि प्रणाली पर महत्वपूर्ण शोध कर रहा है।

कृषि उत्पादन वृद्धि के उद्देश्य से संस्थान द्वारा किए जा रहे शोध कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, ताकि उन्नत तकनीकें पूर्वी क्षेत्र के आम किसानों तक सहजता से पहुँच सकें और जलवायु परिवर्तन की परिस्थितियों में उनकी आय बढ़ाने में सहायक बनें।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना अपनी गृह पत्रिका 'अक्षय खेती' का प्रकाशन कर रहा है। पूर्ण विश्वास है कि पत्रिका का यह अंक भी अपने पूर्ववर्ती अंकों की तरह जानकारियों को किसानों एवं अन्य हितधारकों तक प्रभावी रूप से पहुँचाने में सफल रहेगा।

पत्रिका के सफल प्रकाशन पर हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

(एम. एल. जाट)

भाकृअनुप
ICAR
डॉ. ए. के. नायक
उप महानिदेशक (प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कक्ष क्र. 101, कृषि अनुसंधान भवन II, नई दिल्ली-110 012

प्राक्कथन

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना, जो परिषद के प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन प्रभाग के अंतर्गत आता है, देश का एक महत्त्वपूर्ण संस्थान है। यह संस्थान सफलतापूर्वक भूमि और जल संसाधनों के कुशल प्रबंधन, उन्नत तकनीकों द्वारा अन्न, फल व सब्जियों का उत्पादन एवं प्रसंस्करण, मत्स्य, कुक्कुट, बकरी पालन, पशुधन एवं डेयरी प्रबंधन तथा सामाजिक-आर्थिक पहलुओं जैसे विषयों पर अनुसंधान कार्य करते हुए पूर्वी क्षेत्र के किसानों एवं अन्य हितधारकों को सेवाएं प्रदान कर रहा है।

किसानों की आजीविका में सुधार और उनकी आय में निरंतर वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए यह संस्थान पूरी निष्ठा से कार्यरत है। इसके लिए, यह जल के बहु-आयामी उपयोग, पोषण सुरक्षा, समेकित कृषि प्रणाली, धान परती भूमि प्रबंधन, प्राकृतिक एवं जैविक खेती, अनुसूचित जाति उप योजना, जनजातीय उप योजना और 'निरंतर आय और कृषि स्थिरता के लिए सहभागी अनुसंधान अनुप्रयोग जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर कार्य कर रहा है। साथ ही, कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम, प्रक्षेत्र भ्रमण, प्रक्षेत्र दिवस और जागरूकता कार्यक्रम जैसे माध्यमों से भी किसानों को लाभान्वित कर रहा है।

प्रधानमंत्री जी द्वारा देश को समर्पित की गई फसलों की 109 जलवायु-अनुकूल और जैव-संवर्धित किस्मों में से 02 किस्मों का इस संस्थान से होना वास्तव में अत्यंत प्रशंसनीय है।

किसानों में जागरूकता लाने और गाँवों तक उन्नत तकनीकें पहुँचाने में संस्थान की पत्रिका 'अक्षय खेती' की भूमिका प्रशंसनीय है। मैं इस पत्रिका के माध्यम से हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन को जनमानस तक पहुँचाने के प्रयास की सराहना करता हूँ और इसके सफल प्रकाशन हेतु संपादक मंडल एवं लेखकों को शुभकामनाएँ देता हूँ।

अमरेश

(अमरेश कुमार नायक)

डॉ. अनुप दास
निदेशक-सह-अध्यक्ष
संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर
पोस्ट ऑफिस : बिहार वेटनरी कॉलेज, पटना-800 014
दूरभाष : 0612-2223962
फैक्स : 0612-2223956
ई-मेल: directoricarrcer@gmail.com

निदेशक की कलम से...

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना पिछले 24 वर्षों से पूर्वी भारत के सात राज्यों - बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, छत्तीसगढ़, पूर्वी उत्तर प्रदेश और असम में कृषि क्षेत्र के समग्र विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य कृषि प्रौद्योगिकी, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और जलवायु परिवर्तन के अनुकूल उपायों को लागू करके किसानों की आजीविका में सुधार लाना है।

इस संस्थान के अंतर्गत कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केंद्र, रांची (झारखंड) ने पहाड़ी और पठारी क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन अनुकूल कृषि पद्धतियों और समेकित कृषि प्रणालियों के विकास में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं।

कृषि विज्ञान केंद्र, बक्सर (बिहार) और कृषि विज्ञान केंद्र, रामगढ़ (झारखंड) द्वारा क्षेत्रीय स्तर पर किसानों को उन्नत कृषि तकनीकों, जलवायु अनुकूल कृषि विधियों और समेकित कृषि प्रणालियों के बारे में प्रशिक्षण प्रदान किया गया है, जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि और किसानों की आय में सुधार हुआ है।

संस्थान ने पूर्वी भारत के सात राज्यों में विविध कृषि तकनीकों के व्यापक प्रचार-प्रसार के साथ-साथ किसानों को प्रशिक्षण प्रदान किया तथा उनके लिए कार्यशालाओं का आयोजन किया है। इन प्रयासों से इन राज्यों में कृषि उत्पादकता में सुधार हुआ है और किसानों को जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से निपटने के लिए आवश्यक जानकारी और संसाधन प्राप्त हुए हैं।

संस्थान ने धान-परती भूमि प्रबंधन, जल के बहुआयामी उपयोग, निरंतर आय कृषि स्थिरता हेतु सहभागी अनुसंधान अनुप्रयोग, पोषण सुरक्षा, समेकित कृषि प्रणाली, जलवायु अनुकूल खेती, पशुधन एवं मत्स्य प्रबंधन, प्राकृतिक खेती और सौर ऊर्जा जैसे विषयों पर भी उल्लेखनीय कार्य किए हैं। प्रधानमंत्री जी द्वारा हाल ही में समर्पित की गई 109 जलवायु-अनुकूल और जैव-संवर्धित किस्मों में से 02 किस्में हमारे संस्थान से विकसित की गईं, जो हमारे प्रयासों के परिणाम हैं।

रजत जयंती शुभारंभ के इस अवसर पर, हम सभी कृषि के विकास में निरंतर योगदान देने और किसानों की आय में वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए अपनी प्रतिबद्धता को और मजबूत करने का संकल्प लेते हैं। मैं अक्षय खेती -2024 के अंक -11 में योगदान देने वाले सभी लेखकों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

अनुप दास

(अनुप दास)

डॉ. आशुतोष उपाध्याय
उपाध्यक्ष
संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

उपाध्यक्ष, संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की कलम से...

कृषि एक महत्वपूर्ण व्यवसाय है। यह न केवल हमारे भरण-पोषण के लिए आवश्यक है, बल्कि देश की अर्थव्यवस्था को सशक्त करने में भी अहम भूमिका निभाती है। कृषि पुरातन काल से की जाती रही है, परन्तु उस समय हमारे देश में आबादी व पशुधन का दबाव नहीं था, इसलिए उत्पादन पर्याप्त था। संप्रति, बढ़ती जनसंख्या व पशुधन, जीवन-यापन शैली व जलवायु में परिवर्तन, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, असंतुलित उर्वरकों के व्यवहार से मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, बाढ़, सुखाड़, छोटे एवं बंटे हुए भूभाग, संसाधनों का अनुचित दोहन, कृषि एवं पशुधन में उन्नत प्रजातियों का चयन न होना, पशुधन के पोषण, स्वास्थ्य एवं प्रबंधन के बारे में जानकारी का अभाव होना आदि कई चुनौतियाँ हम सबके समक्ष हैं। इन सब चुनौतियों से निपटने के लिए निरंतर शोध, तकनीक/ रणनीति का विकास और किसान भाइयों तक सहजता व सुगमता से पहुंचना आवश्यक है, ताकि वे इस ज्ञान को ग्रहण कर सकें और अपनी खेती में अपनाकर आय और जीविकोपार्जन में वृद्धि कर सकें।

राजभाषा हिन्दी अभिव्यक्ति का एक सरल माध्यम है। इसके द्वारा आसानी से किसान भाइयों तक पहुँचा जा सकता है और नवीन कृषि ज्ञान, तकनीकों और उपलब्धियों से उनको अवगत कराया जा सकता है। इसी उद्देश्य के साथ 'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना' की पत्रिका अक्षय खेती –2024 अपने नए कलेवर में प्रस्तुत है।

22 फरवरी 2025 से संस्थान में रजत जयंती वर्ष का शुभारंभ हो रहा है। इस अवसर पर संस्थान के प्रत्येक व्यक्ति को मैं बधाई देता हूँ और कामना करता हूँ कि हमारा संस्थान एक टीम बनाकर अनुसंधान, शिक्षा एवं प्रचार व प्रसार करने में निरंतर प्रयासरत रहे, नए नए कीर्तिमान स्थापित करे, नित नई ऊँचाइयों को छुए और शिखर पर अपना परचम लहराए।

मैं अक्षय खेती – 2024 (अंक-11) के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ और संपादक मण्डल के समस्त सदस्यों एवं लेखकगणों को हार्दिक शुभकामनाएं देता हूँ।

आशुतोष उपाध्याय

(आशुतोष उपाध्याय)

विषय-सूची

क्र. सं.	आलेख	पृष्ठ
01.	**हिंदी के प्रचार-प्रसार में तकनीक का महत्त्व** अनुप दास, आशुतोष उपाध्याय, शिवानी, पुष्पनायक, विपुल राज, अणिमा प्रभा एवं उमेश कुमार मिश्र	01-02
02.	**औषधीय गुणों से भरपूर अश्वगंधा : भारतीय किसानों के लिए आर्थिक उन्नति का साधन** मुनेश्वर प्रसाद मंडल	03-04
03.	**मसूर की वैज्ञानिक खेती** इन्द्रजीत, सुधांशु शेखर, अशोक कुमार दुबे, धर्मजीत खेरवार, सन्नी कुमार, शशि कान्त चौबे एवं वीरेन्द्र कुमार यादव	05-07
04.	**सुकर पालन: झारखंड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त करने का सुनहरा अवसर** सुधांशु शेखर, इंद्रजीत, धर्मजीत खेरवार, सन्नी कुमार, राकेश कुमार एवं रीना कमल	08-09
05.	**बिहार के आर्द्रभूमि क्षेत्र में किसानों की आजीविका सुधार के लिए मत्स्य पालन की महत्वपूर्ण तकनीकें** विवेकानंद भारती, तारकेश्वर कुमार, सुरेंद्र कुमार अहिरवाल, रोहन कुमार रमण, जसप्रीत सिंह एवं कमल शर्मा	10-13
06.	**बकरी का दूध : सेहतमंद जीवन की कुंजी** राकेश कुमार, रजनी कुमारी, शंकर दयाल, पी. सी. चंद्रन, रीना कमल, प्रदीप कुमार राय, ज्योति कुमार, मनोज कुमार त्रिपाठी, सुरेंद्र कुमार अहिरवाल, अमिताभ डे, कमल शर्मा, अनिर्बन मुखर्जी, सुधांशु शेखर एवं अनुप दास	14-16
07.	**पूर्वी भारत में कृषिवानिकी: आजीविका सुरक्षा और पर्यावरणीय संरक्षण** अभिषेक कुमार, शिवानी, संजीव कुमार, गौस अली, वेद प्रकाश, अकरम अहमद एवं उमेश कुमार मिश्र	17-18
08.	**जल संकट के समाधान की ओर: सीवेज जल आधारित चारा उत्पादन** गौस अली, हर्देव राम, राकेश कुमार, राकेश कुमार, अभिषेक कुमार एवं संजीव कुमार	19-20
09.	**आंवला मूल्यसंवर्धन: महिला उद्यमियों के लिए सुनहरा अवसर** प्रेरणा नाथ, एस. जे. काले एवं ए. के. सिंह	21-28
10.	**गर्मी के मौसम का जुगाली करने वाले पशुओं पर पड़ने वाले कुप्रभाव से बचाव** अनिर्बन मुखर्जी, एम. के. त्रिपाठी, बी. साईनाथ, तारकेश्वर कुमार, पी. सी चंद्रन एवं पंकज कुमार	29-31
11.	**वर्ष भर पोषित हरा चारा उत्पादन की नवीन तकनीकियों द्वारा समृद्ध किसान** संजीव कुमार गुप्ता, अनिल कुमार सिंह, राजेश कुमार, अंशुमान कोहली एवं महेश कुमार सिंह	32-39
12.	**गरीबों की औषधि: घोंघा विपणन और उपयोग** सुदय प्रसादएवं मुकेश कुमार सिन्हा	40-45
13.	**कृषि नवाचार के लिए चैट जी पी टी की भूमिका** आरती कुमारी, आशुतोष उपाध्याय, कीर्ति सौरभ, पवनजीत एवं अनुप दास	46-49
14.	**भारतीय कृषि की विकास यात्रा एवं तकनीकी परिवर्तन** रोहन कुमार रमण, विवेकानंद भारती, धीरज कुमार सिंह, उज्ज्वल कुमार, अभय कुमार, गौतम रंजन, तारकेश्वर कुमार, अकरम अहमद, वेद प्रकाश, मो. मोनोब्रुल्लाह , बी. साईनाथ एवं अनिर्बन मुखर्जी	50-55
15.	**लैबियो गोनियस की जीवन-अवस्था के अनुसार पालन-पोषण पद्धतियाँ** सुरेंद्र कुमार अहिरवाल, जसप्रीत सिंह, कमल शर्मा, तारकेश्वर कुमार, राकेश कुमार, विवेकानंद भारती, अमरेन्द्र कुमार एवं उमेश कुमार मिश्र	56-57
16.	**खेसारी साग: धान-परती भूमि में किसानों के लिए टिकाऊ और लाभकारी विकल्प** कुमारी शुभा, ए.के. चौधरी, अनिर्बन मुखर्जी, मनीषा टम्टा, शिवानी, उमेश कुमार मिश्र, राकेश कुमार, संजीव कुमार एवं अनुप दास	58-59
17.	**लाइववेयरर रंगीन मछलियों का प्रजनन एवं प्रबंधन** तारकेश्वर कुमार, कमल शर्मा, सुरेन्द्र कुमार अहिरवाल, विवेकानंद भारती, पंकज कुमार एवं अमरेंद्र कुमार	60-64
18.	**कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं मशीन लर्निंग का अनुप्रयोग** मणिभूषण, आशुतोष उपाध्याय, संजीव कुमार, शिवानी, अजय कुमार, अकरम अहमद, आरती कुमारी, सोनका घोष, सरफराज अहमद एवं अनिल कुमार	65-67
19.	**औषधीय गुणों से भरपूर है-सहजन** प्रदीप कुमार, रामकेवल, दिलीप कुमार तिवारी एवं राजीव कुमार	68-71

विषय-सूची

क्र. सं.	आलेख		पृष्ठ
20.	**कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए जल के बहुआयामी उपयोग: स्थायी समाधान की ओर एक कदम** अकरम अहमद, आशुतोष उपाध्याय, अनुप दास, आरती कुमारी, वेद प्रकाश, सुरेन्द्र कुमार अहिरवाल, अजय कुमार, शिवानी, टी. के. कोले, पवन जीत, एम के त्रिपाठी, रचना दूबे, अभिषेक कुमार एवं अभिषेक कुमार दूबे	—	72-75
21.	**बेर की उन्नत बागवानी** महेंद्र कुमार चौधरी, डी. के. सरोलिया, पवन सिंह गुर्जर एवं वेद प्रकाश	—	76-79
22.	**सूक्ष्म जलवायु विनियमन के लिए कृषि-भौतिकीय तकनीकें** वेद प्रकाश, आरती कुमारी, कीर्ति सौरभ, आशुतोष उपाध्याय, अकरम अहमद, सोनका घोष एवं अनुप दास	—	80-81
23.	**अल्ट्रासोनोग्राफी – बकरियों के प्रजनन प्रबंधन हेतु प्रभावी तकनीक** रजनी कुमारी, रमेश तिवारी, प्रदीप कुमार राय, मनोज कुमार त्रिपाठी, संजय कुमार, शंकर दयाल, ज्योति कुमार, राकेश कुमार, पी.सी. चंद्रन, अमिताभ डे एवं कमल शर्मा	—	82-85
24.	**पशुओं से मनुष्यों में फैलने वाले कुछ प्रमुख रोग और बचाव के तरीके** मनोज कुमार त्रिपाठी, राकेश कुमार, रजनी कुमारी, प्रदीप कुमार राय, ज्योति कुमार, पी. सी. चंद्रन एवं शंकर दयाल	—	86-87
25.	**कार्बन खेती: टिकाऊ कृषि एवं आयवर्धन का एक स्थायी विकल्प** रचना दूबे, सीमा कुमारी, उमेश कुमार मिश्र एवं अभिषेक कुमार	—	88-91
26.	**भारत में फसल उत्पादन के लिए कुशल कृषि-प्रौद्योगिकियां** सोनका घोष, वेद प्रकाश, कीर्ति सौरभ, मणिभूषण एवं आशुतोष उपाध्याय	—	92-94
27.	**हरित ऊर्जा की उपयोगिता** मनीषा टम्टा, नेहा चंद, हिमानी बिष्ट, नेहा पारीक, उमेश कुमार मिश्र, अभिषेक कुमार, अभिषेक कुमार दूबे, कुमारी शुभा एवं शिवानी	—	95-97
28.	**झारखंड के पूर्वी पहाड़ी एवं पठारी क्षेत्र के कोड़ो बत्तख जर्मप्लाज्म का निरूपण** रीना कमल, पी.सी. चंद्रन, अमिताभ डे, ए.के. मिश्रा, रेखा शर्मा, अणिमा प्रभा, रजनी कुमारी, राकेश कुमार, कमल शर्मा, उमेश कुमार मिश्र एवं अनुप दास	—	98-104
29.	**भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में वर्ष 2024 के दौरान राजभाषा संबंधी महत्वपूर्ण गतिविधियाँ** अनुप दास, आशुतोष उपाध्याय, बाल कृष्ण झा, शिवानी, ज्योति कुमार, रजनी कुमारी, कुमारी शुभा, अणिमा प्रभा एवं उमेश कुमार मिश्र	—	105-107
30.	**भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में वर्ष 2024 के दौरान आयोजित महत्वपूर्ण कार्यक्रम / बैठक / संगोष्ठी / कार्यशाला** अनुप दास, आशुतोष उपाध्याय, शिवानी, संजय राजपूत एवं उमेश कुमार मिश्र	—	108-111
31.	**भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में वर्ष 2024 के दौरान गणमान्य अधिकारियों/किसानों द्वारा प्रक्षेत्र भ्रमण** अनुप दास, आशुतोष उपाध्याय, शिवानी, संजय राजपूत एवं उमेश कुमार मिश्र	—	112-113
32.	**अख़बारों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना** अनुप दास, आशुतोष उपाध्याय, शिवानी, उज्ज्वल कुमार, अभय कुमार, धीरज कुमार सिंह, संजय राजपूत एवं उमेश कुमार मिश्र	—	114-117

हिंदी के प्रचार-प्रसार में तकनीक का महत्त्व

अनुप दास[1], आशुतोष उपाध्याय[1], शिवानी[1], पुष्पनायक[1], विपुल राज[1], अणिमा प्रभा[2] एवं उमेश कुमार मिश्र[1]

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना[1]; कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची[2]

भूमिका

भाषा किसी भी समाज की आत्मा होती है। यह केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि विचारों, भावनाओं, संस्कृति और परंपराओं का संवाहक भी होती है। भारत जैसे बहुभाषी देश में हिंदी न केवल सर्वाधिक बोले जाने वाली भाषा है, बल्कि यह राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक एकता का सेतु भी है। किंतु 21वीं सदी में जहाँ वैश्वीकरण और डिजिटलीकरण का युग चल रहा है, वहाँ हिंदी को तकनीक के साथ कदम मिलाकर चलना ही होगा, तभी यह जन-जन की भाषा से आगे बढ़कर *विश्व भाषा* बन सकती है।

आज तकनीक ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति ला दी है – शिक्षा, संचार, व्यापार, मनोरंजन, चिकित्सा, विज्ञान आदि सभी क्षेत्र तकनीकी नवाचारों से प्रभावित हैं। इस परिवेश में भाषा का अस्तित्व केवल पुस्तकों या पत्रिकाओं में सीमित रहना उचित नहीं। यदि हिंदी को वैश्विक पहचान दिलानी है, तो उसे तकनीक के साथ समरस करना होगा।

तकनीक: भाषा प्रचार का नवीन औज़ार

जहाँ पहले भाषा का प्रचार-प्रसार शिक्षक, लेखक, पत्रकार, साहित्यकार, और सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से होता था, वहीं अब तकनीक ने इस प्रक्रिया को तीव्र, व्यापक और समावेशी बना दिया है। निम्नलिखित माध्यमों से तकनीक ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में क्रांति ला दी है:

1. डिजिटल मीडिया और सोशल नेटवर्किंग प्लेटफ़ॉर्म्स

फेसबुक, ट्विटर (एक्स), इंस्टाग्राम, यूट्यूब, व्हाट्सएप, टेलीग्राम जैसे सोशल मीडिया मंचों ने हिंदी में संवाद करने का एक सरल और सहज मंच दिया है। आज लाखों लोग रोज़ाना हिंदी में पोस्ट, रील, वीडियो, ब्लॉग, कविताएँ, विचार और लेख साझा कर रहे हैं। इससे न केवल भाषा का प्रचार हो रहा है, बल्कि हिंदी को एक जीवंत, आधुनिक और युवा भाषा का रूप भी मिल रहा है।

- *उदाहरण:* "द लल्लनटॉप", "द क्विंट हिंदी", "भाषा समाचार", आदि ने डिजिटल पत्रकारिता को हिंदी में लोकप्रिय बनाया है।

2. हिंदी ब्लॉगिंग और डिजिटल लेखन

हिंदी ब्लॉगिंग ने आम नागरिक को भी अपनी बात कहने का मंच दिया है। ब्लॉग लेखक विज्ञान, शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीक, पर्यटन, रसोई, साहित्य, आत्मकथाएँ, धर्म, राजनीति, इतिहास आदि विविध विषयों पर हिंदी में सामग्री लिख रहे हैं।

- *प्रभाव:* हिंदी में गुणवत्तापूर्ण लेखन बढ़ा है, और हिंदी भाषियों को अपनी रुचियों के अनुसार सामग्री उपलब्ध होने लगी है।

3. हिंदी में मोबाइल एप्स और कीबोर्ड टूल्स

गूगल इनपुट टूल, स्विफ्ट की, गब्बर ऐप, हिंदी शब्दकोश ऐप, और अन्य वॉइस टाइपिंग टूल्स ने हिंदी में टाइपिंग और लेखन को अत्यंत सरल बना दिया है। अब आम व्यक्ति भी तकनीक के माध्यम से आसानी से हिंदी में संवाद कर सकता है।

- *महत्त्व:* इससे हिंदी में ईमेल, सोशल मीडिया पोस्ट, ब्लॉग लेखन, और ऑफिस कार्य करना संभव हुआ है।

4. शिक्षा के क्षेत्र में तकनीक और हिंदी

ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म्स ने अपनी सामग्री हिंदी में उपलब्ध करवाई है। इससे ग्रामीण और हिंदी भाषी छात्रों को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्राप्त हो रही है।

राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (NDLI) और **DIKSHA ऐप** जैसे संसाधनों ने हिंदी में पुस्तकें और अध्ययन सामग्री प्रदान की है।

- *परिणाम:* शिक्षा का लोकतंत्रीकरण हुआ है और हिंदी माध्यम के छात्रों की डिजिटल दुनिया में भागीदारी बढ़ी है।

5. कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और हिंदी का विकास

- गूगल असिस्टेंट, एलेक्सा, सिरी जैसे वॉयस असिस्टेंट अब हिंदी में निर्देश समझते हैं।
- चैटबॉट्स अब ग्राहक सेवा में हिंदी का प्रयोग करने लगे हैं।
- *लाभ:* इससे हिंदी तकनीकी संवादों, ग्राहक सेवाओं, चैट समर्थन आदि में उपयोग होने लगी है।

6. हिंदी साहित्य का डिजिटलीकरण

हिंदी साहित्य के रत्नों को अब डिजिटल पुस्तकालयों, ई-बुक्स और ऑडियो बुक्स के माध्यम से विश्वभर में पहुँचाया जा रहा है।

- हिंदी ई-लाइब्रेरी साहित्य कुञ्ज, राजकमल डिजिटल, किताबों की दुनिया जैसे प्लेटफ़ॉर्म्स हिंदी साहित्य को जनसुलभ बना रहे हैं।
- *लाभ:* दूर-दराज़ के पाठक भी अब तुलसी, प्रेमचंद, अज्ञेय, महादेवी वर्मा, निराला आदि को पढ़ सकते हैं।

तकनीकी युग में हिंदी को प्राप्त चुनौतियाँ

हालाँकि तकनीक हिंदी के लिए वरदान बनी है, किंतु इसके साथ कुछ चुनौतियाँ भी उभर कर आई हैं:

1. **भाषाई शुद्धता का ह्रास:** सोशल मीडिया और टेक्स्टिंग के चलते हिंदी में व्याकरण और शुद्धता की उपेक्षा हो रही है।
2. **अंग्रेज़ी का अत्यधिक प्रभाव:** तकनीकी शब्दावली और इंटरफेस अभी भी मुख्यतः अंग्रेज़ी-आधारित है, जिससे हिंदी उपेक्षित हो जाती है।
3. **भाषा अनुवाद की सीमाएँ:** कई बार अनुवाद तकनीक शुद्ध अर्थ प्रस्तुत नहीं कर पाती, जिससे अर्थ का अनर्थ हो जाता है।
4. **हिंदी में तकनीकी शब्दों की कमी:** विज्ञान और तकनीक जैसे विषयों में हिंदी शब्दावली का विकास आवश्यक है।

सुझाव और समाधान

1. **सरकारी नीति:** केंद्र और राज्य सरकारों को हिंदी तकनीकी विकास के लिए विशेष बजट और योजनाएँ बनानी चाहिए।
2. **तकनीकी कंपनियों की भागीदारी:** गूगल, माइक्रोसॉफ्ट, मेटा आदि को अपने उत्पादों में हिंदी सपोर्ट को प्राथमिकता देनी चाहिए।
3. **हिंदी में तकनीकी शब्दावली का निर्माण:** विशेषज्ञों को मिलकर हिंदी के लिए एक व्यापक तकनीकी शब्दकोश बनाना चाहिए।
4. **शिक्षण में तकनीक का समावेश:** हिंदी विषय को केवल साहित्य तक सीमित न रखकर, उसे तकनीकी शिक्षा से जोड़ा जाए।
5. **युवा लेखकों और पत्रकारों को प्रोत्साहन:** ब्लॉगिंग, डिजिटल लेखन और वीडियो निर्माण में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए प्रशिक्षण और मंच दिए जाएं।

***

औषधीय गुणों से भरपूर अश्वगंधा : भारतीय किसानों के लिए आर्थिक उन्नति का साधन

मुनेश्वर प्रसाद मंडल
भोला पासवन शास्त्री कृषि महाविद्यालय, पूर्णिया

परिचय

अश्वगंधा, जिसे वैज्ञानिक रूप से *Withania somnifera* कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है, जिसका उपयोग भारत में प्राचीन काल से किया जा रहा है। आयुर्वेद में इसे 'रसायन' के रूप में जाना जाता है, जिसका अर्थ है कि यह शरीर को पुनर्जीवित और सशक्त करने में सहायक है। अश्वगंधा का नाम संस्कृत में 'अश्व' (घोड़ा) और 'गंधा' (गंध) से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है कि इस पौधे का सेवन करने से व्यक्ति में घोड़े जैसी शक्ति और स्फूर्ति आ सकती है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने भी अश्वगंधा के औषधीय गुणों को मान्यता दी है। यह तनाव, चिंता, और अवसाद को कम करने में प्रभावी है, साथ ही इम्यून सिस्टम को भी मजबूत करता है। इसके साथ ही, अश्वगंधा हृदय और मस्तिष्क स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी है, जिससे यह एक बहुमूल्य औषधि बन गया है। अश्वगंधा का महत्व केवल चिकित्सा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतीय किसानों के लिए भी आर्थिक उन्नति का एक सशक्त साधन बन सकता है। इसकी खेती न केवल किसानों के लिए लाभकारी है, बल्कि वैश्विक बाजार में इसकी बढ़ती मांग इसे आर्थिक रूप से सशक्त बनाने का अवसर प्रदान करती है।

अश्वगंधा के औषधीय गुण

अश्वगंधा एक अत्यंत प्रभावशाली औषधीय पौधा है, जिसमें कई स्वास्थ्य लाभ हैं। इसके प्रमुख औषधीय गुणों को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने भी मान्यता दी है, जिससे यह एक व्यापक रूप से उपयोगी औषधि बन गई है।

- **तनाव और चिंता में राहत :** अश्वगंधा को एक प्रभावी एडाप्टोजेन माना जाता है, जो शरीर को तनाव से निपटने में मदद करता है। यह कॉर्टिसोल हार्मोन के स्तर को नियंत्रित करके मानसिक तनाव और चिंता को कम करता है।
- **इम्यून सिस्टम की मजबूती :** अश्वगंधा इम्यून सिस्टम को मजबूत बनाने में सहायक है। इसके नियमित सेवन से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, जिससे शरीर विभिन्न संक्रमणों से बचाव कर सकता है।
- **मस्तिष्क स्वास्थ्य में सुधार :** अश्वगंधा का उपयोग मस्तिष्क के कार्यों को सुधारने के लिए किया जाता है। यह स्मरण शक्ति को बढ़ाने, ध्यान केंद्रित करने, और अल्जाइमर जैसे रोगों के खतरे को कम करने में सहायक होता है।
- **हृदय स्वास्थ्य :** अश्वगंधा हृदय के स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी है। यह रक्तचाप को नियंत्रित करने, कोलेस्ट्रॉल के

स्तर को कम करने, और हृदय की मांसपेशियों को मजबूत करने में मदद करता है।

- **मधुमेह नियंत्रण :** अश्वगंधा का उपयोग मधुमेह रोगियों के लिए भी फायदेमंद साबित हुआ है। यह ब्लड शुगर के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक होता है, जिससे मधुमेह को नियंत्रित करने में मदद मिलती है।
- **ऊर्जा और सहनशक्ति में वृद्धि :** अश्वगंधा शरीर में ऊर्जा और सहनशक्ति को बढ़ाने में सहायक होता है। यह थकान और कमजोरी को दूर करके शरीर को सक्रिय और ऊर्जावान बनाए रखने में मदद करता है।

इन सभी गुणों के कारण अश्वगंधा एक बहुउपयोगी औषधि है, जो संपूर्ण स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक है। इसके नियमित सेवन से व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार आता है, जिससे वह जीवन की चुनौतियों का सामना अधिक सशक्त रूप से कर सकता है।

❖ भारतीय किसानों के लिए अश्वगंधा की खेती का आर्थिक महत्व

अश्वगंधा की खेती भारतीय किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण आर्थिक अवसर प्रदान करती है। इस पौधे की खेती के लिए कम जलवायु और पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जिससे यह उन क्षेत्रों में भी उपयुक्त है जहां अन्य फसलें उगाना कठिन हो सकता है। इसके अलावा, अश्वगंधा की खेती में कम लागत और अधिक उत्पादन की संभावना होती है, जिससे किसानों को अधिक लाभ मिल सकता है। अश्वगंधा की वैश्विक बाजार में बढ़ती मांग ने इसे एक लाभकारी फसल बना दिया है। भारतीय किसान इसे उगाकर न केवल देश के भीतर, बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाजारों में भी अपने उत्पाद बेच सकते हैं,

जिससे उनकी आय में वृद्धि हो सकती है। अश्वगंधा के औषधीय गुणों के कारण इसकी मांग लगातार बढ़ रही है, जो किसानों को एक स्थिर और लाभकारी आय का स्रोत प्रदान करती है। इस प्रकार, अश्वगंधा की खेती किसानों की आर्थिक उन्नति का एक महत्वपूर्ण साधन बन सकती है।

❖ अश्वगंधा की खेती के लाभ और चुनौतियाँ

लाभ : अश्वगंधा की खेती किसानों के लिए कई लाभकारी सिद्ध होती है। यह एक सूखा–प्रतिरोधी पौधा है, जिसे कम पानी और सीमित संसाधनों में उगाया जा सकता है, जिससे लागत कम रहती है। जैविक खेती के लिए उपयुक्त होने के कारण, यह अधिक स्वास्थ्यवर्धक और पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित उत्पाद प्रदान करता है। इसके औषधीय गुणों की बढ़ती मांग के चलते, बाजार में इसकी अच्छी कीमत मिलती है, जिससे किसानों की आय में वृद्धि होती है।

चुनौतियाँ : हालांकि, अश्वगंधा की खेती में कुछ चुनौतियाँ भी हैं। उचित ज्ञान और तकनीकी प्रशिक्षण की कमी से फसल की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। इसके अलावा, किसानों को बाजार तक पहुँच और विपणन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिससे उन्हें अपने उत्पाद का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। साथ ही, जलवायु परिवर्तन और कीट संक्रमण भी खेती की उत्पादकता को प्रभावित कर सकते हैं, जिसके लिए सावधानीपूर्वक प्रबंधन की आवश्यकता है।

❖ अश्वगंधा की प्रोसेसिंग और मूल्य संवर्धन

अश्वगंधा की प्रोसेसिंग और मूल्य संवर्धन से किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है। अश्वगंधा के कच्चे रूप में ही नहीं, बल्कि इसके प्रोसेस्ड उत्पादों की भी बाजार में भारी मांग है। इन उत्पादों में अश्वगंधा पाउडर, कैप्सूल, तेल, और विभिन्न हर्बल उत्पाद शामिल हैं। प्रोसेसिंग के माध्यम से मूल्य संवर्धन करना न केवल उत्पाद की गुणवत्ता को बढ़ाता है, बल्कि किसानों को बेहतर लाभ भी प्रदान करता है।

प्रोसेसिंग से जुड़े उद्योग और सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSMEs) के साथ साझेदारी करके, किसान अपने उत्पाद को अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी बेच सकते हैं। इसके अलावा, प्रोसेसिंग से जुड़े आधुनिक तकनीक का उपयोग किसानों को अपने उत्पाद को लंबे समय तक सुरक्षित रखने और उसे उचित समय पर बेचने की सुविधा देता है। इससे किसानों को बाजार में मूल्य की अस्थिरता का सामना किए बिना बेहतर लाभ प्राप्त करने का अवसर मिलता है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है।

❖ सरकार और अन्य संस्थानों द्वारा प्रोत्साहन

अश्वगंधा की खेती को बढ़ावा देने के लिए सरकार और विभिन्न संस्थान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सरकार किसानों को विभिन्न सब्सिडी और योजनाएँ प्रदान करती है, जैसे कि फसल बीमा, ऋण सहायता, और खेती के लिए तकनीकी प्रशिक्षण। ये योजनाएँ किसानों को अश्वगंधा की खेती में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं और उनके जोखिम को कम करती हैं। अनुसंधान संस्थान और कृषि विश्वविद्यालय भी इस क्षेत्र में सक्रिय हैं। वे अश्वगंधा की उन्नत खेती तकनीकों पर शोध करते हैं और किसानों को आवश्यक जानकारी और प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इसके अलावा, इन संस्थानों द्वारा किए गए अनुसंधान और विकास से नई किस्मों और बेहतर उत्पादकता के उपाय मिलते हैं, जो किसानों की आय को बढ़ाने में सहायक होते हैं। इस प्रकार, सरकार और संस्थानों द्वारा प्रदान किया गया समर्थन किसानों के लिए अश्वगंधा की खेती को एक स्थिर और लाभकारी विकल्प बनाता है।

❖ निष्कर्ष

अश्वगंधा की खेती भारतीय किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण आर्थिक अवसर प्रस्तुत करती है। इसके औषधीय गुणों और वैश्विक मांग के चलते, अश्वगंधा की खेती न केवल स्वास्थ्य लाभ प्रदान करती है, बल्कि किसानों की आर्थिक स्थिति में भी सुधार करती है। अश्वगंधा की खेती से संबंधित लाभ, जैसे कि कम लागत में उच्च उत्पादन, और बाजार में अच्छी कीमत, इसे एक आकर्षक फसल बनाते हैं। हालांकि, खेती के कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे उचित तकनीकी ज्ञान की कमी और विपणन की समस्याएँ। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए, सरकार और संस्थानों द्वारा प्रोत्साहन और समर्थन की आवश्यकता है। किसानों को प्रशिक्षण, सब्सिडी और उन्नत खेती तकनीकों के माध्यम से सहायता प्रदान की जानी चाहिए, ताकि वे अपनी फसल की गुणवत्ता और उत्पादकता में सुधार कर सकें। अंततः, अश्वगंधा की खेती की दिशा में किए गए प्रयास किसानों के लिए आर्थिक उन्नति और देश की स्वास्थ्य क्षेत्र में योगदान कर सकते हैं। इसके प्रभावी विकास और समर्थन से, यह फसल भारतीय कृषि और किसानों के भविष्य के लिए एक मजबूत आधार बन सकती है।

***

मसूर की वैज्ञानिक खेती

इन्द्रजीत, सुधांशु शेखर, अशोक कुमार दुबे, धर्मजीत खेरवार, सन्नी कुमार, शशि कान्त चौबे एवं वीरेन्द्र कुमार यादव
कृषि विज्ञान केन्द्र, रामगढ़

परिचय

मसूर रबी में उगायी जाने वाली बहुप्रचलित एवं लोकप्रिय दलहनी फसल है। इसकी खेती सभी भू-भागों में की जाती है। भूमि की उर्वराशक्ति बनाये रखने में यह सहायक होती है। मसूर की फसल असिंचित क्षेत्रों के लिए अन्य रबी दलहनी फसलों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है।इसकी खेती हल्की, उपरी भूमि से लेकर धनहर क्षेत्रों के खेतों में की जा सकती है। टाल क्षेत्रों हेतु यह एक प्रमुख फसल है।

खेत की तैयारी

अगात खरीफ फसल एवं धान की कटनी के बाद खेत की अविलम्ब तैयारी जरूरी है। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाली हल से व दूसरी जुताई कल्टीवेटर से करके पाटा लगा देते है जिससे खेत समतल हो जायेगा।

बुआई का समय:-

मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक।

बीज दर

छोटे दाने की प्रजाति के लिये 30-35 एवं बड़ा दाने के लिये 40-45 कि0ग्रा0/हे0। पैरा फसल के रूप मे बुआई हेतु 50-60 कि0ग्रा0/हे0।

बीजोपचार

1. बुआई के 24 घंटे पूर्व 2.5 ग्राम फफूँदनाशी दवा (जैसे डाईफोल्टान अथवा थीरम अथवा कैप्टान) से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करें।
2. कजरा पिल्लू से बचाव हेतु क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी.कीटनाशी दवा का 8 मि.ली./कि0ग्रा0बीज की दर से उपचार करना चाहिए।
3. फफूँदनाशक एवं कीटनाशक दवा से उपचारित बीज को बुआई के ठीक पहले अनुशंसित राइजोबियम कल्चर एवं पी.एस.बी. से उपचारित कर बुआई करें।

बोने की दूरी

पंक्ति से पंक्ति 25 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 सेंमी.

उन्नत प्रभेद	बुआई का समय	परिपक्वता अवधि (दिन)	औसत उपज (क्वि0/हे0)	अभ्युक्ति
बी. आर. 25	15 अक्टूबर-15 नवम्बर	110-120	14-15	पूरे बिहार के लिये उपयुक्त
पी.एल. 406	25 अक्टूबर-25 नवम्बर	130-140	18-20	पूरे बिहार एवं पैरा फसल के लिये उपयुक्त
मल्लिका(के. 75)	15 अक्टूबर-15 नवम्बर	130-135	20-22	पूरा बिहार, दाना मध्यम बड़ा
अरूण (पी.एल. 77-12)	15 अक्टूबर-15 नवम्बर	110-120	22-25	दाना मध्यम बड़ा
पी. एल. 639	25 अक्टूबर-15 नवम्बर	120-125	18-20	पूरा बिहार
एच. यू. एल. 57	25 अक्टूबर-15 नवम्बर	120-125	20-25	उकटा सहिष्णु
के. एल. एस. 218	25 अक्टूबर-15 नवम्बर	120-125	20-25	हरदा (रस्ट) एवं उकटा सहिष्णु
नरेन्द्र मसूर- 1	25 अक्टूबर-15 नवम्बर	120-125	20-25	हरदा (रस्ट) एवं उकटा सहिष्णु

उर्वरक प्रबंधन

20 कि0ग्रा0 नेत्रजन, 40-50 कि0ग्रा0 स्फूर, 25 कि0ग्रा0 पोटास, 25 कि0ग्रा0 सल्फर/हे0।

निकाई गुड़ाई एवं खरपतवार प्रबंधन:

दो बार निकाई गुड़ाई करना आवश्यक है। प्रथम निकाई गुड़ाई बुआई के 25-30 दिनों बाद एवं दूसरी 45-50 दिनों बाद करें। रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण के लिये फ्लूक्लोरोलिन(बासालीन) 45 ई.सी. 2 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से खेत की अंतिम तैयारी के समय प्रयोग करें।

सिंचाई

साधारणतयः दलहनी फसलों को कम जल की आवश्यकता होती है। नमी की कमी स्थिति में पहली सिंचाई बुआई के 25-30दिनों के बाद तथा दूसरी सिंचाई40-45दिनों बाद फली बनने की अवस्था में करें।

मिश्रित खेती

सरसों एवं तीसी के साथ मिश्रित खेती की जा सकती है।

कटनी दौनी एवं भंडारण

फसल तैयार होने पर फलियाँ पीली पड़ जाती है तथा पौधा सूख जाता है। पौधों को काटकर धूप में सुखा लें एवं दौनी कर दाना अलग कर लें। दानों को सूखाकर ही भंडारित करें।

मसूर के प्रमुख कीट एवं रोग तथा प्रबंधन

कजरा कीट (एग्रोटीस)

कट वर्म (कजरा कीट) कभी-कभी मसूर उत्पादक क्षेत्रों में कटवर्म समूह (एग्रोटीस स्पी0) के कीटों का आक्रमण हो जाता है। इनके साथ या अलग स्पोडोप्टेरा कीट का भी आक्रमण पाया जाता है। मादा कीट मिट्टी या पौधे के निचली पत्तियों पर समूह में अण्डा देती है। अण्डे से निकलने के बाद पिल्लू अंकुरण कर रहे बीज को क्षतिग्रस्त करते हैं एवं नवांकुरित पौधों को जमीन की सतह से काट कर गिरा देते है। दिन में पिल्लू मिट्टी में छिपे रहते हैं और शाम होते ही बाहर निकल कर पौधों को काटते हैं।

प्रबंधन:

1. इस कीट से बीज की सुरक्षा हेतु अनुशंसित कीटनाशी से बीजोपचार करना चाहिए। क्लोरपायरीफॉस 20 ई0सी0 का 6 मिलीलीटर प्रति कि0ग्रा0 बीज की दर से बीजोपचार करें।
2. खड़ी फसल में क्षति नजर आने पर खेत में कुछ-कुछ दूरी पर खर-पतवार का ढेर लगा देना चाहिए। सवेरा होते ही कीट इन ढेरों में छिपता है। इसे चुनकर नष्ट कर देना चाहिए।
3. खड़ी फसल में क्लोरोपायरीफॉस 20 ई0सी0 का 2.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर शाम के समय छिड़काव करें या क्लोरपायरीफॉस 2 प्रतिशत धूल या फेनभेलरेट 0.4 प्रतिशत धूल या मिथाइल पाराथियान 2 प्रतिशत धूल का 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से शाम के समय भुरकाव करें।

थ्रिप्स कीट

यह सूक्ष्मआकृति वाला काला एवं भूरे रंग का बेलनाकार कीट होता है। रैस्पींग एण्ड सकिंग टाईप का मुख भाग होने के कारण यह पत्तियों को खुरचता है तथा उससे निकले द्रव्य को पीता है।

कीट का प्रबंधन:

1. इनके प्रबंधन के लिए फसल में उपस्थित मित्र कीटों का संरक्षण करना चाहिए।
2. नीम आधारित कीटनाशी का 5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए या ऑक्सीडेमेटॉन मिथाइल 25 ई0सी0 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करना चाहिए।

फली छेदक कीट (हेलीकोभरपा आर्मिजेरा)

इस कीट का वयस्क पतंगा-पीले, भूरे रंग का होता है एवं सफेद पंख के किनारे काले रंग की पट्टी बनी होती है। मादा कीट पत्तियों पर एक-एक अण्डे देती है, 4-5 दिनों में अण्डे से कत्थई रंग का पिल्लू निकलता है जो बाद में हरे रंग का हो जाता है।

प्रबंधन:

1. दस फेरोमौन फंदा जिसमें हेलिकोभरपा आर्मीजेरा का ल्योर लगा हो प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में लगावें।
2. प्रकाश फंदा का उपयोग करें।
3. 15-20 T आकार का पंछी बैठका (बर्ड पर्चर) प्रति हेक्टेयर लगावें।
4. खड़ी फसल में इनमें से किसी एक का छिड़काव करें। जैविक दवा एन0पी0भी0 250 एल0ई0 या क्यूनालफॉस 25 ई0सी0 का 1 मिलीलीटर या नोवाल्यूरॉन 10 ई0सी0 का 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल

बनाकर छिड़काव करें।

लूसर्न कैटरपीलर:

इस कीट का पिल्लू पीले-हरे रंग का पतला लगभग 2 सेंटीमीटर लम्बा होता है, जो पौधे की फुनगी को जाल बनाकर बाँध देता है और पत्तियों को खाता है। किसी चीज से संपर्क होने पर कीट काफी सक्रियता दिखाते हैं। फसल की प्रारंभिक अवस्था में प्रकोप ज्यादा होता है।

प्रबंधन:

1. खेत की ग्रीष्मकालीन जुताई करें।
2. खेत को खरपतवारसे मुक्त रखें।
3. बैसलिस थुरिनजिएनसिस जैविक कीटनाशी का 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें।
4. मोनोक्रोटाफॉस 36 ई0सी0 का 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें।

लाही कीट(एफिड):

कभी कभी मसूर फसल पर लाही कीट का आक्रमण हो जाता है। यह पत्तियों, डंठलों एवं फलियों पर रहकर पौधे का रस चूसती है।

प्रबंधन

1. खेत की ग्रीष्मकालीन जुताई करें।
2. खेत को खरपतवारसे मुक्त रखें।
3. खेत में प्रति हेक्टेयर 10 पीला फन्दा का प्रयोग करना चाहिए।
4. इमिडाक्लोप्रीड 17.8 एस0एल0 का 1 मिलीलीटर प्रति 3 लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें।

उकठा रोग:

मिट्टी में प्रयाप्त नमी रहने के बावजूद भी पौधों का सूखना उकठा रोग कहलाता है। इस रोग के रोगाणु मिट्टी में ही पलते हैं। दोपहर में पौधो का मुरझाना एवं सुबह हरा हो जाना इसका लक्षण है।

प्रबंधन

1. खेत की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई कर बिना पाटा दिए छोड़ देना चाहिए।
2. लगातार तीन वर्ष तक फसल चक्र अपनायें।
3. रोगरोधी किस्मों का चुनाव करें।
4. ट्राईकोडरमा 5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज अथवा कार्बेन्डाजीम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार कर बीज की बोआई करें।
5. रोग की प्रारंभिक अवस्था परिलक्षित होने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 ई0सी0 घुलनशील चूर्ण का 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर पौधे के जड़ क्षेत्र में पटवन करें।

जड़ एवं कालासड़न रोग

पौधों में वानस्पतिक वृद्धि ज्यादा होने, मिट्टी में नमी बहुत बढ़ जाने और वायुमंडलीय तापमान बहुत गिर जाने पर इस रोग का आक्रमण होता है। पौधे के पत्तियों, तना, टहनियों एवं फलियों पर गोलाकार प्यालीनुमा सफेद भूरे रंग के फफोले बनते हैं। बाद में तानोंपर के फफोले काले हो जाते हैं और पौधे सूख जाते हैं।

प्रबंधन

1. रोगरोधी प्रभेद का चुनाव करना चाहिए।
2. कार्बेन्डाजीम 2 ग्राम प्रति किग्रा० बीज की दर से उपचार कर बीज की बोआई करें। बोआई करने के पूर्व राइजोबियम कल्चर का 200 ग्राम प्रति लीटरकी दर से उपचार करें।
3. वातावरण का तापमान 15-20 डिग्री सेंटीग्रेड एवं 80 प्रतिशत से अधिक आर्दता होते ही मैन्कोजेब 75 प्रतिशत का 2 ग्राम प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।
4. कार्बेन्डाजीम तथा मैन्कोजेब संयुक्त उत्पाद का 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

स्टेमफिलियम ब्लाईट

पत्तियों पर बहुत छोटे भूरे काले रंग के धब्बे बनते हैं। पहले पौधे के निचली भाग की पत्तियाँ आक्रान्त होकर झड़ती हैं और रोग ऊपरीभाग पर बढ़ते जाता हैं। खेत में यह रोग एक स्थान से शुरू होकर धीरे-धीरे चारो ओर फैलता है।

प्रबंधन

1. खेत की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें।
2. रोगरोधी किस्मों का व्यवहार करें।
3. फसल चक्र अपनाएं।
4. अंतिम जुताई के समय 2 क्विंटल नीम की खल्ली का प्रयोग करें।
5. कार्बेन्डाजीम 2 ग्राम प्रति किग्रा० बीज की दर से उपचार कर बीज की बोआई करें। बोआई करने के पूर्व राइजोबियम कल्चर का 200 ग्राम प्रति किग्रा० की दर से उपचार करें।
6. वातावरण का तापमान 15-20 डिग्री से० एवं 80 प्रतिशत से अधिक आर्दता होते ही मैन्कोजेब 75 प्रतिशत का 2 ग्राम प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।
7. कार्बेन्डाजीम तथा मैन्कोजेब संयुक्त उत्पाद का 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

मृदरोमिल रोग (पाउडरीमिल्डेव)

मसूर में यह रोग इरीसाइफी पोलिगोनाई नामक फफूंद से होता है। पहले पत्तियों पर छोटे सफेद फफोले बनते हैं जो बाद में तना एवं फलियों पर भी छा जाते है।

प्रबंधन

1. खेत की ग्रीष्मकालीन जुताई करें।
2. खेत को खरपतवारसे मुक्त रखें।
3. फसल चक्र अपनाएं।
4. कार्बेन्डाजीम 2 ग्राम प्रति किग्रा० बीज की दर से उपचार कर बीज की बोआई करें। बोआई करने के पूर्व राइजोबियम कल्चर का 200 ग्राम प्रति लीटरकी दर से उपचार करें।
5. वातावरण का तापमान 15-20डिग्री से० एवं 80 प्रतिशत से अधिक आर्दता होते ही मैन्कोजेब 75 प्रतिशत का 2 ग्राम प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।

सुकर पालन: झारखंड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त करने का सुनहरा अवसर

सुधांशु शेखर[1], इंद्रजीत[1], धर्मजीत खेरवार[1], सन्नी कुमार[1], राकेश कुमार[2] एवं रीना कमल[3]

कृषि विज्ञान केंद्र, रामगढ़[1] ; भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना[2]; कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची[3]

झारखंड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि और पशुपालन पर निर्भर है। यहां के किसान सीमांत और छोटे स्तर के होते हैं, जो पारंपरिक कृषि प्रणाली से जुड़े हुए हैं। लेकिन बढ़ती जनसंख्या, भूमि की कमी और बदलते जलवायु परिस्थितियों के कारण केवल कृषि पर निर्भर रहना अब लाभदायक नहीं रहा। इसलिए, झारखंड के किसान वैकल्पिक व्यवसायों की ओर रुख कर रहे हैं, जिनमें से सुकर पालन एक महत्वपूर्ण एवं लाभकारी व्यवसाय बन सकता है।सुअर पालन खासकर अनुसूचित जाति (SC) और अनुसूचित जनजाति (ST) समुदायों के लिए अत्यधिक लाभकारी साबित हो सकता है क्योंकि यह कम पूंजी निवेश में अधिक मुनाफा देता है। इसके अलावा, झारखंड की जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियाँ इस व्यवसाय के लिए अनुकूल हैं।सरकार द्वारा राष्ट्रीय पशुधन मिशन (NLM), अनुसूचित जाति एवं जनजाति वित्त विकास निगम (NSTFDC और NSFDC), और झारखंड सरकार की सुअर पालन प्रोत्साहन योजना जैसी योजनाएँ चलाई जा रही हैं, जिनका लाभ उठाकर किसान अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर सकते हैं।

झारखंड में सुकर पालन की स्थिति

झारखंड में पारंपरिक रूप से सुअर पालन किया जाता रहा है, खासकर आदिवासी समुदायों द्वारा। 2019 की पशुधन जनगणना के अनुसार, झारखंड में लगभग 12.8 लाख सुकर हैं, जो असम के बाद भारत में दूसरे स्थान पर है।हालाँकि, अधिकांश किसानों द्वारा अपनाए जाने वाले पारंपरिक तरीके वैज्ञानिक नहीं हैं, जिससे उत्पादकता कम रहती है। लेकिन अब, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय (BAU), रांची और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) की मदद से किसानों को आधुनिक और वैज्ञानिक तरीकों से सुअर पालन की जानकारी दी जा रही है।

नवीनतम शोध एवं विकास:

- झारसूक नामक नई उन्नत नस्ल विकसित की गई है, जो जल्दी बढ़ती है और ज्यादा मुनाफा देती है।
- बांडा और पूर्णिया जैसी नई नस्लों को भी मान्यता दी गई है, जो झारखंड की जलवायु के लिए उपयुक्त हैं।
- कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा समय समय किसानों को प्रशिक्षण एवं उन्नत नस्लों का प्रत्यक्षन भी किया जा रहा है

सुकर पालन की आर्थिक संभावनाएँ

भारत और झारखंड में बाजार की मांग

भारत में सुकर मांस (पोर्क) की माँग तेजी से बढ़ रही है, खासकर पूर्वोत्तर राज्यों, पश्चिम बंगाल और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में। वियतनाम, चीन, थाईलैंड और अन्य एशियाई देशों में भी इसकी भारी मांग है।भारत में सुकर मांस की वार्षिक खपत लगभग 4.26 लाख टन है, लेकिन उत्पादन इससे काफी कम है। इसलिए, झारखंड के किसानों के पास इस उद्योग में विकास के व्यापक अवसर हैं।

लागत और मुनाफा विश्लेषण

सुकर पालन में निवेश कम और मुनाफा अधिक होता है।

सुकर पालन की वैज्ञानिक विधियाँ

नस्लों का चयन

1. झारसूक – झारखंड की स्थानीय जलवायु के लिए उपयुक्त।
2. यॉर्कशायर – जल्दी बढ़ने वाली विदेशी नस्ल।
3. लैंड्रेस – अधिक मांस उत्पादन वाली नस्ल।
4. ड्यूरॉक – मजबूत रोग प्रतिरोधक क्षमता वाली नस्ल।

आहार प्रबंधन

सुकरों की अच्छी वृद्धि और उच्च उत्पादन के लिए संतुलित आहार आवश्यक है।

स्वास्थ्य प्रबंधन

- सुकरों में रोगों की रोकथाम के लिए निम्नलिखित टीकाकरण आवश्यक है:
- खसरा रोग – 2-4 सप्ताह की उम्र में टीकाकरण।
- एंथ्रेक्स और ब्रुसेलोसिस – वार्षिक टीकाकरण।

सरकारी योजनाएँ और अनुदान

राष्ट्रीय पशुधन मिशन (NLM)

- अनुसूचित जाति/जनजाति किसानों को 50-60% तक सब्सिडी।
- आश्रय गृह, चारा, दवा आदि पर अनुदान।
- झारखंड सरकार की सुकर पालन प्रोत्साहन योजना
- राज्य सरकार द्वारा मुफ्त प्रशिक्षण।
- उन्नत नस्ल के सुअर निःशुल्क उपलब्ध कराए जाते हैं।

अनुसूचित जाति एवं जनजाति वित्त और विकास निगम (NSTFDC और NSFDC)

- कम ब्याज दर पर ऋण।
- व्यवसाय स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता।

रोजगार और आजीविका पर प्रभाव

- ग्रामीण युवाओं के लिए अवसर
- झारखंड के बेरोजगार युवाओं को स्वरोजगार का अवसर।
- सुकर पालन से जुड़े सहायक व्यवसायों (चारा उत्पादन, खाद, चमड़ा उद्योग) में रोजगार बढ़ेगा।

महिला सशक्तिकरण

झारखंड में महिलाएँ स्वयं सहायता समूह (SHG) के माध्यम से सुअर पालन में सक्रिय भूमिका निभा सकती हैं।

निष्कर्ष

झारखंड में सुकर पालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त करने का एक सुनहरा अवसर है। यदि किसानों को सरकारी सहायता, वैज्ञानिक प्रशिक्षण और बेहतर बाजार सुविधाएँ दी जाएँ, तो यह झारखंड के हजारों किसानों को आत्मनिर्भर बना सकता है। सरकार, कृषि विज्ञान केंद्र, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय और अन्य संस्थानों के संयुक्त प्रयास से यह व्यवसाय एक मजबूत ग्रामीण उद्योग बन सकता है, जिससे रोजगार, पोषण सुरक्षा और आर्थिक उन्नति को बढ़ावा मिलेगा।

***

बिहार के आर्द्रभूमि क्षेत्र में किसानों की आजीविका सुधार के लिए मत्स्य पालन की महत्वपूर्ण तकनीकें

विवेकानंद भारती[1], तारकेश्वर कुमार[1], सुरेंद्र कुमार अहिरवाल[1], रोहन कुमार रमण[1], जसप्रीत सिंह[1] एवं कमल शर्मा[2]
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना[1]
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ[2]

भूमिका

बिहार की 88% आबादी आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि उत्पादन प्रणाली है। प्रत्येक वर्ष भयावह बाढ़ के प्रकोप के कारण यहाँ के किसानों को काफी आर्थिक छति का सामना करना पड़ता है, जिसके कारण यहाँ के किसानों की आर्थिक स्थिति अत्यंत ही दयनीय है। बाढ़ के प्रकोप से छोटे और सीमांत किसानों की स्थिति और भी दु:खदाई हो जाती है| अत: बिहार के किसानों को परंपरागत कृषि प्रणाली के बजाय परिस्थिति अनुकूल कृषि तकनिकियों पर जागरूकता फ़ैलाने की जरूरत है| मानसून/बरसात का मौसम (जून-सितंबर) के दौरान उत्तर बिहार की कृषि योग्य भूमि बाढ़ के पानी में डूब जाती है| लेकिन बाढ़ का पानी घटने के बाद भी इन भूमि में दिसंबर माह में भी लगभग 1 मी. गहराई तक जल भरा रहता है| बाढ़ के बाद ये जलमग्न भूमि मछली पालन के लिए एक उत्तम भी पारिस्थितिकी तंत्र उत्पन्न करता है |बिहार में इन जलमग्न क्षेत्र को चौर के नाम से जाना जाता है। बाढ़ के दौरान चौर के भू-स्वामी भूमिहीन हो जाते हैं, परिणामस्वरूप दिसंबर तक जल जमाव के दौरान किसी भी कृषि फसल को उगाना कठिन हो जाता है | जलजमाव वाले चौर, कृषि क्षेत्र के मजदूर को भी प्रभावित करते हैं, क्योंकि उन्हें अपनी जीविका कमाने के लिए आवश्यक कार्य प्राप्त नहीं हो पता है| बिहार में 941,000 हेक्टेयर चौर युक्त आर्द्रभूमि हैं, जहाँ साल में छह से सात महीने तक जलमग्न रहता है| कम उत्पादकता के कारण, सभी आर्द्रभूमियों को बिहार में बेकार भूमि माना जाता है। लेकिन, बिहार के इन आर्द्रभूमियों का कुशलतापूर्वक प्रबंधन और नवीनतम वैज्ञानिक तकनीकी को अपनाकर अधिक मुनाफा वाला भूमि बनाया जा सकता है। दलदली, उपजाऊ, उत्पादक आर्द्रभूमि का उपयोग ग्रामीण किसानों द्वारा मछली, जलीय खाद्य फसलों (गहरे पानी में चावल, सिंघाड़ा, मखाना, वॉटर लिली, रॉयल वॉटरलिली, कोलोकेसिया एसपीपी आदि) और गैर-खाद्य फसलों (साइपरस एसपीपी., टाइफा एसपीपी., क्लिनोगाइन डाइचोटोमा, एशिनोमीन एस्पेरा, ब्रैचिरिया म्यूटिका, कोइक्स एसपीपी., आदि) के उत्पादन के लिए लगातार किया जाता है। साथ ही सजावटी और लाभकारी औषधीय पौधे के उत्पादन भी के लिए किया जाता है। विशाल आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र का उपयोग कई जलीय फसलों की खेती और मत्स्य पालन के माध्यम से प्रभावी ढंग से किया जा सकता है जो न केवल मनुष्यों द्वारा मूल्यवान हैं बल्कि संसाधनहीन ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उत्थान के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। अत: आर्द्रभूमियों का विकास और प्रबंधन समेकित वाटरशेड प्रबंधन योजनाओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होना चाहिए।

1. **भूमि आकार तकनीक-** इन तकनीकों के द्वारा भूमि की संरचना बदल दी जाती है। इनमें आर्द्रभूमि की मिट्टी की खुदाई और खेत में पानी के लिए जगह बनाया जाता है। यह तकनीक बहुफसली खेती का विकल्प तैयार करता है, जिसमें कृषि, बागवानी और मत्स्य पालन शामिल हैं। इन भूमि आकार तकनीक द्वारा आर्द्रभूमि का रूपांतरण मत्स्य पालन तालाब (चित्र 1) और धान-सह-मछली पालन मॉडल में करना उत्तम होता है। यह भूमि आकार तकनीक, फसल- सह-मछली पालन के लिए किसानों के बीच उनकी आजीविका को बेहतर बनाने के लिए काफी प्रभावी माना जाता है। इस तकनीक का सबसे बड़ा फायदा है कि व्यक्तिगत तौर पर किसान इसका उपयोग अपने खेत के लिए कर सकते हैं। बिहार में भूमि आकार तकनीक के उपयोग का बेहरीन उदाहरण सोनमार चौर (समस्तीपुर) और जंदाहा चौर (वैशाली) है। बिहार में चौर मौसमी होते हैं, जो मानसून के दौरान कृषि योग्य भूमि का बड़ा या छोटा क्षेत्र बाढ़ के पानी से डूबने से बनता है।

   सोनमार चौर में साल भर पानी भरा रहता था, जिसमें किसान कोई फसल नहीं ऊगा पाते थे। बाढ़ के कारण फसलें नष्ट हो जाती थीं जिससे उनकी आजीविका प्रभावित होती थी। लेकिन 2010 में सरकारी अधिकारियों के हस्तक्षेप द्वारा सोनमार चौर को मत्स्य पालन के लिए तालाब में परिवर्तित कर दिया गया। शुरुआत में कुछ किसानों ने मत्स्य पालन में अपनी जिज्ञासा दिखाई। जब उन किसानों को सोनमार चौर को मत्स्य पालन के लिए तालाब में बदलने से आर्थिक फायदा महसूस हुआ, तब कई किसानों ने भी अपनी जमीन का उपयोग मस्त्य पालन में लगे। बाद में 40 किसानों ने बाद में इस आद्रभूमि में अपने जमीन को तालाब में परिवर्तित कर

चित्र 1. सोनमार चौर में भूमि आकार तकनीक का उपयोग

चित्र 2. सोनमार चौर में मत्स्य पालन

दिया। वर्तमान में इस आर्द्रभूमि के लगभग 100 एकड़ का उपयोग में मछली पालन में हो रहा है (चित्र 2)। अतः बाढ़ के दौरान तालाब में रुके हुए पानी में मछली पालना किसानों के लिए लाभदायक साबित हो रहा है।

जंदाहा चौर सितम्बर से जनवरी के दौरान बाढ़ के पानी से डूबा हुआ रहता है। श्री त्रिपुरारी चौधरी ने अपनी जमींन में मत्स्य हैचरी (स्फुटनशाला) बनाकर इस आद्रभूमि को उपयोग में लेकर अपनी आमदनी को बढ़ाने का प्रयास किया। मत्स्य हैचरी कीआशातीत सफलता से उन्हें आद्रभूमि का महत्व मत्स्य पालन द्वारा समझ में आया। इसके फलस्वरूप उन्होंने आस-पास की भूमि का अधिग्रहण कर मत्स्य पालन का विस्तार किया। वर्तमान में श्री चौधरी फिलहाल मत्स्य हैचरी के अलावा 10 अलग-अलग तालाबों में मछली पालन का प्रबंधन कर रहे हैं, जिसका कुल क्षेत्रफल 10 एकड़ है। जंदाहा चौर समेकित मत्स्य पालन का एक विकसित मॉडल बन चूका है। यहाँ कृषि (धान, गेहूँ, मक्का) के साथ मवेशी, भैंस, बागवानी (आम, अमरूद, केला, आलू मशरूम और अन्य सब्जियाँ) के माध्यम से

आर्द्रभूमि भूमि में समेकित मत्स्य पालन किया जा रहा है। भूमि आकार तकनीक को अपनाकर श्री चौधरी ने केवल अपने आप को लाभ प्रदान नहीं किया, बल्कि अपने साथ 6अन्य व्यक्तियों के लिए

रोजगार सृजन किया, जो फार्म की निगरानी एवं मछली के लिए चारा प्रबंधन में श्री चौधरी का सहायक के रूप में काम करते हैं (चित्र 3)।

चित्र 3. जंदाहा चौर में मत्स्य पालन

2. **घेरा मत्स्य पालन -** पानी के प्रवाह और बहिर्वाह को प्रबंधित करने,और मछली को भागने से रोकने के लिए घेरा का निर्माण किया जाता है। भारत में अंतर्देशीय मत्स्य पालन के संदर्भ में घेरा आधारित मत्स्य पालन का तात्पर्य पिंजरा और पेन मत्स्य पालन से है।

पिंजरा मत्स्य पालन- पिंजरा पानी में मछली पालने के लिए एक बंद स्थान है जो आसपास के जल निकाय के साथ पानी का मुक्त आदान-प्रदान बनाए रखता है। पिंजरे के फ्रेम के लिए स्टील, गैल्वनाइज्ड आयरन, पॉली-विनाइल क्लोराइड और वर्जिन ग्रेड एचडीपीई का उपयोग किया जाता है। पिंजरे के फ्रेम को घेरने के लिए 10-30 मिमी के जाली आकार वाले गाँठ रहित नायलॉन जाल का उपयोग होता है। फ्लोट के लिए ढक्कन के साथ खाली 200 ली स्टील का 88 सेमी लंबे और 58 सेमी व्यास वाले ड्रम की आवश्यकता होती है। साधारणतः, 6 मीटर (लंबाई) 4 मीटर (चौड़ाई) x 4 मीटर (ऊंचाई) आयताकार और वर्गाकार वाला पिंजरा बनाया जाता है। पिंजरा वाले जगह पर में मत्स्य पालन के दौरान 10 मी पानी की गरहराई होनी चाहिए (चित्र 4)।

पेन मत्स्य पालन- पेन मत्स्य पालन में आर्द्रभूमि के एक क्षेत्र को कुछ प्रभावी रूप से नायलॉन जाल, विभाजित बांस

चित्र 4. डेरिमौन (खगड़िया) में पिंजरा मत्स्य पालन

स्क्रीन, आदि पारगम्य अवरोध द्वारा किया जाता है, जिसमें मछली पाला जाता है। उपलब्ध क्षेत्र के अनुसार कोई भी आकार में पेन हो सकता है। पेन वाले जगह पर में मत्स्य पालन के दौरान 1 मी पानी की गरहराई होनी चाहिए (चित्र 5)।

चित्र 5. कसरैया धार (खगड़िया) में पेन मत्स्य पालन

3. **समेकित मत्स्य पालन** - बिहार में बाढ़ प्रभावित आर्द्रभूमि पर रहने वाले किसान बाढ़ के पानी और भूमि दोनों का उपयोग की योजना बनाकर अपनी आय बढ़ाने में सक्षम हो सकते हैं। आम तौर पर, बिहार में बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में दो प्रकार की खेती के पैटर्न अपनाए जा सकते हैं: समवर्ती कृषि और वैकल्पिक कृषि।आर्द्रभूमि बाढ़ के मैदान की स्थलाकृति का ज्ञान खेती के पैटर्न के चयन में मदद करता है, क्योंकि यह जल प्रतिधारण अवधि और पानी की गहराई के बारे में जानकारी प्रदान करता है, जिससे किसानों को मत्स्य पालन के लिए आर्थिक रूप से सबसे उपयुक्त मछली और कृषि के लिए फसलों को प्राथमिकता देने में मदद मिलती है। चूँकि समेकित कृषि में मत्स्य पालन और कृषि दोनों से होने वाली ऊपज महत्वपूर्ण है, इसलिए खेती के पैटर्न को अपनाते समय दोनों गतिविधियों के लिए कटाई के समय पर विचार किया जाना चाहिए।

समवर्ती कृषि- बाढ़ के मौसम में गहरे पानी में धान की खेती (जलमग्नता सहनशीलता और बढ़ाव क्षमता) जैसे धान के साथ मत्स्य पालन करना और उसके बाद शुष्क मौसम में बाढ़ वाले क्षेत्रों में गैर- धान फसलों को उगाना।

वैकल्पिक कृषि- शुष्क मौसम के चावल और अन्य रबी या सब्जियों की फसलों की खेती और उसके बाद केवल बाढ़ के मौसम में अस्थायी बंद क्षेत्र या स्थायी बंद क्षेत्र में मत्स्य पालन करना, जैसे बिहार के समस्तीपुर के महिसर चौर में जाता है।

4. **आर्द्रभूमि में समुदाय-**आधारित मत्स्य पालन-बिहार में बाढ़ के मैदानी मत्स्य संसाधनों का उपयोग समुदाय आधारित मत्स्य प्रबंधन रणनीतियों को अपनाकर उचित गतिविधियों के साथ किया जा सकता है। स्वामित्व का विकास समुदाय आधारित मत्स्य प्रबंधन के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। मत्स्य संसाधनों के प्रबंधन के लिए जिम्मेदार समुदाय हमेशा उत्पादन और संरक्षण के बीच संतुलन बनाए रखने को ध्यान में रखता है, जिसके परिणामस्वरूप बाढ़ के मैदानों में मत्स्य संसाधनों की स्थिरता बनी रहती है। इसलिए बाढ़ के मैदानी आर्द्रभूमि के स्वामित्व का निर्णय करते समय, बाढ़ के मैदानी क्षेत्र में जमीन रखने वाले भूस्वामियों और साथ ही आसपास के गांवों के निवासियों (जिनके पास बाढ़ के मैदान में जमीन नहीं है) को समुदाय के सदस्यों के लिए आनुपातिक संख्या में शेयर जारी करके शामिल किया जाना चाहिए। बाढ़ के मैदानी क्षेत्र में बिना अपनी जमीन वाले सदस्य बीज/मछली परिवहन, चारा, तालाबों में बांध बनाने, पेन में घेरा लगाने और मछली पकड़ने में सहायक हो सकते हैं। इसलिए, शेयरधारकों के बीच प्रबंधन गतिविधियों के आधार पर, अलग-अलग कार्य सौंपे जाने चाहिए। बाढ़ के मैदानी क्षेत्रों के लिए अस्थायी प्रबंधन दृष्टिकोण से मानसून और शुष्क मौसम दोनों के लिए योजनाबद्ध तरीके से किया जाना चाहिए, और बाढ़ के मैदानी संसाधनों के उपयोग में किसी भी विवाद से बचने के लिए समुदाय के सभी सदस्यों के बीच पहले से ही साझा किया जाना चाहिए। अतः बाढ़ के मैदान में समुदाय-आधारित मत्स्य पालन प्रबंधन किया जा सकता है।

मत्स्य पालन के लिए आर्द्रभूमि का उपयोग के फायदे

गरीब और सीमांत किसानों के लिए खाद्य सुरक्षा और समृद्ध आर्थिक स्थिति को बनाए रखने की चुनौती का सामना करने के लिए, विविध उत्पादन प्रणालियों के साथ बेहतर कृषि प्रणाली विकसित करना आवश्यक है। यह पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना उच्च और अधिक स्थिर कृषि उत्पादकता, आय और साल भर रोजगार के अवसर सुनिश्चित कर सकता है। कुशलक प्रबंधन और नवीनतम वैज्ञानिक तकनीकी द्वारा आर्द्रभूमि के उपयोग के निम्नलिखित फायदे हैं:

- जलीय खाद्य फसल उत्पादन पर मछली का सहक्रियात्मक प्रभाव पड़ता है।
- मछली द्वारा जलीय खरपतवार और संबंधित कीड़ों का नियंत्रण।
- संसाधनों के उपयोग की दक्षता में वृद्धि, फसल विविधीकरण और भोजन और आय के अतिरिक्त स्रोतों के माध्यम से निवेश जोखिम में कमी।
- किसानों द्वारा विशेष रूप से मछली के लिए खेतों का बार-बार दौरा किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप बेहतर फसल प्रबंधन होता है।
- कृषक परिवार की आय और पोषण स्तर में सुधार।
- कृषक परिवारों में स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन की संभानाओं में विकास।

बकरी का दूध : सेहतमंद जीवन की कुंजी

राकेश कुमार[1], रजनी कुमारी[1], शंकर दयाल[1], पी. सी. चंद्रन[1], रीना कमल[2], प्रदीप कुमार राय[1], ज्योति कुमार[1], मनोज कुमार त्रिपाठी[1], सुरेंद्र कुमार अहिरवाल[1], अमिताभ डे[1], कमल शर्मा[1], अनिर्बन मुखर्जी[1], सुधांशु शेखर[3] एवं अनुप दास[1]

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना[1]; कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, रांची[2]; कृषि विज्ञान केन्द्र, रामगढ़[3]

बकरियां हर जगह पाई जाती हैं और वे पहाड़ों, रेगिस्तानों, हरे-भरे उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों और घास के मैदानों के साथ-साथ विभिन्न प्रतिकूल वातावरण में भी अनुकूलित हो जाती हैं। यह एक बहुउद्देश्यीय जानवर है,जिससेमांस, दूध और चमड़ा जैसे विभिन्न प्रकार के उत्पाद प्राप्त होते हैं। बकरी को अक्सर "गरीबों की गाय" के रूप में जाना जाता है क्योंकि इससे हमें बहुत कम लागत पर गाय की तरह ही मांस, दूध और खाद प्राप्त होते हैं। अन्य पशुधन पालन की तुलना में आहार और चारे की कम आवश्यकता के कारण बकरी पालन में मामूली निवेश की आवश्यकता होती है। चूंकि बकरी पालन एक कम लागत वाला व्यवसाय है, इससे महिलाओं, छोटे किसानों, बच्चों और भूमिहीन मजदूरों को रोजगार के अवसर प्रदान होते हैं।

बकरी के दूध की पोषक संरचना

बकरी के दूध से बने उत्पादों का बड़ा व्यावसायिक महत्व है। गाय के दूध से तुलना करने पर बकरी का दूध अधिक महंगा होता है। बकरी का दूध

बेहतर बफरिंग क्षमता, क्षारीयता, पाचनशक्ति, प्रोटीन की उचित संरचना, फैटी एसिड और बायोएक्टिव घटक के संबंध में मानव या गाय के दूध से भिन्न होता है, जो दवा और मानव पोषण में चिकित्सीय मूल्य के लिए जिम्मेदार होता है (तालिका 1) (जेनेबे व अन्य, 2014). बकरी के दूध से मानव शिशुओं को उचित मात्रा में नियासिन, राइबोफ्लेविन, थायमिन, पैंटोथेनेट और विटामिन ए मिल सकते है। मानव पोषण के लिए बकरी के दूध का एक अन्य महत्वपूर्ण घटक फॉस्फेट और कैल्शियम है, जबकि मानव दूध में यह कम मात्रा में मौजूद होता है। इसलिए, बकरी का दूध फास्फोरस और कैल्शियम की एक महत्वपूर्ण मात्रा प्रदान करता है और इस प्रकार मानव शिशु द्वारा अवशोषित होता है। इसके साथ हीं बकरी के दूध में उच्च बफरिंग क्षमता होने के कारण गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल अल्सर और पेट गड़बड़ी के उपचार में भी लाभकारी सिद्ध हुआ है। इसे गाय के दूध से एलर्जी वाले रोगी के लिए एक विकल्प के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

तालिका 1. गाय और मानव दूध की तुलना में बकरी के दूध की संरचना

संरचना	बकरी	गाय	मानव
प्रोटीन %	3.0	3.0	1.1
कैसिइन (कुल प्रोटीन का %)	83	83	27
मट्ठा (कुल प्रोटीन का %)	17	17	73
वसा %	3.8	3.6	4.0

संतृप्त फैटी एसिड (कुल फैटी एसिड का %)	66.9	62.8	28.9
बहुअसंतृप्त वसा अम्ल (कुल फैटी एसिड का %)	9.4	12	50.5
लैक्टोज़ (g/100 mL)	4.1	4.5	6.5
विटामिन A (आईयू ./ग्राम वसा)	39	21	32
विटामिन B (यूजी/100 मि.ली.)	68	45	17
राइबोफ्लेविन (ug/100ml)	210	159	26
विटामिन C (मिलीग्राम एस्कॉर्बिक एसिड/100 मिली)	2	2	3
विटामिन D (आईयू /ग्राम)	0.7	0.7	0.3
कैल्शियम (मिलीग्राम/100 मिली)	121	87	26
आयरन	0.07	0.06	0.2
फास्फोरस (मिलीग्राम/100 मिली)	104	76	16

(स्रोत: काबेरिया एट अल., 2003; प्रोसेर एट अल., 2021)

बकरी के दूध के कार्यात्मक गुण

- **पोषक तत्वों और जैवसक्रियघटकों का स्रोत**

बकरी के दूध में उच्च मात्रा में पोषक तत्व होते हैं, जो सभी उम्र के मनुष्यों के लिए फायदेमंद होते हैं। इसमें आवश्यक फैटी एसिड, उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट (लैक्टोज के अलावा ऑलिगोसेकेराइड, ग्लाइकोप्रोटीन, ग्लाइकोलिपिड्स और न्यूक्लियोटाइड शर्करा शामिल हैं), खनिज (फॉस्फोरस, कैल्शियम और आयोडीन शामिल हैं) और विटामिन शामिल हैं। जैवसक्रिय घटक जैसे न्यूक्लियोटाइड शर्करा, पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड, मध्यम श्रृंखला फैटी एसिड, मुक्त अमीनो एसिड, सीरम प्रोटीन और पॉलीमाइन सभी बकरी के दूध में पाए जाते हैं। चूंकि बकरी के दूध में पाए जाने वाले ये घटक मानव दूध में पाए जाने वाले घटक के बराबर मात्रा में मौजूद होते हैं, इसलिए, यह शिशु फार्मूला तैयार (एमवेन्ज, 2015)करने के लिए एक बेहतर विकल्प है|

- **पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता**

बकरी के दूध में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज (जैसे जस्ता, आयरन, तांबा और सेलेनियम) की उच्च जैव उपलब्धता होती है। अन्य जानवरों की तुलना में बकरी के दूध में प्रोटीन की जैव उपलब्धता अधिक होती है, जिससे लगभग 8.7 ग्राम प्रोटीन (प्रोटीन के दैनिक मान का 17.4%प्रति 100 ग्राम) प्राप्त होता है। जबकि गाय के दूध की समान मात्रा 8.1 ग्राम (प्रोटीन के दैनिक मूल्य मान का 16.3%) है। बकरी के दूध में किसी भी अन्य दूध की तुलना में कैल्शियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस, तांबा, सेलेनियम, विटामिन A, विटामिन B6 और नियासिन की जैव उपलब्धता अधिक होती है (म्वेन्ज, 2015)।

स्रोत: https://www.healthifyme.com/blog/goat-milk-benefits/

- **पाचनशक्ति और सूक्ष्म पोषक तत्व अवशोषण की वृद्धि**

वसा और प्रोटीन अणुओं की प्रकृति बकरी के दूध की पाचनशक्ति को बढ़ाती है। बकरी के दूध में दही का तनाव (दही की कोमलता या कठोरता का माप) 10-70 ग्राम (औसतन 36 ग्राम) होता है, जबकि गायों में इसकी सीमा 15-200 ग्राम (औसतन 70 ग्राम) होती है। बकरी के दूध का कैसिइन हाइड्रोलिसिस गाय के दूध के कैसिइन के 76-90% की तुलना में 96% होता है और मनुष्यों में, कैसिइन हाइड्रोलाइज्ड होता है। बकरी के दूध के सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे फास्फोरस, आयरन, तांबा, कैल्शियम, जिंक, मैग्नीशियम और सेलेनियम किसी भी अन्य दूध की तुलना में अधिक प्रभावी ढंग से अवशोषित होते हैं (लोपेज़ व अन्य, 2000; बैरियोन्यूवो व अन्य,2002)। बकरी के दूध में एग्लूटीनिन की कमी होती है, जो वसा ग्लोब्यूल्स को इकट्ठा करने में सहायता करता है,

जिससे मलाई बनती है।

शारीरिक लाभ

- **टाइप-1 मधुमेह होने का खतरा कम हो जाता है**

बकरी का दूध टाइप I मधुमेह रोगियों के लीयेलाभकारी होता है, क्योंकि इसमें ए2बीटा-केसीन होता है(इलियट व अन्य, 1999)।

- **प्रीबायोटिक ऑलिगोसैकेराइड्स द्वारा रोगज़नक़ का निषेध**

बकरी के दूध में ऑलिगोसेकेराइड्स होते हैं, जो प्रीबायोटिक्स और एंटी-संक्रामक के रूप में कार्य करते हैं। बकरी के दूध में प्रति लीटर लगभग 250-300 मिलीग्राम ऑलिगोसेकेराइड होता है, जो अन्य व्यावसायिक दूध में पाए जाने वाले ऑलिगोसेकेराइड से 10 गुना अधिक है (म्वेन्ज़, 2015)।

- **बकरी का दूध पाचन तंत्र और आंतों के लिएलाभदायक**

बकरी का दूध अपच को कम करता है और आंतों और पेट में जलन वाले क्षेत्रों को शांत करता है। इसमें अच्छी बफरिंग क्षमता भी होती है जो गैस्ट्रिक अल्सर के इलाज और पाचन संबंधी समस्याओं से जुड़ी परेशानी को कम करने के लिए उपयुक्त है।

- **सूक्ष्मजीवरोधी गतिविधि**

बकरी के दूध में मध्यम श्रृंखला फैटी एसिड, जैसे कि कैप्रिलिक (C_8) और कैप्रिक एसिड (C_{10}) उच्च मात्रा में मौजूद होते हैं। कैप्रिक और कैप्रिलिक एसिड अत्यधिक सूक्ष्मजीवरोधी होते हैं और इन्हें कैंडिड एल्बिकेंस जैसी गंभीर प्रजातियों को रोकने के लिए आहार अनुपूरक में मिलाया जाता है। बकरी के दूध के लाभकारी प्रभावों के मुख्य घटकों का सारांश चित्र 1 में प्रस्तुत किया गया है।

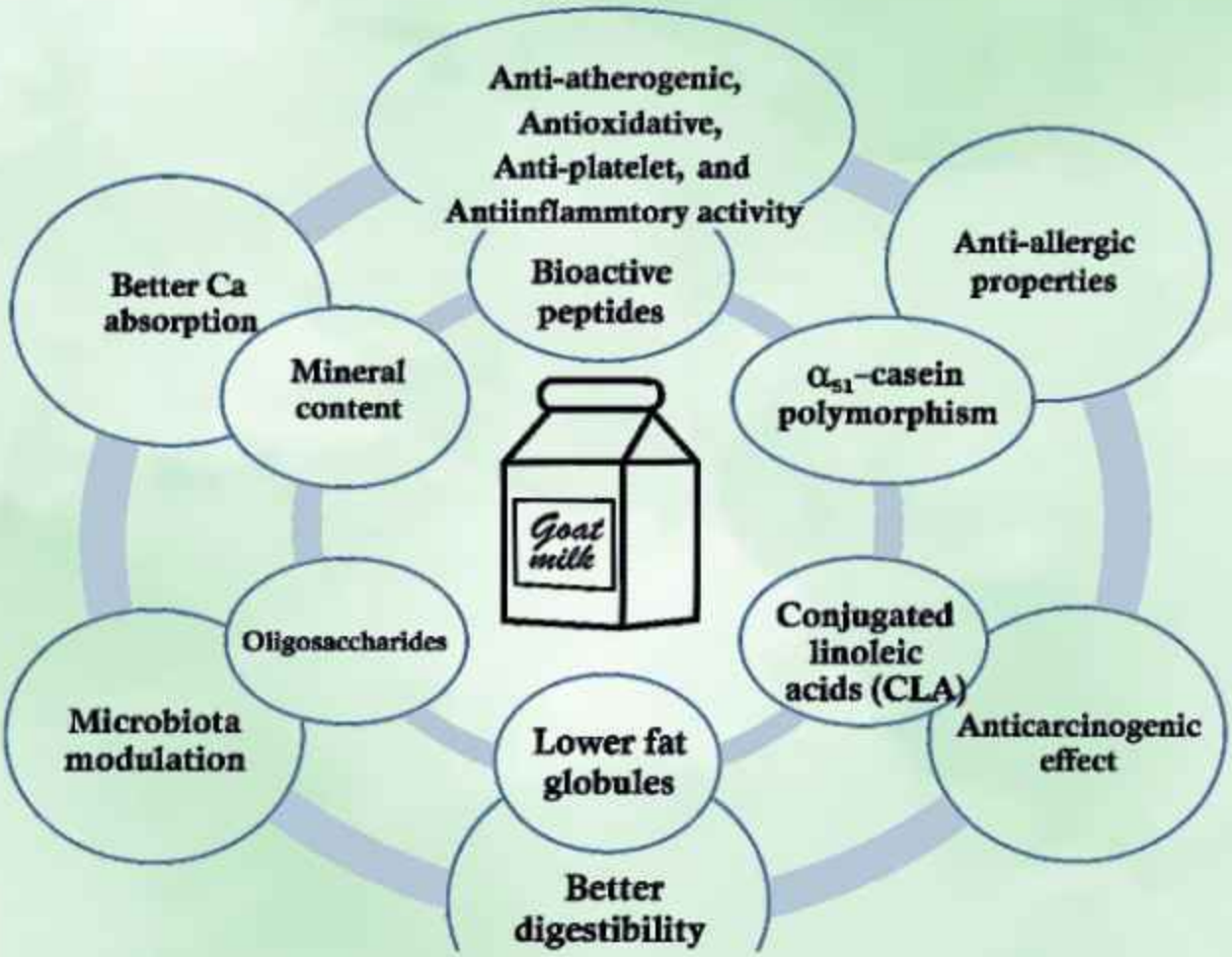

चित्र 1. बकरी के दूध के लाभकारी प्रभावों के मुख्य घटकों का सारांश (वेरुक व अन्य,, 2019)

पूर्वी भारत में कृषिवानिकी: आजीविका सुरक्षा और पर्यावरणीय संरक्षण

अभिषेक कुमार, शिवानी, संजीव कुमार, गौस अली, वेद प्रकाश, अकरम अहमद एवं उमेश कुमार मिश्र

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

पूर्वी भारत की पारंपरिक कृषि पद्धतियों में कृषिवनिकी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक ऐसी भूमि उपयोग प्रणाली है, जिसमें कृषि, वृक्षारोपण और पशुपालन को एकीकृत किया जाता है। इस प्रणाली का उद्देश्य पर्यावरणीय और आर्थिक लाभ प्रदान करना है। पूर्वी भारत, जो देश की कुल भौगोलिक भूमि का केवल 21.85% हिस्सा कवर करता है, देश की 34% जनसंख्या और 32% पशुधन का पोषण करता है। इस क्षेत्र में खंडित भूखंड, जलवायु परिवर्तन और निम्न उत्पादकता जैसी समस्याएं हैं। ऐसे में कृषिवनिकी इन चुनौतियों से निपटने के लिए एक कारगर समाधान प्रस्तुत करती है। कृषिवनिकी एक बहुपरतीय और उपयोगी भूमि उपयोग प्रणाली है, जो विभिन्न प्रकार के लाभ प्रदान करती है। सबसे पहले, यह ग्रामीण समुदायों की आजीविका सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि यह खाद्य, चारा और ईंधन का उत्पादन करके किसानों की आय में वृद्धि करती है। इसके अलावा, कृषिवनिकी पर्यावरणीय सेवाओं का भी योगदान करती है, जैसे कि मृदा उर्वरता का सुधार, सूक्ष्म जलवायु में बदलाव और जैव विविधता का संरक्षण। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए यह प्रणाली कार्बन संसेचन के माध्यम से मददगार होती है। कृषिवनिकी बंजर और निम्न गुणवत्ता वाली भूमि को पुनः उपजाऊ बनाने में भी सहायक होती है, जिससे भूमि पुनरुद्धार की प्रक्रिया में सहायता मिलती है। इस प्रकार, कृषिवनिकी एक समग्र और सस्टेनेबल प्रणाली है, जो आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक दृष्टिकोण से लाभकारी है।

पूर्वी भारत में कृषिवनिकी प्रणालियां

पूर्वी भारत में विभिन्न प्रकार की कृषिवनिकी प्रणालियां प्रचलित हैं, जो स्थानीय जरूरतों और पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल हैं। बिहार में मुख्यतः कृषि-सिल्वीकल्चर और कृषि-उद्यानिकी प्रणालियां अपनाई जाती हैं। आम, लीची और अमरूद जैसे फलों के पेड़ प्रमुख हैं। इसके अलावा, किसानों द्वारा शीशम, महोगनी, और सागौन जैसे पेड़ों को खेत की मेड़ों पर उगाया जाता है। यह प्रणाली न केवल किसानों को आय प्रदान करती है, बल्कि मिट्टी के कटाव को भी रोकती है। झारखंड में कृषिवनिकी की पारंपरिक पद्धतियों में होम गार्डन और खेतों में बिखरे हुए पेड़ शामिल हैं। महुआ, पलाश और नीम जैसे पेड़ों को खेतों की मेड़ों पर उगाया जाता है। यहां की प्रमुख फसलें हल्दी, टमाटर, और मिर्च हैं। इसके अतिरिक्त, रेशम उत्पादन और बाँस आधारित कृषिवनिकी भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ओडिशा में पोडू खेती, कृषि-सिल्वीकल्चर, और होम गार्डन जैसी प्रणालियां लोकप्रिय हैं। यहां के किसान आमतौर पर रागी, मक्का और अरहर के साथ सागौन और बांस जैसे पेड़ उगाते हैं। इसके अलावा, जलभराव क्षेत्रों में यूकेलिप्टस और कैसुरिना जैसे पेड़ प्रभावी रूप से उगाए जाते हैं। पश्चिम बंगाल में होम गार्डन और कृषि-सिल्वीकल्चर प्रणाली प्रमुख हैं। उत्तरी बंगाल में चाय बागानों के साथ सहायक वृक्ष प्रचलित हैं, जैसे कि एल्बिज़िया और यूकेलिप्टस। बांस आधारित प्रणाली और फलों के बागान, जैसे आम और अमरूद, भी इस क्षेत्र की कृषिवनिकी प्रणाली का हिस्सा हैं।

पूर्वी भारत के लिए प्रमुख कृषिवनिकी मॉडलऔर उनकी उपयोगिता

पूर्वी भारत में विभिन्न प्रकार के कृषिवनिकी मॉडल अपनाए गए हैं, जो किसानों को बेहतर उत्पादकता और आय प्रदान करते हैं।

1. ***आम आधारित कृषि-वृक्ष मॉडल***

   आम, पूर्वी भारत में व्यापक रूप से उगाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण फलदार वृक्ष है। इसकी शुरुआती अवस्था में किसान गेहूं और चावल जैसे फसलें उगाते हैं। पूर्ण विकसित अवस्था में हल्दी और अदरक जैसी छाया-सहिष्णु फसलें उगाई जाती हैं। यह मॉडल मृदा और जल संरक्षण में सहायक है।

2. ***जलभराव क्षेत्रों के लिए मॉडल***

   जलभराव वाले क्षेत्रों में बायोड्रेनज प्रणाली अपनाई जाती है, जिसमें गहरे जड़ वाले वृक्ष, जैसे कि यूकेलिप्टस और कैसुरिना, लगाए जाते हैं। यह मॉडल न केवल अतिरिक्त जल को निकालने में सहायक है, बल्कि मिट्टी की गुणवत्ता में भी सुधार करता है। इसके अलावा, इन क्षेत्रों में चारागाह और नमक-सहनशील फसलों को जोड़कर उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है।

3. ***तीन-स्तरीय कृषि-वृक्ष मॉडल***

   इस मॉडल में आम और सागौन के पेड़ों को खेतों की मेड़ों पर उगाया जाता है, जबकि मुख्य खेत में धान और दाल जैसी फसलें उगाई जाती हैं। यह मॉडल कार्बन संसेचन और आय

सृजन दोनों के लिए प्रभावी है।

4. ***लीची आधारित कृषि-उद्यानिकी मॉडल***

लीची पूर्वी भारत के बिहार, झारखंड, ओडिशा और पश्चिम बंगाल में व्यापक रूप से उगाई जाती है। इसके साथ बोदी, तिल, काला चना, और तोरिया जैसी फसलें उगाई जाती हैं। यह मॉडल जल और मिट्टी संरक्षण के साथ-साथ जैव विविधता को प्रोत्साहित करता है।

5. ***जलभराव क्षेत्रों में बांस आधारित मॉडल***

जलभराव क्षेत्रों में बांस का उपयोग बायोड्रेनज और जल स्तर नियंत्रण के लिए किया जाता है। इसके साथ उगाई जाने वाली फसलें मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करती हैं और किसानों को अतिरिक्त आय प्रदान करती हैं।

6. ***प्लांटेशन फसल आधारित मॉडल***

नारियल और सुपारी जैसे वृक्षों के साथ मौसमी फसलें, जैसे कद्दू, पालक, और मिर्च उगाई जाती हैं। यह मॉडल छोटे किसानों के लिए उपयोगी है, क्योंकि यह कम भूमि में अधिक आय प्रदान करता है।

7. ***कपोक आधारित मॉडल***

कपोक के वृक्षों के साथ गेहूं जैसी फसलों की खेती करने से फसल उत्पादन में वृद्धि होती है। यह मॉडल विशेष रूप से उन क्षेत्रों में उपयोगी है जहाँ मृदा अपरदन एक समस्या है।

चुनौतियां और समाधान

हालाँकि कृषिवनिकी के लाभ अनेक हैं, फिर भी इसके प्रसार में कई बाधाएँ हैं, जिनमें प्रमुख हैं: गुणवत्ता युक्त पौध सामग्री की कमी और उत्पादों के लिए उपयुक्त बाजार व्यवस्था का अभाव। इन समस्याओं के समाधान के लिए कुछ महत्वपूर्ण उपाय किए जा सकते हैं। सबसे पहले, अनुसंधान और विकास के माध्यम से तेज वृद्धि वाले वृक्षों की प्रजातियों को बढ़ावा देना आवश्यक है। इसके अलावा, किसानों को प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता प्रदान करने से उनके लिए कृषिवनिकी अपनाना आसान हो सकता है। अंततः, सहकारी संस्थाओं और निजी क्षेत्र की भागीदारी को प्रोत्साहित करना भी इस क्षेत्र में सुधार ला सकता है और इसके विकास को गति प्रदान कर सकता है।

निष्कर्ष

कृषिवनिकी पूर्वी भारत में छोटे और सीमांत किसानों के लिए एक स्थायी और लाभदायक भूमि उपयोग प्रणाली है। यह न केवल आजीविका सुरक्षा प्रदान करती है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और जलवायु परिवर्तन अनुकूलन में भी योगदान देती है। हालांकि, इस प्रणाली के बड़े पैमाने पर प्रसार के लिए अनुसंधान और गुणवत्ता वाले पौधों की उपलब्धता सुनिश्चित करना आवश्यक है। उचित नीतियों और जागरूकता अभियानों के माध्यम से कृषिवनिकी को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है, जिससे पूर्वी भारत के कृषि-प्रधान क्षेत्रों में समृद्धि और स्थिरता लाई जा सकती है।

जल संकट के समाधान की ओर: सीवेज जल आधारित चारा उत्पादन

गौस अली[1], हर्देव राम[2], राकेश कुमार[2], राकेश कुमार[1], अभिषेक कुमार[1] एवं संजीव कुमार[1]

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना[1]

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल[2]

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि भवन, नई दिल्ली[3]

आज के समय में जल संसाधनों की उपलब्धता और सतत कृषि उत्पादन एक महत्वपूर्ण वैश्विक मुद्दा बन चुका है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या और जल प्रदूषण की समस्या ने पारंपरिक कृषि प्रणालियों को चुनौती दी है। ऐसे में सीवेज जल आधारित चारा उत्पादन एक अभिनव और सतत समाधान के रूप में उभर रहा है। यह न केवल जल संकट को कम कर सकता है, बल्कि पर्यावरणीय रूप से भी लाभकारी हो सकता है।

भारत में जल संकट एक बढ़ती हुई चिंता का विषय है, खासकर कृषि, औद्योगिक और घरेलू क्षेत्रों की बढ़ती मांग को देखते हुए। बढ़ती जनसंख्या और अनिश्चित मानसूनी पैटर्न के कारण प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता लगातार घट रही है।भारत में विश्व की 18% जनसंख्या निवास करती है, लेकिन इसके पास केवल 4% ताजे जल संसाधन हैं। कृषि जल की अधिकांश मांग भूजल से पूरी होती है, जिससे इसका अत्यधिक दोहन हो रहा है। जलवायु परिवर्तन और असंगत वर्षा इस समस्या को और गंभीर बना रहे हैं। जल प्रबंधन एक गंभीर मुद्दा बन गया है।केंद्रीय भूजल बोर्ड (2023) के अनुसार, भारत में 256 में से 150 जिले पानी की गंभीर कमी से जूझ रहे हैं। राष्ट्रीय औसत के अनुसार, 40% सिंचाई पानी अपशिष्ट में बदल जाता है। इसका अधिकांश हिस्सा सीवेज के रूप में नदियों और जल निकायों में बहा दिया जाता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां पशुपालन कृषि का अभिन्न अंग है। पशुधन के लिए पोषणयुक्त चारे की आवश्यकता होती है, जो कभी-कभी जल संकट और भूमि की उपलब्धता की समस्या के कारण पूरी नहीं हो पाती। इस चुनौती से निपटने के लिए वैज्ञानिक और किसान विभिन्न नवाचारों पर कार्य कर रहे हैं। इनमें से एक प्रमुख नवाचार है—चारा उत्पादन में सीवेज जल का उपयोग। यह तकनीक जल संसाधनों के कुशल उपयोग के साथ-साथ अपशिष्ट जल के पुनर्चक्रण में भी सहायक सिद्ध हो सकती है।आज के समय में बढ़ती आबादी, जल संकट और पर्यावरणीय समस्याओं ने कृषि और विशेष रूप से चारा उत्पादन के लिए नए और नवाचारी संसाधनों की आवश्यकता को उजागर किया है। सीवेज जल, जिसे आमतौर पर अनुपयोगी माना जाता है, कृषि के लिए एक उपयोगी संसाधन सिद्ध हो सकता है। यह न केवल चारे की गुणवत्ता और मात्रा में सुधार करता है, बल्कि जल पुनर्चक्रण और पर्यावरणीय संतुलन को भी बढ़ावा देता है। इस अध्याय में, हम सीवेज जल के उपयोग की प्रक्रिया, इसके लाभ, चुनौतियां और संभावनाओं को व्यापक उजागर करेंगे।

सीवेज जल: एक संक्षिप्त परिचय

सीवेज जल वह जल होता है, जो घरेलू, औद्योगिक और नगरपालिकीय स्रोतों से निकले अपशिष्ट जल से प्राप्त होता है। यदि इसे वैज्ञानिक विधियों द्वारा शोधित किया जाए, तो यह कृषि और विशेष रूप से चारा उत्पादन के लिए उपयोगी हो सकता है। शोधित सीवेज जल में पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और अन्य पोषक तत्व पाए जाते हैं, जो मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

सीवेज जल: सीवेज जल वह अपशिष्ट जल है, जो घरेलू, औद्योगिक और व्यावसायिक गतिविधियों से उत्पन्न होता है। इसमें जैविक और अजैविक तत्वों का मिश्रण होता है। आमतौर पर इसे दो वर्गों में बांटा जा सकता है:

1. **घरेलू सीवेज जल:** यह मुख्यतः रसोई, स्नान और शौचालय से उत्पन्न होता है।
2. **औद्योगिक सीवेज जल:** इसमें कारखानों और अन्य औद्योगिक इकाइयों का अपशिष्ट जल शामिल है।

चारा उत्पादन में उपयोग के लिए मुख्यतः घरेलू सीवेज जल को प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि इसमें पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व अधिक मात्रा में होते हैं।

चारा उत्पादन में सीवेज जल का महत्व

1. ***पोषक तत्वों का प्राकृतिक स्रोत***

   सीवेज जल में जैविक पदार्थ, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और अन्य पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। ये पोषक तत्व पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं। चारा उत्पादन के लिए ये तत्व उर्वरकों का विकल्प बन सकते हैं।

2. ***जल संकट का समाधान***

   भारत जैसे देशों में, जहां जल संकट एक गंभीर समस्या है, सीवेज जल का उपयोग सिंचाई के लिए एक व्यवहारिक समाधान हो सकता है। यह भूजल के अंधाधुंध उपयोग को रोकने में मदद करता है।

3. *कचरे का प्रबंधन और पुनर्चक्रण*

सीवेज जल का कृषि में उपयोग करके इसे पर्यावरण में फेंकने के बजाय पुनः उपयोग किया जा सकता है। इससे न केवल कचरे की समस्या कम होगी, बल्कि जल संसाधनों का सही उपयोग सुनिश्चित होगा।

4. *लागत में कमी*

उर्वरकों और सिंचाई जल की बढ़ती लागत को देखते हुए, सीवेज जल का उपयोग एक किफायती विकल्प है। यह छोटे और सीमांत किसानों के लिए अत्यधिक लाभकारी है।

सीवेज जल उपचार की प्रक्रिया

चारा उत्पादन में उपयोग से पहले सीवेज जल को उपचारित करना आवश्यक है। यह प्रक्रिया मुख्यतः निम्न चरणों में होती है:

प्राथमिक उपचार

बड़े कण, प्लास्टिक और अन्य ठोस कचरे को हटाना। रेत और मिट्टी के कणों को तलछट के रूप में अलग करना।

द्वितीयक उपचार

जैविक पदार्थों को हटाने के लिए सूक्ष्मजीवों का उपयोग। पानी में घुले हानिकारक तत्वों को निकालना।

तृतीयक उपचार

रसायनिक प्रक्रियाओं के माध्यम से पानी को और शुद्ध करना। रोगाणुओं और भारी धातुओं को हटाने के लिए उन्नत तकनीकों का उपयोग। इन प्रक्रियाओं के बाद ही सीवेज जल को चारा उत्पादन के लिए सुरक्षित रूप से उपयोग किया जा सकता है।

चारा उत्पादन में सीवेज जल के उपयोग के लाभ

1. *मिट्टी की उर्वरता में सुधार*

सीवेज जल में जैविक पदार्थों की अधिकता के कारण मिट्टी में कार्बनिक तत्वों का संचार होता है। यह मिट्टी की संरचना और उर्वरता को बढ़ाने में मदद करता है।

2. *चारे की उत्पादकता और गुणवत्ता में सुधार*

सीवेज जल का सही उपयोग चारे की मात्रा और गुणवत्ता दोनों में सुधार करता है। यह चारे को पौष्टिक बनाता है, जिससे पशुओं की सेहत बेहतर होती है।

3. *पर्यावरणीय प्रभाव*

सीवेज जल का उपयोग पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करता है। इसका कृषि में उपयोग जल निकायों में अपशिष्ट जल के बहाव को रोकता है।

4. *उच्च उत्पादकता*

सीवेज जल में पाए जाने वाले पोषक तत्वों की अधिकता के कारण चारे की उपज और गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

5. *उत्पादन लागत में कमी*

सीवेज जल का उपयोग करने से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है, जिससे किसानों की लागत घटती है।

चुनौतियां और सावधानियां

1. *प्रदूषण का खतरा*

यदि सीवेज जल को बिना उपचार के उपयोग किया जाए, तो इसमें मौजूद हानिकारक रसायन और सूक्ष्मजीव फसलों, मिट्टी और मानव स्वास्थ्य के लिए खतरनाक हो सकते हैं।

2. *उपचार प्रक्रिया की उच्च लागत*

सीवेज जल के शुद्धिकरण के लिए उन्नत तकनीकों और उपकरणों की आवश्यकता होती है। यह प्रक्रिया महंगी हो सकती है, खासकर छोटे किसानों के लिए।

3. *सामाजिक स्वीकृति*

कई स्थानों पर, सीवेज जल के उपयोग के प्रति किसानों और समाज में जागरूकता की कमी है। इसे स्वीकार्यता दिलाने के लिए शिक्षा और जागरूकता अभियान जरूरी हैं।

4. *नियामक ढांचा और नीति निर्माण*

सीवेज जल उपयोग के लिए स्पष्ट नीतियों का अभाव है। इस क्षेत्र में सुधार के लिए सरकारी नीतियों और नियमों की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

चारा उत्पादन में सीवेज जल का उपयोग एक प्रभावी और नवाचारी तरीका है, जो न केवल जल संसाधनों का संरक्षण करता है, बल्कि कृषि उत्पादन को भी बढ़ावा देता है।सीवेज जल का उपयोग पर्यावरण-अनुकूल चारा उत्पादन के लिए एक प्रभावी समाधान हो सकता है। यह न केवल जल संकट और उर्वरक लागत को कम करता है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में भी सहायक है। हालांकि, इसके सुरक्षित उपयोग के लिए उचित शोध, प्रशिक्षण और सरकारी सहयोग की आवश्यकता है। उचित नीतियों, तकनीकी सहायता और जागरूकता के माध्यम से इसे मुख्यधारा में लाया जा सकता है। इस दिशा में ठोस कदम उठाकर कृषि क्षेत्र में स्थिरता और पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित किया जा सकता है। यदि इस तकनीक को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपनाया जाए, तो यह भारतीय कृषि और पशुपालन क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती है।

आंवला मूल्यसंवर्धन: महिला उद्यमियों के लिए सुनहरा अवसर

प्रेरणा नाथ[1], एस. जे. काले[2] एवं ए. के. सिंह[1]

कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची[1]; भारतीय प्राकृतिक राल एवं गोंद संस्थान, राँची[2]

परिचय

COVID -19, वैश्विक महामारी के कारण मेरे सभी किसान भाई एवं बहनों को अलग–अलग समस्याओं का सामना करना पढ़ रहा है। सभी लोग कठिनाईयों का सामना कर रहे है बहुत लोगो की नौकरी चली गई है तो कहीं मेहनताना काट दिया गया है तो ऐसे समय में क्या करें की घर बैठी महिलाओं को एक आसान रोज़गार मिल जाए ताकि वह अपने साथ–साथ अपने परिवार का भी ख्याल रख सके। ऐसी स्थिति में वह घरेलु स्तर पर फल या सब्ज़ी का प्रसंस्करण करके अपनी आमदनी बढ़ा सकती है और अपना और अपने परिवार कों संभाल सकती है एवं पालण पोशण कर सकती है।

आंवला एक कसैला फल है जिसे सीधा नहीं खाया जा सकता, इसलिए इसके मूल्यवर्धित उत्पाद बनाकर ग्रामीण महिलाएं अपनी आमदनी को बढ़ा सकती है। जो बहने प्रसंसकरण के लिए इच्छुक है वह निम्नलिखित अनुसार आंवला का प्रसंसकरण कर सकती है। पूरे वर्श में केवल कुछ सप्ताह ही आंवला सस्ते और बहुतायत से मिलते है। जब आंवला सस्ते दामपर मिल रहे हों तब इनका परिरक्षण करके इनका उपयोग किया जा सकता हैं ताकि जब आंवला महंगे हों तब इनका इस्तेमाल किया जा सके। आंवला एक कसैला फल है जिसे सीधा नहीं खाया जा सकता, इसलिए इसके मूल्यवर्धित उत्पाद बनाकर ग्रामीण महिलाएं अपनी आमदनी को बढ़ा सकती है औंला जब बहुतायत में मिलता तब इसका दाम कम होता है और तब इसके उत्पाद बनाकर रख लेने से हम इन्हे वर्षभर बेचकर आमदनी कर सकते है। आंवला से कई उत्पाद बनाये जाते हैं जिनमें कैंडी चूर्ण जैम जेली का स्थान सबसे ऊपर है। इन उत्पादों को बनाने की विधि बहुत ही सरल है और टिकाऊ है जिसमें ज़्यादा उपकरणों और निवेश की आवश्यकता नहीं होती।

इस कोनोना काल में जहां सब रोज़गार ठप पड़े हैं वहीं महिलाएं इस सरल तरीके से आंवला के खाद्य उत्पाद बनाकर अपनी आमदनी कर सकती है और अपने परिवार को सहारा दे सकती है। आंवला हमारे देश का प्राचीन और उपयोगी फल है जिसे इंडियन गूज़बेरी के नाम से जाना जाता है। यह यूफोरर्बिएसी कुल का पौधा है जिसे भारत में आसानी से उगाया जाता है। वर्तमान में इसकी खेती भारत में 50000 हेक्टेयर में हो रही है जिससे 2 लाख मीट्रिक टन आंवले का उत्पादन हो रहा है। परंतु इसे अधिक समय तक ताज़े रूप में भंडारित करके नहीं रखा जा सकता क्योंकि यह जल्दी खराब हो जाता है। इसके विशिष्ट गुण और विविध उपयोग के कारण प्रकृति के अनमोल उपहारों में इसका स्थान सर्वप्रथम है। कई ग्रंथों में इसे अमृत फल की संज्ञा भी दी गई है। हिंदू पुराणों और धर्म ग्रंथों के अनुसार आंवला को एक पावन वृक्ष भी माना गया है। कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष की नवमी को आंवले के पेड़ की पूजा एवं दान पुण्य किया जाता है। प्राचीन ऋषि मुनियों की औषधियों में यह सबसे महत्वपूर्ण अवयव रहा है। आज भी इसका उपयोग आयुर्वेदिक तथा यूनानी पद्धति की औषधियों में काफ़ी वृहत्त स्तर पर किया जाता है। त्रिफला, च्यवनप्राश तथा अमृतकलश ख्याति प्राप्त स्वदेशी आयुर्वेदिक औषधियाँ हैं, जो मुख्यता आंवले से बनाई जाती है।

चित्र 1 ताज़ा आंवला फल

पोषक तत्व एवम महत्व

आँवला एक छोटे आकार और हरे रंग का फल है। यह जलवायु एवं भूमि के प्रति सहिष्णु होता है। औषधीय गुणों से भरपुर आँवला एक बहुउपयोगी प्राचीनतम फल है। आँवला में काफी गुणकारी पोषक तत्व पाए जाते है। इसके औषधीय गुणों का वर्णण कई ग्रंथों में मिलता है। आयुर्वेद में आंवला को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए अमृत फल कहा गया है। विटामिन सी की प्रचुर मात्रा के कारण इसमें

एंटीआक्सीडेंट तत्व भी मौजूद होते हैं। आंवले का उपयोग औषधि के रूप में होता है। इस में पाए जाने वाले तत्वों से कई बीमारियां दूर होती है। अध्ययन से पता चलता है कि आवले को नियमित रुप से आहार में शामिल किया जाए तो यह वातावरण के भारी तत्वों जैसे शीशा, एलुमिनियम, निकिल आदि के ज़हरीले प्रभाव को भी दूर करता है। अध्ययनों से यह भी ज्ञात होता है कि गुणसूत्रों की असमानता को कम करने में भी आंवले का विटामिन सी बहुत प्रभावी है।

इसके फलों का स्वाद अम्लीय तथा कसैला होता है। यह कसैलापन इसमें मौजूद पॉलीफिनॉल, गैलिक एसिड तथा टैनिन के कारण होता है। प्रोटीन, कार्बोहायड्रेटस तथा खनिज लवण इसमें प्रचूर मात्रा में पाए जाते है। आँवला विटामिन सी का प्रमुख स्त्रोत है।

यह हिमोग्लोबिन प्रतिशत तथा लाल रक्त कणों की संख्या को बढ़ाता है। सूखे फल कैलेस्ट्रोल के स्तर को कम करते हैं जो यह दर्शाता है कि लंबे समय तक आंवला खाना लाभदायक है। यह चर्बी कम करता है तथा प्रोटीन स्तर को बढ़ाता है क्योंकि इसमें धनात्मक नाइट्रोजन संतुलन पैदा करने की क्षमता होती है और फिर फैटी एसिड के स्तर को कम करता है। कच्चा आंवला कोलेस्ट्रॉल को कम करने के साथ धमनियों में अवरोध को भी कम करता है तथा मोटापा दूर करने में सहायक है। आंवले का प्रयोग एचआईवी विषाणु को भी कम करने में प्रभावी है।

विटामिन सी की भरपूर मात्रा के कारण दांत और मसूड़ों के रोगों में तथा हड्डी, आंख व उदर के अनेक रोगों में इसकी विशेष भूमिका है आंवले के सेवन से शरीर में जीर्ण होने की प्रक्रिया बंद हो जाती है। आँवला खांसी, श्वास रोग, रक्तपित्त, दमा, क्षय, छाती के रोग, हृदय रोग आदि को नष्ट करने की शक्ति रखता है। चर्बी घटाकर मोटापा दूर करता है सिर के केशों को काले लंबे व घने रखता है। स्मरणशक्ति में वृद्धि तथा बुढ़ापा दूर रखने के लिए यह फल काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। सौंदर्य प्रसाधन उत्पादों के रूप में आंवले का उपयोग बालों को स्वस्थ व काला रखने में होता है।

आंवला के मूल्यसंवर्धन की आवश्यकता

मनुष्य को अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए आंवले का सेवन करना चाहिए परंतु आँवला ताज़े फल के रूप में कम स्वीकृत है। अपने कसैले तथा अम्लीय स्वाद के कारण यह फल सीधे उपयोग के लिए उपयुक्त नहीं है। पेड़ से तोड़ने के बाद यह 5 से 6 के अंदर ही यह खराब हो जाता है। इस दृष्टि से आंवले फल का प्रसंस्करण यदि किया जाए तो उसकी मूल्यता एवम स्वीकार्यता को बढ़ाया जा सकता है। प्रसंस्करण करने से इसको लंबे समय तक उपलब्ध कराया जा सकता है। आंवला के कुछ प्रमुख उत्पाद इस प्रकार हैं जैसे कैंडी, मुरब्बा एवं अचार। इसके अतिरिक्त आंवले का जूस, बर्फी, लड्डू, सुपारी आदि कुछ अपेक्षाकृत नए उत्पाद है जिनका प्रचलन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। विगत वर्षों में आंवले के क्षेत्र तथा उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई है जिसके कारण आंवला प्रसंस्करण स्तर में वृद्धि तथा कुछ नए एवं परिष्कृत उत्पादों की आवश्यकता भी बढ़ गई है। इन स्थितियों को ध्यान में रखकर आंवला प्रसंस्करण क्षेत्र में उन्नत तकनीकों तथा बेहतर उत्पादों की नितांत आवश्यकता है।

आंवला फल की किस्में

आंवले की बहुत सी किस्में पाई जाती है। जिसमें 1. एन ए–7, 2. कंचन, 3. एन ए–10, 4. लक्ष्मी 52, 5. देसी चैकइया, 6. कृष्णा 7 बनारसी, 8 कंचन 9 नरेंद्र आदि प्रमुख है। भारत में बनारसी आवला अच्छा माना जाता है जिसका आकार बड़ा और रंग पीला पन लिए होता है।

आंवला फल का मूल्य संवर्धन

आंवला फल चूंकी तुरंत खराब होने वाला है इसके मूल्य वर्धक उत्पादों में बदलने से ना सिर्फ कटाई पश्चात क्षति कम होती है अपितु उत्पादकों को भी संकट विक्रय और मौसम के दौरान अधिकय पर नियंत्रण करके कम नुकसान होता है। आंवले फल में मौजूद अद्वित्य पोषण और औषधीय गुणों के कारण इसके कई अच्छे संसाधित पदार्थ बनाए जा सकते हैं। आंवला फल का उपयोग तीन प्रकार से होता है जैसे खाद्य पदार्थ के रूप में, स्वास्थ्य उत्पाद के रुप में, और सौंदर्य प्रसाधन के रूप में।

आंवला परिरक्षण और प्रसंस्करण के लाभ

- फल को क्षतिग्रस्तता से बचाना तथा फल की उपलब्धता बाज़ार में अधिक समय तक होना।
- प्रसंस्करण द्वारा नए उत्पाद बनाना।
- प्रसंस्कृत पदार्थ की कीमत टिकाऊ बनाना और बाजार में अत्याधिक उपलब्धता को रोकना।
- फल के पोषक तत्वों को सुरक्षित रखना तथा कटे फटे फलों का समुचित प्रयोग करना।
- किसान को अच्छी आमदनी के साथ साथ फल उत्पाद की कीमत को स्थिर रखना।
- परिरक्षित पदार्थों का निर्यात करके विदेशी धन

कमाना।

- उपभोक्ता को नए नए आधुनिक पोष्टिक उत्पाद तैयार करवा कर स्वास्थ्य लाभ पहुंचाना।
- आधुनिक तकनीक द्वारा हाईटेक प्रसंस्करण उद्योग की वृद्धि करना।
- फल संरक्षण द्वारा दूसरी वस्तुओं की फैक्ट्री को अधिक बढ़ावा मिलता है। जैसे चीनी की फैक्ट्री, कांच की फैक्ट्री, टीन और रसायनिक पदार्थों की फैक्ट्री इत्यादि।
- संरक्षित किए गए फल स्थान कम घेरते हैं तथा परिवहन खर्च कम होता है।
- फल संरक्षण से बेरोज़गार रोज़गार सृजित करता है।

चित्र 2 आंवला के विभिन्न अनुप्रयोग

आंवले के मूल्य संवर्धन के लिए कुछ ध्यान रखने योग्य बातें

1. आंवले फल बड़े–बड़े लेने पर गूदा की मात्रा ज़्यादा होने से उत्पाद उच्च गुणवत्ता का होता है।
2. जहां तक संभव हो बिना रेशे वाले आंवले का उपयोग ही करें।
3. साफ एवं धब्बा रहित फलों का ही प्रयोग करें। फल का गला सड़ा हिस्सा निकाल दे।
4. जार एवम बोतलों को भरने से पहले उनका साफ होना सुनिश्चित कर लें।
5. भंडारण के लिए ठंडी एवं नमी रहित जगह का ही चुनाव करें।
6. सुखाते समय तापमान का निरीक्षण करते रहें।
7. पाउडर की पैकिंग करने के बाद एक बार सील अवश्य चेक कर लें।

तालिका 1 आंवला आधारित उत्पादों की विशेषताएं

क्र	विशेषताएँ	शरबत	जैम	कैंडी	मुरब्बा	पाउडर शरेड
			प्रतिशत			
1	गुदा या फल का रस	25	45	–	55	–
2	कुल घुलनशील ठोस	40 से 50	68	65	68	–
3	अम्लता	1.0	0.5 से 0.6	–	–	–
4	नमी की मात्रा	–	3.2	–	–	–
5	इन्वर्ट शुगर	–	40 प्रतिशत से ज्यादा नहीं	–	–	–

तालिका 2 आंवला आधारित उत्पादों को बनाने के लिए उपयोग में आने वाले यंत्र

क.	यंत्र	प्रयोजन
1	आंवला शेडर आंवला घर्षणी	आंवला को कद्दूकस करने के लिए
2	क्राऊन कोर्किंग यंत्र	बोतल को सील करने के लिए
3	कॉन्सन्ट्रेटर इलेक्ट्रिकल कैटल	फल के रस गुद्दे और चीनी को मिलाने के लिए
4	हाइड्रोलिक प्रेस	आंवला के टुकड़ों को दबाकर रस निकालने के लिए
5	ट्रे ड्रयार	आंवला को सुखाने के लिए
6.	आंवला ग्रेडर	आंवला को गुणवत्ता एवं प्रयोग के आधार पर विभिन्न ग्रेड में छांटने के लिए

** 1,2,3,4– स्क्वैश, तुरंत पीने योग्य पेय , आंवला कैंडी, मुरब्बा, जैम, चटनी 1,5 आमला पाउडर साइड 3,5 आंवला कैंडी*

आंवले के मूल्य वर्धित उत्पाद

1) आंवला मुरब्बा

आंवले का मुरब्बा रक्त शुद्धि के साथ साथ शरीर में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को भी कम करता है। आंवले का मुरब्बा आंख की रोशनी बढ़ाने में सहायक होता है। मुरब्बा बनाने के कई तरीके हैं। मुरब्बा बनाने की सामग्री एवम विधि नीचे दी गयी है ।

सामग्री	मात्रा
आंवला	100 कि.ग्रा.
चीनी	100 कि.ग्रा
नमक	2 कि.ग्रा.
फिटकरी पानी	50 ली.
सिट्रिक एसिड	2 कि.ग्रा.

विधि

पके एवं बड़े आकार के दाग रहित फलों का चुनाव करें। साफ पानी से धो लें। स्टील के कांटे की सहायता से फलों को गोद कर छेद कर लें। इन फलों को नमक फिटकरी के घोल में 24 घंटे के लिए डुबो दें। फलों को ताजे ठंडे पानी से धो लें। ताकि सारा नमक फिटकरी निकल जाए। फलों को उबलते पानी में 2 मिनट डाल कर निकाल ले। चीनी और पानी का घोल बनाएं। फलों को डालकर धीमी आंच पर गर्म करें। इस मिश्रण को 50 डिग्री ब्रिक्स होने तक पकाएं और ठंडा होने के लिए रख दें। 24 घंटे बाद फलों को चासनी से अलग करें। इस चासनी को फिर से धीमी आंच पर गर्म करें और गाढ़ा होने दें। फलों को फिर से इस में मिलाकर 24 घंटे के लिए ठंडा होने के लिए रख दें। यह प्रक्रिया को तब तक दोहराएं जब तक गाढ़ापन 68 डिग्री ब्रिक्स तक ना हो जाए। तैयार उत्पाद को साफ कांच में सील कर दें। भंडारण के लिए साफ ठंडी एवं स्वस्थ जगह का चुनाव करें।

चित्र 3 आंवला मुरब्बा

आंवला कैंडी

आंवला कैंडी की लोकप्रियता का कारण अच्छी ग्रहयता, कम जगह गिरना तथा अतिपोषण के साथ साथ ज्यादा समय तक भंडारण क्षमता माना जाता है।

सामग्री	मात्रा
आंवला	100 कि.ग्रा.
चीनी	100 कि.ग्रा
नमक	2 कि.ग्रा.
पानी	50 ली.

विधि

पके हुए धब्बा रहित फल ने इन्हें अच्छी तरह से साफ पानी के साथ धो लें। 10–15 मिनट तक उबाल कर बीज निकाल दें और फांके अलग करें। इन फांकों को नमक फिटकडी के घोल में 24 घंटे के लिए डुबो दें। फलों को ताजे ठंडे पानी से धो लें ताकि सारा नमक फिटकडी निकल जाए। फलों को चीनी और पानी के घोल में डालकर धीमी आंच पर गर्म करें। इस मिश्रण को 50 डिग्री ब्रिक्स होने तक पकाएं और थोड़ा ठंडा करें 24 घंटे बाद फलों को चासनी से अलग करें। इस चासनी को फिर से धीमी आंच पर गर्म करें और गाढ़ा होने दें। फलों को फिर से इस में मिलाकर 24 घंटे के लिए ठंडा होने के लिए रख दें। यह प्रक्रिया तब तक दोहराते रहे जब तक मिश्रण का गाढ़ापन 65 डिग्री ब्रिक्स तक ना हो जाए। फलों को चासनी से अलग करें। इन फलों के टुकड़ों को 50.52 घंटे के लिए 60 डिग्री सेंटीग्रेट पर सुखा लें। तैयार उत्पाद को साफ बर्तन या प्लास्टिक के लिफाफे में डाल कर सील कर दे। भंडारण के लिए साफ ठंडी एवं स्वच्छ जगह का ही चुनाव करें (चित्र 4, 5) ।

चित्र 4 आंवला कैंडी

पके हुए धब्बा रहित आवला फल लें

⇩

साफ ठंडे पानी से धो लें

⇩

5–7 मिनट तक उबाल कर बीज निकाल दें और फांके अलग करले

⇩

इन फांकों को नमक फिटकरी के घोल में 24 घंटे के लिए डुबो दें

⇩

फलों को ताजे ठडे पानी से धो ले ताकि सारा नमक फिटकरी निकल जाए

⇩

फलों को चीनी और पानी के घोल में डालकर धीमी आंच पर गर्म करें

⇩

इस मिश्रण को 50 डिग्री ब्रिक्स होने तक पकाएँ और थोड़ा ठंडा करे

⇩

24 घंटे बाद फलों को चासनी से अलग करें। इस चासनी को फिर से धीमी आंच पर गर्म करें और गाढ़ा होने दें

⇩

फलों को चासनी से अलग करें

⇩

इन फलों के टुकड़ों को 56 घंटे के लिए 7 डिग्री सेंटीग्रेट पर सुखा लें

भंडारण के लिए साफ ठंडी एव स्वच्छ जगह का ही चुनाव करें।

चित्र 5 आंवला कैंडी बनाने का प्रवाह चित्र

आंवला जैम

सामग्री	मात्रा
आंवला	100 कि.ग्रा.
चीनी	65 कि.ग्रा
नमक	500 कि.ग्रा
दालचीनी पाउडर	100 ग्रा
इलाइची पाउडर	100 ग्रा.
सिट्रिक एसिड	200 ग्रा.

विधि

पके और साफ आमला फलों का चुनाव करें। साफ पानी से धो लें। उबलते पानी में 4 से 5 मिनट तक डुबोकर निकाल दें। ठंडा होने पर बीज और फांके अलग कर ले। थोड़ा सा पानी मिलाकर पकाएं और पीस कर पेस्ट तैयार कर लें। चीनी मिलाकर गाढ़ा होने तक पकाएं। नमक और बाकी मसाले मिला दे। साफ जार में गरम गरम भरे। ठंडा होने पर ढक्कन लगाकर सील करें। साफ ठंडी जगह पर भंडारण करें (चित्र 6) ।

चित्र 6 आंवला जैम

चित्र 7 आंवला शरबत

आंवला शरबत

सामग्री	मात्रा
आंवला जूस	100 कि.ग्रा
चीनी	170 कि.ग्रा.
पानी	100 कि.ग्रा.
सोडियम बेंजोएट	60 ग्रा. प्रति 100 कि.ग्रा.
सिट्रिक एसिड	1.5 कि. ग्रा

विधि

आंवला जूस

पके हुए आँवला फल ले और इन्हें साफ पानी से धो लें। आंवला शेडर की सहायता से छोटे–छोटे टुकडे तैयार कर लें। हाइड्रोलिक प्रेस से टुकड़ों को दबाकर रस निकाल ले। इस रस को किसी मलमल के कपड़े की सहायता से छान लें। जूस को 90 डिग्री सेंटीग्रेट तक गर्म करें और एक मिनट तक किस तापमान पर रहने दे। जूस को 45–50 डिग्री सेंटीग्रेट तक ठंडा होने दें। पोटेशियम मेटा बाईसल्फाइट को थोड़े से रस में घोलकर बाकी के रस में मिला दे।

आंवला शरबत

तैयार जूस को मलमल के कपड़े से छान लें। दी गई सामग्री के अनुसार पानी और चीनी का घोल तैयार करें। सिट्रिक एसिड मिलाएं और छान लें इस घोल में तैयार आंवला रस को मिला दें। मिश्रण को 90 डिग्री सेंटीग्रेट तक गर्म करें और एक मिनट तक इस तापमान पर रहने दे। इस 45–50 डिग्री सेंटीग्रेट तक ठंडा होने दें। पोटेशियम मेटा बाईसल्फाइट को थोड़े से जूस में मिलाकर तैयार मिश्रण में डालकर हिलाएं। साफ बोतल में भरकर सील करें। बोतलों में भरते समय ऊपर से एक डेढ़ सेंटीमीटर की जगह छोड़ दें। साधारण तापमान तक ठंडा होने दे। लेबल लगाकर किसी साफ व ठंडी जगह पर भंडारण करें (चित्र 7) ।

आंवला पाउडर एवं आवला चूर्ण

सामग्री	मात्रा
आंवला	100 कि.ग्रा
पोटेशियम मेटा बाईसल्फाइड	0.3 प्रतिशत

विधि :–

साफ एवं धब्बे रहित फलों का ही प्रयोग करें। इन्हें अच्छी तरह से साफ पानी के साथ धोले। फलों को कद्दूकस कर लें और 0.3 प्रतिशत पर पोटेशियम मेटा बाईसल्फाइड के साथ 3 मिनट के लिए गर्म करें। पकाने के बाद इसे 60 डिग्री सेंटीग्रेट पर सुखा लें। अच्छी तरह सूखने के बाद श्रेड को पैक कर ले या पीसकर पाउडर बना लें। इस पाउडर को छान लें। लिफाफे में भरकर सील कर दे। भंडारण के लिए साफ ठंडी एवं नमी रहित जगह का ही चुनाव करें। आवला चूर्ण बनाने के लिए फल को अलग–अलग फाकों में काट कर अच्छी तरह धूप में सुखा लें। तत्पश्चात इस को पीसकर पाउडर बना लें। चूर्ण बनाने के लिए अलग अलग मसाले जैसे की साधारण नमक काला नमक चीनी साइट्रिक अम्ल पिसी काली मिर्च हींग भुना पिसा जीरा पिसी सौंफ सोंठ और अजवाइन स्वादानुसार मिलाकर भंडारित करें । तैयार चूर्ण (चित्र 8) को सूखे जार में हवा अवरोधी अवस्था में भंडारित करते हैं।

चित्र 8 आंवला पाउडर एवं आवला चूर्ण

चित्र 9 आंवला पाउडर

***

गर्मी के मौसम का जुगाली करने वाले पशुओं पर पड़ने वाले कुप्रभाव से बचाव

अनिर्बन मुखर्जी, एम. के. त्रिपाठी, बी. साईनाथ, तारकेश्वर कुमार, पी. सी चंद्रन एवं पंकज कुमार

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

जुगाली करनेवाले पशुओं (जिनमें गाय, भैंस, भेड़, बकरी प्रमुख है) में विपरीत मौसम का स्वास्थ्य एवं उत्पादकता पर कुप्रभाव पड़ता है। मौसम के महत्वपूर्ण कारक जो इन पशुओं को उत्पादकता एवं स्वस्थ्य को प्रभावित करते हैं उनमें वातावरण का तापमान, सापेक्षिक आर्द्रता, सीधी धूप एवं हवा प्रमुख हैं। पशु का शरीर अपने सामान्य तापमान को हमेशा बनाये रखना चाहती है, चाहे उसके लिए उसकी दुग्ध उत्पादकता, शरीर वजन या प्रजनन क्षमता से ही क्यों न समझौता करना पड़े। आम तौर पर दुधारू गायों का सामान्य मलाशय तापमान 100.4 से 102.8°F होता है जो औसतन 101.5°F होता है, भैंसों का सामान्य तापमान 99.5 से 102.2°F जो औसतन 100.8 होता है। भेड़ का सामान्य तापमान 100.9 से 103.8 (औसतन 102.3) तथा बकरी का 101.3 से 103.5°F (औसतन 102.3°F) होता है। पशुओं के सामान्य तापमान में यह विविधता कुछ हद तक उनकी प्रजाति, वायुमंडलीय तापमान एवं आर्द्रता, भौगोलिक उपस्थिति इत्यादि पर निर्भर करती है। पशुओं में भी उच्च वायु तापमान और आर्द्र जलवायु के कारण तापीय तनाव (हीट स्ट्रेस) होता है।उच्च तापीय मौसम में जानवरों की सबसे महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया श्वसन दर, मलाशय तापमान और हृदय गति में वृद्धि है। यह सीधे तौर पर आहार सेवन को प्रभावित करता है, जिससे विकास दर, दूध की उपज, प्रजनन क्षमता में कमी और यहां तक कि कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है। तेज धूप में जानवर कोबांधने से या चरने के लिए खुला छोड़ देने से हीट स्ट्रोक हो सकता है। हीट स्ट्रोक के कारण तीव्र बुखार होता है, पशु हाफने लगता है, जीभ बहार निकल आती है जिससे लार निकलती है, चमड़ी में लालिमा दिखती है, हृदय गति बढ़ जाती है, इसके अलावा पशु खाना एवं जुगाली कम कर देता है। डेयरी नस्लें, आमतौर पर मांस वाली नस्लों की तुलना में उच्च ताप के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं। अधिक दुग्ध उत्पादन करने वाले जानवर कम उत्पादकता के पशुओं की तुलना में अधिक संवेदनशील होते हैं क्योंकि उनके शरीर से भी अधिक चयापचय गर्मी उत्पन्न होती है। हीट स्ट्रेस, प्रतिरक्षा एवं अंतःस्रावी तंत्र को कुप्रभावित कर देता है जिससे पशु की विभिन्न बीमारियों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है। डेयरी पशु 16°C से 25°C के बीच के तापमान पर सबसे अधिक आराम महसूस करते हैं। इस सीमा के भीतर उनका शारीरिक तापमान 101.1°F से 102.4°F के बीच स्थिर रहता है। अत्यधिक गर्मी में हीट स्ट्रेस के परिणामस्वरूप शरीर की सतह का तापमान, श्वसन दर, हृदय गति और मलाशय तापमान बढ़ जाता है जो बदले में पशुओं के आहार सेवन, उत्पादन और प्रजनन क्षमता को प्रभावित करता है। गर्मी के समय में यदि मलाशय तापमान 39.0 डिग्री सेल्सियस से अधिक और श्वसन दर60/मिनट से अधिक है, तो यह संकेत है कि गायें दूध की पैदावार और प्रजनन क्षमता को प्रभावित करने के लिए हीट स्ट्रेस से गुजर रही है। डेयरी पशुओं में, बकरियाँ उत्पादन, प्रजनन और रोग प्रतिरोधक क्षमता के मामले में हीट स्ट्रेस के प्रति सबसे अधिक अनुकूलित प्रजाति होती है। अध्ययनों से पता चला है कि देशी नस्लें विदेशी नस्लों की तुलना में अधिक अनुकूलित होती है।

डेयरी पशुओं के स्वास्थ्य पर हीट स्ट्रेस का प्रभाव

चित्र 1: डेयरी पशुओं के स्वास्थ्य पर हीट स्ट्रेस का प्रभाव

आहार के सेवन एवं दूध उत्पादन में गिरावट

पर्यावरणीय तापमान में वृद्धि का मस्तिस्क में पाए जाने वाले हाइपोथैलेमस के भूख केंद्र पर सीधा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिससे भोजन सेवन कम हो जाता है। सामान्यतः 34 डिग्री सेल्सियस से ऊपर पर्यावरणीय ताप होने पर दुधारू गायों में हीट स्ट्रेस प्रणाली सक्रिय हो जाता है। प्रतिक्रिया में डेयरी गायें भोजन का सेवन कम कर देती हैं जो सीधे तौर पर नकारात्मक ऊर्जा संतुलन से जुड़ा होता है, जो दूध संश्लेषण में गिरावट के लिए काफी हद तक जिम्मेदार हैऔर अन्य कई तरह की चयापचयी(मेटाबोलिक) बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है। इससे सबक्लिनिकल और तीव्र रूमेन एसिडोसिस तथा लिवर लिपिडोसिस

का जोखिम और लिवर की कार्यक्षमता कम हो सकती है। हवा के तापमान में वृद्धि के साथ लंगड़ापन की घटनाएं बढ़ जाती हैं। हीट स्ट्रेस के कारण पशु का श्वसन दर बढने और पसीना होने के परिणामस्वरूप शरीर में तरल पदार्थ की हानि बढ़ जाती है जिससे निर्जलीकरण होता है वर्षा और तापमान व्यवस्था में परिवर्तन के वजह से वैक्टरों (जैसे चिमोकन इत्यादि) से होने वाले बीमारी की प्रचुरता हो जाती है।गर्म शीतोष्ण में बाहरी परजीवियों की घटनायेंसबसे महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक है। एक अध्ययन के अनुसार गर्म और आर्द्र मौसम में हीट स्ट्रेस में वृद्धि के कारण पशुओं में थनैला रोग की घटनाओं में वृद्धि हुई हलाकि इसमें गायों में यह वृद्धि मुर्रा भैंसें की तुलना में ज्यादा होती है और भैसें कम प्रभावित होती है। इसी अध्ययन में यह भी पाया गया कि संकर करण-स्विस और करण-फ्राइज़ गायों की तुलना में साहीवाल और थारपारकर गायों में यह समस्या अधिक थी। चरम मामलों में अत्यधिक गर्मी का भार न केवल पशु कल्याण से समझौता करता है बल्कि जानवरों की मृत्यु का कारण भी बनता है।

हीट स्ट्रेस को तापमान-आर्द्रता सूचक (टीएचआई) से मापा ज्याता है। टीएचआई के 68 से 78 तक बढ़ने से शुष्क आहार ग्रहण में 9.6% और दूध उत्पादन में 21% की कमी आती है। 69 से ऊपर प्रत्येक टीएचआई इकाई की वृद्धि के लिए दूध की उपज 0.41 किलोग्राम/गाय/दिन कम हो जाती है । सर्दी के मौसम में टीएचआई 59से बढ़कर गर्मी के मौसम में 78हो जाने से दैनिक दूध उपज में क्रमशः कमी देखी गई है। कुल औसत दूध उत्पादन/गाय वसंत ऋतु में गर्मियों की तुलना में अधिक था । शुष्क अवधि के दौरान (यानी, गर्भधारण के अंतिम 2 महीने) होंने वाले हीट स्ट्रेससे स्तन में उपस्थित कोशिकाओं का प्रसार कम हो ज्याता है जिससे आने वाली ब्यात के बाद में होने वाली दुग्ध उत्पादकता कम हो जाती है। इसके अलावा, शुष्क अवधि के दौरान हीट स्ट्रेस, ब्याने का सामना कर रही डेयरी गायों में प्रतिरक्षा कोशिका के कार्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है । हीट स्ट्रेस के कारण मुर्रा भैंसों में दूध देने की अवधि, शुष्क अवधि, ब्याने के अंतराल, दूध के घटकों, और दूध की कुल उपज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।एक अध्ययन के अनुसार, हीट स्ट्रेस के कारण पूरे देश में प्रति वर्ष लगभग 1.8 मिलियन टन दूध का नुकसान होता है, जो देश के कुल दूध उत्पादन का लगभग 2% है।भारत में ग्लोबल वार्मिंग के चलते 2050 तक कुल दूध उत्पादन पर 15 मिलियन टन से अधिक की हानि होने का अनुमान है। हीट स्ट्रेस का असर दूध देने की शुरुवात और अंत की अवस्था की तुलना में उन पशुओं पर अधिक पड़ता है जोकि दूध देने की मध्य अवस्था से गुजर रही होती है । इसी तरह के परिणाम डेयरी बकरियों में भी होते है । गर्म और आर्द्र वातावरण न केवल दूध की पैदावार को प्रभावित करता है बल्कि दूध की गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है। गर्मी के मौसम में जब THI मान 72 से अधिक हो जाता है, तो दूध में वसा और प्रोटीन की मात्रा कम हो जाती है लेकिन इसका दूध में लैक्टोज की मात्रा पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता है। गर्मियों की तुलना में वसंत ऋतु में प्रोटीन और वसा की मात्रा अधिक होती है।

प्रजनन क्षमता पर प्रभाव

हीट स्ट्रेस की वजह से मादा पशु के मद (हीट या गर्मी) में आने का संभावना कम हो जाती है । कुछ पशु हीट में नहीं आते है इस दशा को एनएस्ट्रस बोलते है जिसके कई कारण होते है, हीट स्ट्रेस भी उन कारणों में से एक है। इसी तरह कुछ पशुओं में बार बार गर्भाधान कराने के बाद भी गर्भधारण नहीं होता जिसे रिपीट ब्रीडिंग कहते है जिसके भी कई कारण होते है, हीट स्ट्रेस भी उन कारणों में से एक है। इसके अलावा पशु के मद की तीव्रता एवं मद में रहने का काल भी कम हो जाता है जिससे गर्भधारण की संभावना कम हो जाती है। भैसों में खास कर गर्मी के मौसम में मद की तीव्रता इतनी कम होती है की मद या गर्मी का लक्षण दिखाती ही नहीं जिसे मौन मद कहते है जिससे पशुपालक को उसके हीट में आने का पता ही नहीं लग पाता और उसे गर्भधान कराता ही नहीं जिससे उसका नुकसान हो ज्याता है। उच्च तापमान के दौरान गर्भधारण एवं बांझपन का खतरा होता है। गर्मियों में गर्भाधान दर ठंडे महीनों की अपेक्षा कम हो जाती है।

नर पशु के उच्च गुणवत्ता के वीर्य का होना आने वाली नस्ल को निर्धारित करता है अत: नर पशु की प्रजनन क्षमता अधिक महत्वपूर्ण है। उपजाऊ शुक्राणु के उत्पादन के लिए बैल के वृषण को शरीर के मुख्य तापमान से 2-6 डिग्री सेल्सियस ठंडा होना चाहिए। किन्तु गर्मी के मौसम में हीट स्ट्रेस के कारण वृषण तापमान में वृद्धि से वीर्य और जैव रासायनिक मापदंडों में परिवर्तन हो सकता है औरवीर्य गुणवत्ता मानकों में गिरावट हो जाती है जिससे सांडों में बांझपन की भी संभावना हो सकती है।

हीट स्ट्रेस से बचाव के लिए सुझाव:

भारत जैसे देश में हीट स्ट्रेस से बचने के उपायों में पशु के आस-पास के वातावरण में मानवीय सुधार, पोषण प्रबंधन और पशुओं की उन नस्लों का आनुवंशिक विकास एवं संवर्धन जिनमे उत्पादकता को बरक़रार रखते हुए हीट स्ट्रेस सहने की ज्यादा ताकत हो, प्रमुख घटक हैं।

पर्यावरण सुधार-

मवेशिओं में गर्मी के मौसम में हीट स्ट्रेस से बचने के लिए घर या छाया का होना जरुरी है । पशुशाला के अन्दर पशु को रखने के लिए यह ध्यान देना है की उसके अन्दर हवा का पर्याप्त प्रवाह हो, उसकी छत ऊँची हो। शीतलन के लिए पशुशाला के अन्दर स्प्रिंकलर का भी उपयोग किया जा सकता है। क्रॉस वेंटिलेशन के साथ वाष्पीकरणीय शीतलन से हीट स्ट्रेस से काफी आराम मिलता है. गर्म मौसम में जानवरों के लिए, सौर विकिरण से गर्मी को कम करने के लिए छाया का प्रावधान सबसे सरल और

किफायती तरीकों में से एक है। पेड़ बहुत प्रभावी और प्राकृतिक छाया प्रदान करते हैं जो पत्तियों से वाष्पित होने वाली नमी के साथ-साथ लाभकारी ठंडक के साथ जानवरों को छाया प्रदान करते हैं।पीने के लिए नियमित अन्तराल पर पर्याप्त ठंडा पानी अवश्य दे, एवं शरीर को ठंडा रखने के लिए दो बार नहलाये या तालाब में छोड़ें।डेयरी मवेशियों में उपरोक्त को पालन करने से दूध उत्पादन में वृद्धि एवं प्रजनन में सुधार होता है।

पोषण प्रबंधन

गर्म मौसम के दौरान कम आहार ग्रहण के कारण पोषक तत्व कम मिल पाता है।पशु को अच्छी गुणवत्ता का चारा दे,चारे को सुबह शाम या ठण्ड होने पर देने से पशु रूचि से खाते है। दाने के रूप में मक्का, गेहूं, बिनौला, सोयाबीन अलसी या उसकी खल मिला सकते है। राशन में सूखे आधार पर 15- 18% प्रोटीन होना चाहिए। गर्मिओं में चारे की उपलब्धता कम होने की वजह से,पहले से ही चारे का सिलेज बनाकर रखना बुध्धिमत्तापूर्ण होता है।आहार में 3-4% तक वसा की मात्रा होने से गर्म मौसम में दूध के उत्पादन में वृद्धि होती है। हीट स्ट्रेस के कारण ऑक्सीडेटिव क्षति होती है जिसको ठीक करने के लिए विटामिन सी, ई, एऔर फोलिक एसिडदेना आवश्यक है। इसके अलावा पशु को मिनरल मिश्रण (खनिज तत्व) जिसमे की सोडियम, पोटैशियम, जिंक, कॉपर, क्रोमियम इत्यादि मिनरल हो, जिसे बड़े जानवरों में 50 ग्राम प्रतिदिन के हिसाब से देना जरुरी है।अधिक दुग्ध उत्पादकता या गर्भावस्था की दशा में यह मात्रा 60-70 ग्राम तक बढा सकते है। बकरी या भेंड में साइज़ के हिसाब से 5-10 ग्राम तक दे सकते है। जीवित खमीर का उपयोग उत्पादन के लिए भी फायदेमंद हो सकता है।

आनुवंशिक चयन

गर्म मौसम के दौरान हीट स्ट्रेस के प्रभाव को कम करने हेतु उपरोक्त प्रवंधन आवश्यक है परन्तु जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन के लिए दीर्घकालिक रणनीतियोंकी आवश्यकता है। पशुओ की बिभिन्न प्रजतिओं के बीच भी उच्च तापमान सहने की अलग अलग क्षमता होती है, उनमे से हमें उन प्रजतिओं को जिनमे उच्च उत्पादकता बनाये रखते हुए उच्च तापमान सहने की क्षमता अधिक हो, ऐसे पशुधन का मार्कर सहायता प्राप्त चयन और जीनोम-वाइड चयन में द्वारा पहचान कर एवं उच्च तापमान सहने की क्षमतासे जुड़े जीनों की पहचान करके उनको प्रजनन नीति में शामिल करना चाहिए जिससे आने वाली नस्लें उच्च उत्पादकता को बनाये रखते हुए ग्लोबल वार्मिंग की चुनौतिओं का सफलता पूर्वक सामना कर सकें।

निष्कर्ष के तौर पर कुशल आवास और आहार प्रवंधन द्वारा गर्मी के मौसम में होने वाले कुप्रभाव को कम किया जा सकता है। साथ से हमे दीर्घकालिक रणनीति के तहत, उपलब्ध जनन तकनीकियों के द्वारा उन पशुओं का चयन एवं प्रवर्धन करना होगा जो उत्पादकता को बनाये रखते हुए भी हीट स्ट्रेस सहने के लिए ज्यादा समर्थ होते है।

***

वर्ष भर पोषित हरा चारा उत्पादन की नवीन तकनीकियों द्वारा समृद्ध किसान

संजीव कुमार गुप्ता[1], अनिल कुमार सिंह[2], राजेश कुमार[1], अंशुमान कोहली[3] एवं महेश कुमार सिंह[1]
सस्य विज्ञान विभाग[1], निदेशक अनुसंधान[2], मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग[3]
बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

प्रस्तावना कृषि प्रधान देश में कृषकों का मुख्य व्यवसाय कृषि के साथ साथ पशुपालन भी है, वर्तमान पशुओं की संख्या में वृद्धि तथा चारा उत्पादन दर देश में आज भी संतोषप्रद नहीं है।पशुपालन में हरे चारे की उपलब्धता एक महत्वपूर्ण अवयव है, पशुओं के रखरखाव एवं प्रबंधन में लगभग 60–70 प्रतिशत (कुल लागत का) लागत अकेले चारा एवं दाना में ही आता है अधिकांश पशुपालक अपने जानवरों को भूसा, पुआल, कडवी आदि देते हैं जो पशुपोषण के लिये उपयुक्त एवं संतुलित आहार नहीं कहा जा सकता है। आमतौर पर पशुओं के रखरखाव एवं प्रबंधन में अत्याधिक लागत आती है।भारत वर्ष दुनिया में सर्वाधिक दूध उत्पादन करता है। ऐसे में पशुओं के लिए हरे चारे का प्रबंध करना काफी चुनौतीपूर्ण है, खासकर उन इलाकों में जहां पानी की उपलब्धता कम है।देश में वर्तमान में कुल पशुओं की संख्या 535.8 मिलियन है, जबकि कुल कृषिगत क्षेत्रफल का केवल 5.0 प्रतिशत भू–भाग (8.4 मि0 हैक्टेयर) पर ही चारा फसलों की खेती की जाती है जो कि पशुओं की संख्या को देखते हुये बहुत कम है। बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुऐ दुग्ध उत्पादन को बढ़ाकर रोजाना की जरूरतें आसानी से पूरा कर सकते हैं, दरअसल प्रदेश के डेरी व्यवसाय में सबसे बड़ी समस्या वर्ष भर हरे चारे का उपलब्ध न होना है क्योंकि कृषि जोत के आकार लागातार कम होने के कारण अधिकांश किसान नकदी फसलें, अनाज की फसलें व सब्जियां आदि उगाना चाहता है। अतः डेरी व्यवसाय को व दुग्ध उत्पादन दर को बढ़ाने हेतु वर्ष भर हरा चारा उत्पादन कैसे करें, यह जनना बेहद जरूरी है। चारे की खेती की कमी को पूरा करने के लिये कृषिगत भूमि से चारे की खेती के लिये जगह निकालना संभव नही है, कृषि में सघन कृषि प्रणाली, कम सिंचाई होने पर भी अधिक हरा चारा मिलता रहे एवं कम उपजाऊ अथवा बेकार भूमि में भी घासों एवं चारा फसलों को उगाकर अपेक्षा कृत अधिक हरा एवं सूखा चारा प्राप्त किया जा सकता है। दूध का उत्पादन आम तौर से मई महीने से जुलाई में कम होता है जिसका प्रमुख कारण हरा चारा कम मात्रा में उपलब्ध होता है या फिर दिसम्बर से फरबरी तक भी पशुओं को हरा चारा उपलब्ध नहीं रहता इस लिये इस अवधी में चारे के फसलों के साथ–साथ बहुवर्षीय चारा घासों का चयन करके अर्न्तवर्ती फसल के रूप में बुवाई कर सकते हैं।हराएवं सूखे चारे की उपलब्धता तथा आवश्यकता को निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है– (मिलियन टन)

वर्ष	चारे की उपलब्धता		आवश्यकता		चारे की कमी (प्रतिशत) में	
	हरा चारा	सूखा चारा	हरा चारा	सूखा चारा	हरा चारा	सूखा चारा
2010	525.5	453.2	816.8	508.9	35.66	10.95
2020	590.4	467.6	851.3	530.5	30.65	11.85
2030	687.4	500.0	911.6	568.1	24.59	11.98
2040	761.7	524.4	954.8	594.9	20.22	11.86
2050	826.0	547.7	1012.7	631.0	18.43	13.20

स्त्रोत- *Report of working group on Animal Husbandry and daring for the Twelth Five Year Plan.(2012-17) Planning commission, GOI,*

डेरी व्यवसाय एव दुग्ध उत्पादन दर को बढ़ाने हेतु वर्ष भर हरा चारा उत्पादन कैसे करें, यह जनना बेहद जरूरी है।जलवायु के बदलते परिवेश में यह आवश्यक हो जाता है, कि कृषि में सघन कृषि प्रणाली, कम सिंचाई होने पर भी अधिक हरा चारा मिलता रहे एवं कम उपजाऊ अथवा बेकार भूमि में भी घासों एवं चारा फसलों को उगाकर अपेक्षाकृत अधिक हरा एवं सूखा चारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रस्तुत आलेख में खरीफ तथा रबी मौसम में उगाने हेतु चारे की विभिन्न फसलों की तकनीक जानकारी दी जा रही है।

हरा चारा के लिये चयनित फसलों का वर्गीकरण

बिहार राज्य सहित सम्पूर्ण देश में विभिन्न मौसम में अलग–अलग तरह के चारा फसल उगाई जाती है जिसकी जानकारी उनके वानष्पतिक गुण, पोषक तत्व की मात्रा व मौसम के आधार पर कर सकते हैं–

1. **खरीफ मौसम में उगाये जाने वाले चारे** – जून माह से अगस्त महीने तक अनेक चारे की फसलें जैसे– मक्का, ज्वार, बाजरा, नैपियर घास, गिनी घास, लोबिया तथा ग्वार आदि फसलों का चयन कर सकते हैं।

2. **रबी मौसम में उगाये जाने वाले चारे** – इनकी बुवाई का उपयुक्त समय सितम्बर के अन्तिम सप्ताह से दिसम्बर तक होता है जिसमें अनेक चारा की फसलें जैसे– बरसीम, रिजका, जई, खेसारी व मटर आदि का चयन कर सकते हैं।

3. **गर्मी या बसन्त (जायद) मौसम के चारे** – इस मौसम में बुवाई का उपयुक्त समय फरबरी–मार्च से मध्य मई माह तक हो सकता है। जिसमें अनेक चारे की फसलें जैसे– लोबिया, समर बाजरा, मक्का तथा अनेक बहुवर्षीय चारा घासों–जैसे नैपियर घास, गिनी घास तथा पैरा घास आदि का चयन कर सकते हैं,

मोसमी चारा फसलों के साथ–साथ बहुवर्षीय चारा घासों का चयन करके अर्न्तवर्ती फसल के रूप में बुवाई कर सकते हैं यहां कुछ फसल चक्र दिये जा रहे हैं जिनको किसान अपनाकर हर मौसम में चारा उपलब्ध करा सकता है–

- ज्वार / बाजरा–बरसीम–पैराघास–लोबिया–1 वर्ष
- संकर नैपियर घास, ज्वार–बरसीम – लोबिया–1 वर्ष
- संकर नैपियर घास मक्का–जइ–ग्वार (गलफड़ी)–1 वर्ष
- त्रिसंकर घास स्टाईलो घासज्वार लोबिया–मक्का–1 वर्ष

हरा चारा प्राप्त करने हेतु चारा फसलों व बहुवर्षीय घासों की उन्नत प्रजातियां –

ज्वार – पूसा चरी–6, पूसा चरी–9, एम.पी. –चरी।

मक्का – अफ्रीकन टॉल, विजय कम्पोजिट।

संकर नैपियर – आई0जी0एफ0आर0आई0 –3, आई0जी0एफ0आर0आई0–7, सी0ओ0–3

लोबिया – यू0पी0सी0–5286, यू0पी0सी0–287 कोहिनूर, बुदेल लोबिया–1 व बुन्देल लोबिया–2,

बरसीम – मेस्कॉवी, बरदान, बी0एल–1 – 3

रिजका – चेतक तथा आनन्द –2

सरसों – गोभी सरसों तथा जापानी सरसों।

जई – के ंट, जे0एच0ओ0–851, जे0एच0ओ0–922।

पारा घास – ब्रैचेरिया म्यूटिका, ब्रंचेरिया सिबराना ब्रंचेरिया ब्रजेन्था है।

शुष्क भार के आधार पर हरे चारे की फसलों में उपलब्ध पोषक मान (प्रतिशत में)

फसलका नाम	कूड प्रोटीन	रेशा	वसा	भस्म	कैल्शियम	फास्फोरस	पोटाश
ज्वार	7.5–12.8	26.5–41.0	1.2–2.4	5.7–12.7	0.3–0.5	0.11–0.31	–
मक्का	9.1–12.2	25.7–32.0	0.9–1.5	7.0–13.0	0.5–0.7	0.19–0.23	–
नैपियर घास	6.5–13.2	23.0–38.0	0.9–2.6	11.7–16.7	0.2–0.5	0.15–0.68	–
गिनी	4.7–11.9	31.0–41.0	0.7–0.27	11.4–15.1	0.4–1.8	0.16–0.44	–
पैरा घास	5.7–10.4	28.2–35.0	0.8–2.9	9.7–15.2	0.2–1.2	0.11–0.30	–
लोबिया	20–23.4	33.10	1.8	–	–	–	1.85
ग्वार	8.56	29.9	–	12.75	–	–	2.56

वर्ष भर हरा चारा उत्पादन की अन्य विधियां

हरा चारा उगाने के लिये निम्नलिखित पद्धतियों का चयन किया जा सकता है। इसके लिए रबी तथा समर (ग्रीष्म) मौसम में मक्का, ज्वार, बाजरा, जई, बरसीम, रिजका तथा अनेक बहुवर्षीय चारा घासों जैसे – नैपियर घास, गिनी घास, पारा घास आदि का समावेश करके पशुओं को हरा चारा उपलब्ध कराया जा सकता है।

सघन चारा उत्पादन तकनीकि

इसकी तकनीकि में फसल प्रणाली की मिश्रित खेती का प्रयोग करते हुये एक ही जमीन पर तीन चार चारा की फसलें इस क्रम में बोई जाती हैं जिससे सामाजिक एंव स्थानिय सघनीकरण किया जा सके। खेत तैयार करने से पहले लगभग 30–40 टन प्रति हैक्टेयर अच्छी सड़ी गोबर की खाद (कम्पोस्ट) साल में एक बार अवश्य प्रयोग करें। प्रायः एक दाल व दो दाल वाली चारा फसलें जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, बरसीम, जई, सरसों आदि फसलों की बुवाई करें ताकि अधिक पैदावार, पौष्टिक चारा एवं भूमि की उपजाऊ शक्ति भी बनी रहें। इस तकनीकि द्वारा शहर के आसपास व्यावसायिक दुग्ध उत्पादन को बढ़ावा दिया जा सकता है क्षेत्र विशेष के लिये सघन चारा उत्पादन के लिये मक्का+लोबिया,रिजका + जई – सरसों, संकर नैपियर + रिजका, ज्वार + लोबिया – बरसीम + सरसों का चयन (सभी ऊँची जमीन के लिय)कर सकते हैं।

समस्या ग्रस्त अथवा जल भराव वाले क्षेत्रो में चारा उत्पादन

- जल जमाव वाले क्षेत्रों अथवा नीची जमीन के लिये पैरा घास तथा क्वाएक्स घास वर्षा ऋतु में लगाई जा सकती है चूकिं ये घासें जल जमाव की दशा के प्रति सहनशील होती है, इस प्रकार इनकी बढ़वार आसानी से हो जाती है और अच्छा उत्पादन प्राप्त हो जाता है।
- अम्लीय मृदाऐं जिनका पी. एच. मान 5.5 से 6.8 के बीच होता है उनमें मक्का, संकर नैपियर, गिनी घास व नन्दी घासों का चयन करके हरा चारा प्राप्त कर सकते हैं। बरसीम, मकचरी, रिजका आदि फसलों को चूने का प्रयोग करके अथवा अन्य मृदा सुधारक का प्रयोग करके आसानी से चयन किया जा सकता है।

सिंचित क्षेत्रो के लिए

इस पद्धति में मौसमी चारा फसलें बहुवर्षीय घासों के साथ उगायी जाती हैं, जैसे गिनी घास + (लोबिया – बरसीम), संकर नेपियर + (लोबिया–बरसीम), संकर नेपियर (इगफ्री–3) + सुबबूल (के–8), ज्वार + लोबिया – बरसीम – मक्का + लोबिया, –ज्वार (एम0 पी0 चरी) + लोबिया –बरसीम + सरसों। यह तकनीक व्यवसायिक स्तर पर डेयरी फार्म के लिए उपयोगी है।

कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए

ऐसी स्थितियों में त्रिसंकर घास (टी0 एस0 एच0) की दो

पंक्तियां एक दूसरे से 75 सेमी0 की दूरी पर लगायी जाती है। इस तरह की दोहरी पंक्तियों को साथ–साथ 2–2 मीटर की दूरी पर जुलाई/अगस्त में लगा दिये जाते है। 2–3 मीटर के खाली स्थान में दो कटान वाली बाजरा की प्रजाति पंक्तियों में 30 सेमी0 की दूरी पर बोयी जाती है। इस पद्धति से 84.7 टन हरा चारा अथवा 17.1 टन शुष्क पदार्थ प्रति हे0 प्रति वर्ष के साथ–साथ 2.1–2.8 का लाभः लागत का अनुपात मिल जाता है। यह तकनीक छोटे एवं मझोले किसानों के लिए जिनके पास 4–5 दुधारू पशुहों, अत्यन्त उपयोगी सबित हुई है।

बी.ए.यू, सबौर में बहु वर्षीय घास (त्रिसंकर घास, संकर नेपियर+स्टाईलो घास)+ज्वार+लोबिया–चारा मक्का की फसल

बेमौसम में चारा उत्पादन

धान–गेहूं खेती प्रणाली (अप्रैल–जून) में चारे के लिए चुकन्दर, गाजर, चाइना कैबेज को अगेती धान/ज्वार की कटाई के बाद ज्वार (एम0पी0 चरी) + लोबिया, बाजरा + लोबिया और मक्का + लोबिया आदि फसलों को उगाने से अप्रैल–जून में जब कहीं से हरा चारा नही मिलता, चारा प्राप्त हो जाता है।

मेड़ों पर चारा उत्पादन

जिन किसानों को कम चारे की आवष्यकता है, वह चारे को खेत की मेड़ों, पटिट्यों, ऊँची ढलान इत्यादि पर उगा सकते हैं। इसके लिए बहुवर्षीय घासें जैसे संकर नेपियर (सिंचित क्षेत्रों के लिए), त्रिसंकर घास (टी0 एस0 एच0), गिनी घास, नन्दी घास (वर्षा आधारित) और संकर नैपियर से 0.7 से 1.1 टन हरा चारा प्रति 100 मी0 लम्बी मेड़ से प्राप्त किया जा सकता है। यह घासें मुख्य फसल की रक्षा भी करती हैं तथा साथ ही मृदा क्षरण भी रोंकती हैं।

बगीचों एवं नालियों में चारा उत्पादन

हमारे देश में बागानों में चारा उत्पादन करने हेतु अच्छी सम्भावनायें हैं। कुछ घास जैसे गिनी घास, सिगनल घास और कांगो सिगनल घास आदि घास छाया प्रिय हैं या छाया में उगायी जा सकती हैं। इन घासों को पेड़ों के नीचे या पेड़ों के पास तथा नालियों में सफलतापूर्वक उगाकर अतिरिक्त अच्छा हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

नैपियर घास/हाथी घास

नैपियर घास किसानों के लिये वर्ष भर हरा चारा उपलब्ध कराने वाली उच्च एवं पौष्टिक चारा उवलब्ध कराने हेतू महत्वपूर्ण फसल है। जिसको दलहनी चारा फसलों जैसे, बरसीम, लोबिया, बोड़ा आदि के साथ अन्तवर्ती फसल के रूप में आसानी से उगाया जा सकता है।

बुवाई का समय तथा बीज की मात्रा

इस फसल को उगाने के लिये बीज नही बल्कि पौधे अथवा जड़ो की कटिंग (रूट स्लिप) की आवश्यकता पड़ती है, लगभग 25000 से 40,000 प्लांट कटिंग प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता हो जाती है, जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहां फरवरी मार्चमाह तथा शुष्क क्षेत्रों में वर्षा के महीने में ऊचेस्थानो पर एक–एक रूट कटिंग को मिट्टी में दबा कर लगा दिया जाता है।

खाद तथा उर्वरक एवं रोपाई की विधि

प्रारम्भ में जहां इसकी खेती करने जा रहे है उस खेत में अच्छी सड़ी गोबर की खाद/FYM को 20–25 टन प्रति हैक्टेयर डाल कर मिट्टी की उपरी सतह पर मिला दिया जाता है, बुवाई के समय 60:50:40 कि0ग्रा0 NPK प्रति हैक्टेयर की दर से दो बार (बुवाई के समय तथा प्रथम कटाई के बाद) दिया जाना चाहिये। नैपियर घास की अलग से खेती करने के लिये (सोल कॉप) 70 X 50 सेमी. तथा अन्तवर्ती फसल के लिये 100 X 60 सेमी. अन्तरण रखकर बिचड़ा लगा दिया जाता है।

कटाई तथा उपजः–

नैपियर घास की प्रथम कटाई रोपाई के 70–75 दिन बाद एवं वर्षा ऋतु में 30–35 दिन तथा गर्मियों में 40–45 दिन के अन्तराल पर कटिग करते रहते है। जिससे पूरी साल हरा चारा उपलब्ध होता रहता है।

गिनी घास

छाया वाले स्थानों जैसे–बगीचों, आदि में गिनी घास को सुगमता पूर्वक उगाया जा उकता है जिसके लिये दोमट मिट्टी सबसे अच्छी होती है इसकी खेती करने के लिये सबसे पहले नर्सरी तैयार की जाती है, अथवा पौधों की कटिंग द्वारा भी खेती की जा सकती है।

बिचड़ा (नर्सरी) तैयार करना

मई महीने में 6 मीटर लम्बी, 1 मी० चौड़ी, 10–12 क्यारी तैयार कर लेते है यह क्षेत्रफल 1 हैक्टेयर क्षेत्र में रोपाई करने के लिये पर्याप्त होती है, नर्सरी तैयार करने से पहले खेत को अच्छी तरह भुर –भुरा कर लेते है, फिर प्रति क्यारी 30–35 किग्रा अच्छी सड़ी गोबर की खाद ए 2.5 किग्रा क।च मिला देते है, तत्पश्चात् 40–50 ग्राम गिनी का बीज प्रति क्यारी के हिसाब से 1.5–2.0 सेमी. गहराई पर 10–15 सेमी. लाईनों में बुवाई कर देते है, नर्सरी के ऊपर बोरे या पुआल बिछा कर हजारे से हल्की सिंचाई करते रहना चाहिये । इस प्रकार 5–6 सप्ताह बाद पौध जब 15–20 सेमी. की हो जाती है तो रोपाई कर सकते है। नर्सरी की अच्छी बढवार के लिये 15–20 ग्रा० यूरिया प्रति क्यारी से छिड़क कर पानी छिड़काव करना अत्यन्त लाभदायक होता है।

उन्नत प्रभेद

1. हामिल 2. बुन्देल गिनी–1 3. बुन्देल गिनी–2 4. पी. जी. जी. –9

रोपाई का समय एवं विधि

बिचड़ो की रोपाई करने के लिये 5–6 सप्ताह पुरानी पौधों को लाइन से लाइन 100 सेमी. तथा पौधे से पौधा का 50–60 सेमी. के अन्तरण पर जून – जुलाई में 2–3 जड़ कल्ले (रूटेट स्लिप) लगाई जा सकती है। इस प्रकार प्रति हैक्टेयर 25000 से 35000 पौधों/जड़ो की आवश्यकता पड़ती है।

खाद/उर्वरक एवं कटाई

15–20 टन अच्छी सड़ी खाद , उसके बाद 50 किग्रा० नत्रजन, 50 किग्रा० फास्फोरस तथा 40 किग्रा० पोटाश रोपाई के समय मिट्टी में अच्छी तरह मिला सकते है, तथा प्रत्येक कटाई के बाद 40 किग्रा० नत्रजन प्रति हैक्टेयर डालना बहुत लाभकारी होता है। प्रथम कटाई रोपाई के 2.5 से 3.0 महीने (75–90 दिन) में तथा गर्मियों में 40–45 दिनों के अन्तराल पर कटाई करते रहते है।

पारा घास

यह बहुवर्षीय अच्छे गुणवत्ता वाली घास है। यह घास नम एंव दलदल पानी वाले क्षेत्रों में आसानी से उगायी जा सकती है। अतः इसे पानी वाली घास भी कहते हैं।

भूमि का चुनाव

पैरा घास नदियों, नालों, नहरों के किनारों, जहां यदा कदा पानी भरता रहता है, अच्छी प्रकार उगती है यह घास कई प्रकार की भूमि में उगायी जा सकती है परन्तु इसके लिए सबसे अच्छी भूमि दोमट या मटियार दोमट मानी जाती है।

खेत की तैयारी एंवबुवाई की विधि

पैरा घास की बुवाई का सबसे अच्छा समय जून–जुलाई या बरसात के महीने होते हैं। जहां पानी की सुविधा हो इसकी बुवाई मार्च–अप्रैल में भी कर सकते है। पैरा घास के 2–3 गांठों वाले जड़दार तने के टुकड़े बुवाई के लिए चुने जाते है। तनों को नम मिट्टी में 25 –30 सेमी0 की दूरी पर लगया जाता है। लाइन से लाइन की दूरी आवष्यकतानुसार 1 या 2 मीटर तक रखते हैं। टुकड़ों की 1–2 गांठ भूमि के अंदर अवष्य जानी चाहिए।

खाद उर्वरक एवं सिंचाई

गोबर की खाद 150–200 कुन्तल प्रति हेक्टर के हिसाब से डालनी चाहिए। प्रत्येक कटाई के बाद कम से कम 25–30 किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टर डालनी चाहिए।यह घास अधिक पानी वाली नम एवं निचली भूमि के लिए अनुमोदित की जाती है। इसे सूखे स्थानों पर नहीं उगाया जा सकता।

कटाई एवं उपज

पैरा घास की पहली कटाई बुवाई के लगभग तीन से साढ़े तीन माह बाद करनी चाहिए। इसकी कटाई 30–35 दिन के अंतर पर करते हैं। पैरा घास की पैदावार 500–600 कुन्टल हरा चारा प्रति हेक्टर प्राप्त होता है। पैरा घास के बीज/जड़ों के बारे में बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर तथा भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान झांसी, से जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

जई(OAT)

जई शरद मौसम में उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण चारा फसल है जो दुधारू पशुओं के लिये सबसे उत्तम आहार माना जाता है तथा जिसको हल्की/कम सिंचाई में भी उगाया जा सकता है।

खाद एवं बीज की मात्रा

हरा चारा उत्पादन के लिये 120 किग्रा० नत्रजन, 40–50 किग्रा० फास्फोरस तथा 30–40 किग्रा०, पोटाश प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है। एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिये 80–100 किग्रा० बीज को बुवाई से पूर्व किसी भी कवकनाशी दवा से उपचारित करके 25–30 सेमी. की (पंक्ति) अन्तरण पर बुवाई कर देनी चाहिये। नत्रजन की आधी मात्रा, फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय खेत में दी जानी चाहिये।

बुवाई का समय एवं सिंचाई

जई की बुवाई का उचित समय अक्टुबर माह के अन्तिम सप्ताह से नवम्बर माह के प्रथम सप्ताह तक बुवाई कर लेनी चाहिये।जई के अकुरण के समय खेत में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक होता है इसके बाद 2–3 सप्ताह के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिये।

कटाई का समय एवं उपज

जई की पहली कटाई बुवाई के 55–60 दिन बाद करनी चाहिये इसके बाद 45–50 दिन के अन्तराल पर करते रहना चाहिये। ध्यान रहे फसल की कटाई करते समय जमीन से 8–10 सेमी. ऊँचाई से तेज धार वाले हंसिया से काटना चाहिये जिससे अगली फसल हेतु कल्ले जल्दी निकल जायें। अच्छे प्रबन्धन से खेती करने में सामान्य परिस्थितियों में 400–500 क्विंटल हरा चारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता हैं

बरसीम

बरसीम हमारे देश में रबी के मौसम में उगाये जाने वाले चारे की प्रमुख फसल है इसके चारे में प्रोटीन की मात्रा अन्य फसलों की तुलना में काफी अधिक होती है, दलहनी फसल होने के कारण यह मिट्टी की उपजाऊ शक्ति में भी वृद्धि करती है।इसका चारा पौष्टिक तथा पाचनशील होने के कारण दुधारू पशुओं को खिलाने से दूध की मात्रा में भी वृद्धि होती है,

बीज एवं उसका उपचार

बरसीम का बीज हमेशा स्वस्थ, पीले रंग का तथा अन्य फसलों के बीज रहित होना चाहिये क्योंकि बरसीम के बीज के साथ अक्सर कासनी के बीज पाये जाते हैं, ऐसा होने पर 5 प्रतिशत नमक के घोल में बीज को डालकर 1–2 घण्टे छोड़ देते हैं, कासनी के बीज हल्के होने के कारण ऊपर तैरने लगते हैं, जिनको आसानी से अलग कर दिया जाता है। कृषक बन्धुओं, अगर आप अपने खेत में पहली बार बरसीम उगाने जा रहे हो तो बरसीम के बीज को राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना आवश्यक होता है।

उपचारित विधि

इसके लिये 1 किग्रा0 राइजोबियम सवर्धन (कल्चर) को 1 ली. 10 प्रतिशत गुड़ के घोल मे अच्छी तरह मिला लेते हैं। इसके बाद इसे एक हैक्टेयर क्षेत्रफल के लिये बीज की मात्रा को इस कल्चर के साथ मिला कर छाया में सुखाते हैं। इस प्रकार संवर्धन (कल्चर) मिलाये हुये बीज को 24 घण्टे के अन्दर खेत में बुवाई कर देनी चाहिये, अगर किसान ऐसा नहीं करते हैं तो हमारी फसल बहुत कमजोर रह जाती है,

बरसीम के लिये संर्वधन (कल्चर) नीचे लिखे स्थानों से प्राप्त किया जा सकता है–

- बॉयोफर्टीलाइजर प्रयोगशाला, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर।
- अध्यक्ष, सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली।
- अध्यक्ष, मृदा विज्ञान विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, पन्तनगर (उत्तराखण्ड)।

बीज दर एवं बुवाई का समय

प्रायः बरसीम की देशी प्रजातियों से शुरू की कटाईयों से हरा चारा कम प्राप्त होता है इसलिये बरसीम को सरसों या लाही के साथ बोई जा सकती है, वैसे स्वस्थ व पीले रंग के बीज को 25–30 किग्रा0 प्रति हैक्टेयर बीज की आवश्यकता पड़ती है।बरसीम से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये बुवाई का उपयुक्त समय मध्य अक्टूबर होता है क्योंकि देरी से बुवाई करने पर तापमान कम होने लगता है जिसका सीधा प्रभाव बीजों के अंकुरण पर पड़ता है और पहली कटाई बहुत देरी से करनी पडती है।

बुवाई की विधि

हमारे बिहार राज्य में बरसीम की बुवाई खेत को महीन व समतल करके 5–8 सेमी. पानी भर देते है, फिर आवश्यकतानुसार क्यारी बना कर पटेला या अन्य किसी यंत्र से कादो करते हैं उसके तुरन्त बाद बीज छिटक देते हैं, ध्यान रहे बरसीम के अच्छे अंकुरण के लिये बीज को बुवाई से चार घण्टे पहले पानी में भिगोकर रखते हैं। अन्य राज्यों में खेत में पहले बीज की बुवाई करके अंकुरण के पश्चात भी खेत में पानी लगाया जा सकता है।

खाद एवं उर्वरक

बरसीम की खेती करने के लिये बुबाई से 15–20 दिन पहले (पहली फसल की कटाई के तुरन्त बाद) 80–100 कुन्तल अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद मिट्टी की ऊपरी सतह पर फैलाकर जुताई करके मिट्टी में मिला देते हैं। इसके अलावा 20–30 किग्रा0 नत्रजन तथा 50–60 किग्रा0 फासफोरस की मात्रा को प्रति हैक्टेयर अन्तिम जुताई के समय खेत में अच्छी तरह मिला दिया जाता है।

सिंचाई एवं जलनिकाष

प्रारम्भ में पौधे की अच्छी वृद्धि के लिये 8–10 दिनों के अन्तराल पर दो सिंचाई करना चाहिये, बाद में मौसम के अनुसार 15–20 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करना चाहिये ध्यान रहे प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई (पटवन) करना आवश्यक हेाता है चूकि आवश्यकता से अधिक पानी भी बरसीम के बीजों के अंकुरण व पौधें की वृद्धि के लिये हानिकारक होता है अतः ऐसा होने पर जलनिकाश का भी समुचित प्रबंध होना चाहिये।

मिश्रित खेती

अनेक प्रयोगों के परिणाम स्वरूप कृषि वैज्ञानिकों का मानना है कि बरसीम की फसल को यदि किसान नैपियर घास (हाथी घास) के साथ मिलाकर खेती करते हैं तो उनको खरीफ तथा रबी दोनों ही सीजन में हरा चारा उपलब्ध हो सकता है, क्योंकि सर्दियों में नैपियर घास की वृद्धि नहीं होती इस समय किसान बरसीम लेते है लेकिन जब बरसीम की कटाई कर ली जाती है तो खरीफ मौसम में नैपियर घास वृद्धि कर जाती है जिससे दोनों मौसम में किसान को पर्याप्त हरा चारा उपलब्ध रहता है।

कटाई एवं उपज

आमतौर पर बरसीम की फसल की कटाई बुवाई के 60–65 दिनों बाद तथा बाद में प्रति माह (30–35 दिनों के अन्तराल पर) कटाई करते रहते हैं, सर्दियों में 35–40 दिनों के अन्तराल पर जमीन की सतह से 5–8 सेमी. ऊचाई से कटाई करना चाहिये, ऐसा करने से पौधे की बढने वाली कलिकाओं को कोई नुकसान नहीं होता बल्कि चारे की बढवार अच्छी होती है।एक हैक्टेयर में उगाई गई फसल से 800–1000 कुन्तल हरा चारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

लोबिया (बोड़ा)

भारत वर्ष में लोबिया मुख्यतः दलहनी चारा फसल के रूप में बोया जाता है। इसे ज्वार, मक्का, नैपियर घास तथा गिनी घास के साथ अन्तः फसल (इंटर कापिंग) के रूप में बोया जाता है तथा अकेले भी बोया जा सकता है,। लोबिया में 20–24 :क्रूड प्रोटीन, 43–49: प्राकृतिक रेसा तथा 23–25: सेल्युलोज पाया जाता है।

बीज की मात्रा

प्रायः लोबिया की ग्रीष्मकालीन फसल को 15 फरवरी से अप्रैल माह तक बोया जा सकता है जिसके लिये 35–40 कि0ग्रा0 / हे0 बीज पर्याप्त होता है।

कटाई एवं उपज

प्रायः चारे के लिये लोबिया की फसल 60–70 दिन में तैयार हो जाती है जिससे 200 से 250 कुन्तल प्रति हे0 हरा चारा आसानी से मिल जाता है।

ज्वार (सोरघम)

बीज की मात्रा तथा उपचार

12–15 किग्रा. बीज को सेरेसान या थिरम से 2–3 ग्राम / कि. बीज की दर से उपचारित करके 3–4 से.मी. गहराई पर बुवाई की जानी चाहिये।

उन्नत प्रभेद–चारे के लिये ज्वार को अलग अलग प्रभेदों के आधार पर काटा जाता है–

एक काट वाली जातियां	दो काट वाली जातियां
यू.पी.चरी–1, यू.पी.चरी–2, यू.पी.चरी–4, टा0–4, विदिशा–60–1, पूसा चरी–2 , जे.एस.–20	एम.पी.चरी, पूसा चरी–1

बुवाई का समय तथा अन्तरण

गरमा में ज्वार की बुवाई मार्च महीने में 30 ग 10 सेमी. के अन्तरण से बुवाई करते है।

खाद उर्वरक व फसल सुरक्षा

चारे के लिये बोई जाने वाली ज्वार के लिये 60–70 किग्रा. नाईट्रोजन, 50 किग्रा. फास्फोरस एवं 40 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टयर की दर से सिफारिस की जाती है। साथ ही ज्वार में तना छेदक तथा तना मक्खी का प्रकोप अधिक होता है नियंत्रण के लिये फसल जमने के 10–15 दिन बाद 1.5 लीटर थायोडान की 800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये।

जलप्रबन्ध

बुवाई के समय पर्याप्त नमी आवश्यक है सिंचाई साधन उपलब्ध होने पर पलेवा करके तथा वर्षा आधारित क्षेत्रों में 50 प्रतिशत नमी होने पर ही बुवाई कर देनी चाहिये। मुख्यतः फूल आते समय ज्वार की फसल को सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है

कटाई एवं उपज

चारे के लिये फसल 60–65 दिन में कटाई योग्य हो जाती है। सामान्य परिस्थितियों में ज्वार की फसल 400–600 क्विंटल प्रति हेक्टयर हरा चारा प्राप्त हो जाता है।

मक्का

मई से अक्टूबर तक हरा चारा प्राप्त करने के लिये मक्का की बुवाई मार्च से मध्य अगस्त तक की जा सकती है।

बीज की मात्रा तथा बीज उपचार

25–30 किग्रा. बीज को 2–2.5 ग्राम फफूंद नाशक दवा वेविस्टीन से प्रति किग्रा. बीज की दर से अवश्य उपचारित करना चाहिये।

खाद एवं उर्वरक–

सामान्यतः चारे के लिये बोई गई मक्का के लिये 100–120 किग्रा. नाईट्रोजन, 50–70 किग्रा. फास्फोरस की आवश्यकता होती है। नाईट्रोजन की दो तिहाई तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई से पूर्व हैरो करते समय मिट्टी में अच्छी तरह मिला देते हैं बाकी मात्रा (नाइट्रोजन) बुवाई के 30–35 दिन बाद टौपड्रेसिंग कर देते है।

सिंचाई एवं निराई–

गरमा मौसम में एक–दो निराईयों की आवश्यकता होती है तथा 12–15 दिन के अन्तरण पर सिंचाई करते रहते हैं।

कटाई तथा उपज–

नरमंजिरियों की अवस्था में कटाई करने पर 400–500 क्विंटल हरा चारा तथा 60–70 क्विंटल शुष्क पदार्थ प्राप्त हो जाता है। साथ ही साधारण परिस्थितियों में भी 300–450 क्विंटल प्रति हैक्टेयर हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

उपर्युक्तचारा उत्पादन तकनीकियांभारत में चारे के अभाव की समस्या को कम करने में मददगार साबित हो सकती है जो पशुपालन, दुग्ध उत्पादन तथा पर्यावरण को स्वच्छ बनाने में अहम भूमिका निभा सकता है।

सारांश

वैज्ञानिकों के निरन्तर प्रयास द्वारा चारा उत्पादन की नवीन तकनीकियों का विकास हुआ है। परन्तु इन तकनीकियों का पशुपालकों तक पहुँच की कमी के कारण इनका समूचित लाभ नहीं मिल पा रहा है। इन चारा उत्पादन तकनीकियों को पशुपालकों तक पहुँचा कर एवं अपनाकर पशुधन की उत्पादकता के साथ ही साथ पशु स्वास्थ्य को भी सुधारा जा सकता है। पौष्टिक एवं हरा चारा को खेत पर ही पैदा करने के लिये दलहनी एवं अदलहनी चारों को साथ–साथ मिलाकर उगाना अधिक लाभ दायक होता है क्योंकि दलहनी चारा जैसे– बरसीम, लोबिया, तथा ग्वार आदि में प्रोटीन अधिक मात्रा में होता है जबकि अदलहनी चारा फसलें जैसे– जई, मक्का, बाजरा आदि में कार्बोहाईड्रेट होता है ये दोनों ही पदार्थ पशु के स्वास्थय तथा दूध की अधिक पैदावार के लिये जरूरी है, इस प्रकार उपरोक्त फसल चक्रों को अपनाने से तथा समय–समय पर खाद व पानी देने से आपके पशुओं के लिये पर्याप्त एवं लगातार हरा चारा उपलब्ध हो सकेगा। साथ ही राज्य में अधिक दुग्ध उत्पादन होने से राज्य में डेरी व्यवसाय को बढ़ावा मिलेगा एवं पशुपालकों की आमदनी में वृद्धी होगी।

***

गरीबों की औषधि: घोंघा विपणन और उपयोग

सुदय प्रसाद एवं मुकेश कुमार सिन्हा

वीर कुंवर सिंह कृषि महाविद्यालय, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

1. परिचय :-

कवचीय मीन (शेलफिश), आर्थ्रोपोडा और मोलस्का संघ से संबंधित हैं, इसमें जीवमंडल की सबसे अधिक पशु जैव विविधता पाई जाती हैं। बिहार में जल कृषिजैसे मत्स्य, मखाना (यूराल फेरॉक्स), सिंघाड़ा (ट्रैपा नटांस) जैसी अन्य जलीय फसलों के अलावा मोलस्का जैसी शेलफिश के लिए, संभावित एवं उपयोगी क्षेत्र हैं। पाईला ग्लोबोसा मीठे पानी और घास के मैदानों के पारिस्थितिकी तंत्र में एक प्रमुख प्रजाति है जो जलीय पर्यावरण के पोषण और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मीठे पानी के घोंघें, कई पक्षियों जैसे बगुला, जयकाना, डकोर, उल्लू, साइबेरियन क्रेन आदि का भोजन हैं और वे कई मछलियों के लिए जलीय खाद्य श्रृंखला में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शेलफिश, (पी. ग्लोबोसा) व्यावसायिक रूप से सबसे अधिक मूल्यवान और प्रचुर मात्रा में पाए जाने वाले गैस्ट्रोपोड्स में से एक है, वे कम आय वाले व्यक्तियों को किफायती पशु प्रोटीन को आसानी से सुलभ आपूर्ति प्रदान करते हैं। झींगा हैचरी या कैटफिश के बीज उत्पादन और पालन को बढ़ाने में कवचीय मीन के खोल और मांस को भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है। घोंघा की उपलब्धता व्यापक रूप से सभी प्रकार के जल निकायों जैसे तालाब, मखाना फसल (खेत), सिंघाड़ा क्षेत्र, धान के खेत, मीठे पानी की धाराएं, नदियाँ आदि में पाया जाता है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, पानी की कमी, घोंघें के अतिदोहन के अलावे मखाना और सिंघाड़ा खेती के दौरान कीटनाशक के अनियंत्रित प्रयोग के कारण इसकी आबादी में कमी आई है। घोंघा को अत्यधिक सुपाच्य एवं विटामिन, वसा, प्रोटीन और खनिजों विशेष रूप से कैल्शियम से भरपूर माना जाता है। मीठे पानी के घोंघें की कई प्रजातियाँ मानव के लोकप्रिय खाद्य पदार्थ हैं। विकासशील देशों में घोंघें के मांस की वैश्विक स्तर पर मांग बढ़ती जा रही है। बिहार में, घोंघें की विपणन प्रणाली विकासशील अवस्था में है और वर्तमान में अन्य मत्स्य पालन वस्तुओं जैसे कि फिनफिश, झींगा आदि की तरह प्रमुख नहीं है। बिहार में घोंघा और इसके व्युत्पन्न उत्पादों की कीमत तुलनात्मक रूप से अन्य मत्स्य पालन वस्तुओं से कम है, और इसका उपयोग एवं विपणन प्रणाली, प्रगतिशील और अव्यवस्थित है। वर्तमान समय में व्यावहारिक रूप से शेलफिश (घोंघा) विपणन प्रणाली और इसके उपयोगों के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है।

वर्तमान अध्ययन का उदेश्य मोलस्का के विभिन्न पहलुओं में उपयोग पैटर्न का अध्ययन और उत्तर पूर्वी बिहार के आर्द्रभूमि बाहुल क्षेत्रों में कई प्रचलित बीमारियों का इलाज भी पता लगाया गया है। जो लोग इस प्रणाली में पूरी तरह या आंशिक रूप से शामिल हैं, उनके घोंघें का व्यापार, तोड़ने, खरीदने और बेचने की गतिविधियों के माध्यम से विपणन चैनल को समझने की कोशिश की गयी है।

2. सामग्री और विधियाँ

वर्तमान अध्ययन के लिए बिहार के विशेष रूप से पूर्वोतर क्षेत्र को चुना गया है, जिसमें पूर्णिया, अररिया, मधेपुरा, सुपौल, मधुबनी, कटिहार, खगड़िया और सहरसा जैसे जिले शामिल हैं, (चित्र-1)। मुख्य अध्ययन स्थल की पहचान पूर्णिया में मत्स्य विभाग (बिहार सरकार) के कर्मियों के प्रारंभिक साक्षात्कार के माध्यम से की गई। कवचीय मछलियों को एकत्र किया गया और 3% फॉर्मेलिन में संरक्षित कर प्रयोगशाला में लाया गया। घोंघों को बहते नल के पानी में अच्छी तरह से धोया गया और उसके वृद्धि एवं विकास के छल्ले का पता लगाने के लिए जलीय अम्लीय माध्यम में थोड़ा डीकैल्सीफाइड किया गया। उपलब्ध प्रकाशित साहित्य की मदद से नमूनों की पहचान की गई (शर्मा और अन्य., 1983; सुब्बा राव और अन्य.,1986)। एकत्र किए गए नमूनों को भोला पासवान शास्त्री कृषि महाविद्यालय, पूर्णिया के जैव विवधता प्रयोगशाला के संग्रहालय में जमा किया गया, (चित्र-2)। इसके अलावा प्रथम लेखक के द्वारा नाका चौक मछली बाजार पूर्णिया के पास किराए पर एक कमरा (अप्रैल, 2019-जुलाई, 2023) लेकर अध्ययन किया। पूर्णिया में उत्पादित और बिहार के अन्य जिलों से प्राप्त कवचीय मीन की मांग और आपूर्ति के तथ्य और आंकड़े भी एकत्र किए गए। क्षेत्र के विभिन्न परिवारों, गांवों और ब्लॉक स्तर के लोगों से यादृच्छिक नमूना लेने के बाद भोजन, दवाओं, विटामिन की खुराक आदि के रूप में इन कवचीय मछलियों के उपयोग की जांच की गई।

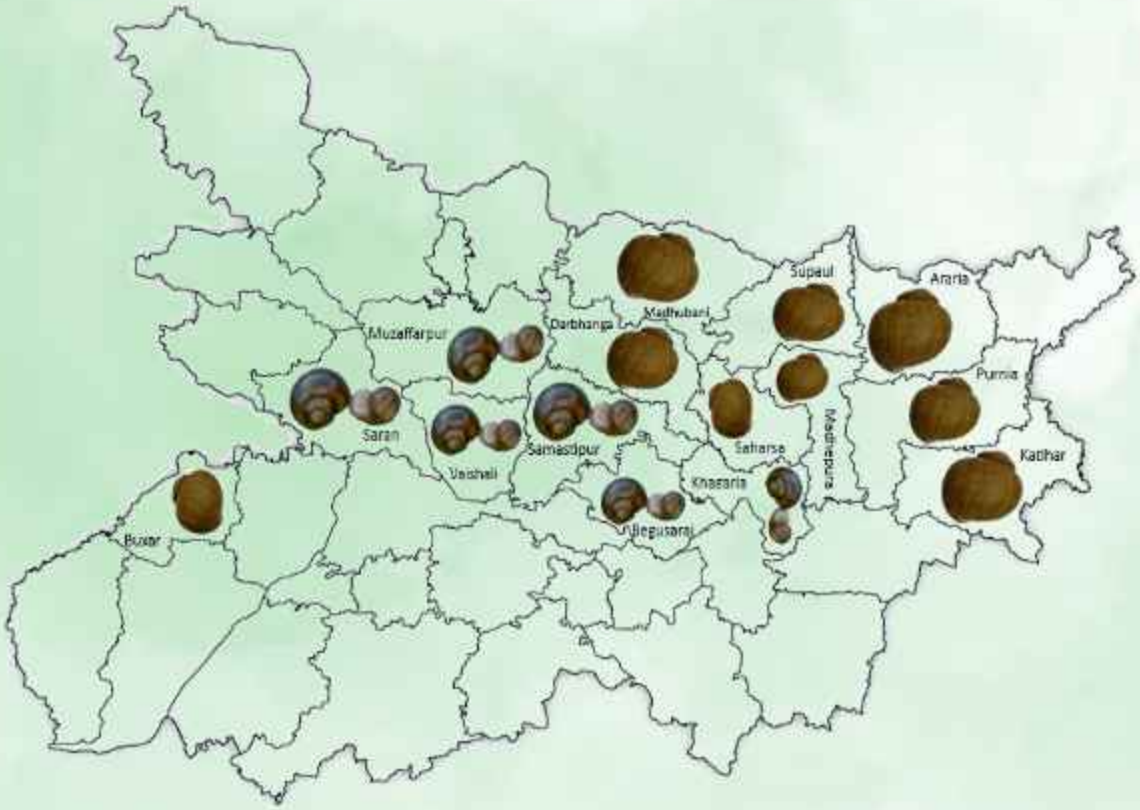

चित्र-1, बिहार के विभिन्न जिलों में कवचिय मीन की उपलब्धता एवं बाजार

चित्र- 2

चित्र-4

चित्र-5

चित्र-6

चित्र-2, 4, 5 & 6 : जैव विविधता प्रयोगशाला, विपणन और *पारिस्थितिक संतुलन बनाने में मदद*

3. परिणाम और चर्चा

3.1 आर्द्रभूमि संसाधन और कवचीय मीन उपलब्धता

उत्तरी बिहार में विभिन्न प्रकार के आर्द्रभूमि संसाधनों का महीन जाल है, जिसमें जलीय जैव-विविधता की एक विशाल श्रृंखला है। ये जलीय संसाधन, कृषि के लिए एक बुनियादी सतत विकास और क्षमता प्रदान करते हैं, जो कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों के लिए मछली और कवचीय मीन उत्पादन को बढ़ाता है। पूर्णिया जिले में मुख्य रूप से तालाब, छोटे जलाशय, नदियाँ और स्थायी और अर्ध-स्थायी (मौन, नदी का छाड़न, झील और चौर) जैसे जल निकायों वाले क्षेत्र शामिल हैं। वर्तमान अध्ययन में, यह देखा गया है कि इन जलाशयों में आर्द्रभूमि पर मछुआरे लगभग सालों भर मछली पकड़ते रहते हैं। इन जल निकायों में महत्वपूर्ण प्राकृतिक कवचीय मीन समूह की 20 से अधिक प्रजातियां पाई जाती हैं, जबकि कुछ महत्वपूर्ण स्वदेशी कवचीय मीन जैसे पाईला ग्लोबोसा, बेल्लामिया बंगालेंसिस, लेमेलिडेंस प्रजाति, पैरेशिया,

फैविडेंस, केकड़ा, मैक्रोब्रेकियम प्रजातियां, प्राकृतिक जल निकायों में विशेष रूप से पाए जाते हैं। ये कवचीय मीन इन क्षेत्रों में आर्थिक और समाजिक रूप से महत्वपूर्ण है।

3.2 आर्द्रभूमियों से घोंघा संग्रहण

उत्तरी बिहार के महानंदा एवं कोसी क्षेत्र में बारह मासी आर्द्रभूमियों का नेटवर्क होने के कारण ये मछली पालन के साथ-साथ पारिस्थिति की तंत्र क्षेत्र मखाना और सिंघाड़ा फसल उगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पूर्णिया में कई महत्वपूर्ण नदियाँ हैं जैसे सौरा, कटुआ, कंकई औररीगा,जिसे स्थानीय भाषा में धार के रूप में जाने जातें है, इसके अलावा चौर, तालाब, बाढ़ के मैदान, नदियों के छाड़न, जल-जमाव आदि शामिल हैं। इन जलीय क्षेत्रों के अलावे मखाना और सिंघाड़ा फसलों के खेतों से पकड़ी गई घोंघा की कई प्रजातियाँ कटिहार मोड़ के पास खुशकीबाग पूर्णिया बाजार में लाई और बेची जाती हैं। इस व्यवसाय से जुड़े 50 वर्षीय श्री कैलू साहनी के अनुसार, पूर्णिया के इस क्षेत्र में दो दशक पहले से घोंघा संग्रह और विपणन शुरू हुआ था और पहले सालोभर घोंघा मिला करते थे। वर्तमान समय में ये घोंघें सिर्फ 8 महीने ही बहुत कम मात्रा मिला करते है, तथा मांग की पूर्ति के लिए घोंघा को खगड़िया, बेगूसराय, समस्तीपुर, मुजफ्फरपुर और सहरसा जैसे विभिन्न जिलों से लाकर पूर्णिया में बेचा जाता है। पूर्णिया में घोंघें विशेष रूप से पाइला और बेल्लाम्या प्रजाति का विपणन जुलाई से मार्च के दौरान ही होता है। अप्रैल से जून (03 महीने) घोंघा की अनुपलब्धता के कारण बाजार/बिक्री बंद रहती है। इसकी अनुपलब्धता और मांग के कारण घोंघें की कीमतों में बढ़ोतरी होती रहती है। घोंघा संग्रह का चरम मौसम सितंबर से नवम्बर तीन महीने तक रहता है। अगस्त से सितंबर बरसात के बाद का मौसम है जिसमे घोंघें सामान्यतः प्राकृतिक आर्द्रभूमि में उच्च मात्रा में पाए जाते हैं। जबकि, सर्दियों के मौसम में घोंघें कीचड़ में (हाइबरनेशन) अवस्था में चले जाने के कारण संग्रह करने वालों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। गर्मी के मौसम में कवचीय मीन बाजार अनुपलब्धता के कारण अप्रैल, मई और जून से कम से कम तीन महीने के लिए बंद रहते हैं। बिहार के विभिन्न भागों में पी. ग्लोबोसाको स्थानीय रूप से घोंघा और डोक्का के नाम से जाना जाता है।

घोंघा (पी. ग्लोबोसा), बिहार में आदिवासी, निम्न-मध्यम आय वर्ग के लोगों द्वारा खाया जाने वाला लोकप्रिय गैस्ट्रोपोड प्रजाति है। इसके अलावे पश्चिम बंगाल के सुंदरबन क्षेत्र और भारत के अन्य क्षेत्रों में भी वहाँ के स्थानीय निवासी घोंघें को बड़े चाव से खाते हैं। वर्तमान अध्ययन में बिहार के कमोबेश 10-12 जिलों में इसके कई बाज़ार पाए गए जिसमे इन कवचीय मीन की बिक्री होती है, (चित्र-1)। कई शोधकर्ताओं ने बंगाल, अरुणाचल प्रदेश और मिज़ोरम के कई कवचीय मीन बाज़ारों कोरिपोर्ट किया है, जहाँ घोंघा (पी. ग्लोबोसा) अक्सर बेचा जाता है। घोंघें को विभिन्न जलीय संसाधनों से एकत्र किया जाता है और फिर उन्हें बेचने के लिए बाज़ारों में ले जाया जाता है। उच्च CaCo3 सामग्री, प्रति ग्राम घोंघा पाउडर में 3.04 मिलीग्राम कैल्शियम पाया जाता है, यही कारण है कि इसे कैल्शियम के सर्वोत्तम प्राकृतिक स्रोतों में से एक माना जाता है (बेबी और अन्य., 2010; प्रसाद और अन्य., 2021)।

3.3 घोंघा विपणन चैनल:

कवचीय मीन (घोंघा) विपणन प्रणाली कई लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह प्रणाली हार्वेस्टर से लेकर उपभोक्ताओं तक विपणन श्रृंखला में शामिल सभी पुरुषों एवं महिलाओं के लिए आय का एक स्रोत प्रदान करती है। उपभोक्ताओं तक पहुंचने से पहले घोंघा विपणन चैनल के कई प्रतिभागी होते हैं, जिनमें हार्वेस्टर, संग्राहक, बड़े व्यापारी, खुदरा विक्रेता शामिल होते हैं। सबसे पहले, हार्वेस्टर द्वारा घोंघें को विभिन्न जल सोतों से निकासी की जाती है, इसके बाद हार्वेस्टर घोंघें को संग्राहक को बेचता है, फिर संग्राहक इसे बड़े व्यापारी को बेचते हैं और उसके बाद खुदरा विक्रेताओं द्वारा घोंघें को बेचा जाता है। घोंघा बाजार श्रृंखला के विभिन्न चरणों का विवरण चित्र 3 में दिखाया गया है।

1. हार्वेस्टर→संग्राहक→खुदरा विक्रेता→उपभोक्ता

2. हार्वेस्टर→संग्राहक→व्यापारी→ खुदरा विक्रेता→उपभोक्ता

चित्र 3: बिहार में घोंघा विपणन श्रृंखला का फ्लो चार्ट।

व्यापारी संग्राहकों से घोंघा खरीदते हैं और खुदरा विक्रेताओं को बेचते हैं। खुदरा विक्रेता ने खरीद और बिक्री के माध्यम से लाभ कमाते हैं। यह सत्य है कि घोंघा कम और मध्यम कीमत वाली वस्तु है अध्ययन में पाया कि ज्यादातर, घोंघा संग्राहक गरीब हैं उनका पेशा आंशिक आजीविका का विकल्प है। कुछ हार्वेस्टर दिन में कवचीय मीन पकड़ते है, और उसी दिन बाजारों में बेच देते है। उत्तर बिहार के विभिन्न जिलों में कुछ व्यापारी वैसे हैं, जिनकी आजीविका का मुख्य विकल्प घोंघा है। कुछ व्यापारी हार्वेस्टर/छोटे व्यापारियों, संग्राहक से खरीदा करते है और विपणन के लिए खुदरा विक्रेता को बेचते है। वे कभी-कभी चौर, मौन, तालाब आदि से घोंघेंको पकड़ने के लिए नाव का उपयोग भी करते हैं। छोटे व्यापारी दो, तीन पहिया वाहनों का उपयोग करके घोंघों को दूसरे बाजार/जिले में ले जाते हैं। वे घोंघों को जूट/प्लास्टिक के बोरे में पैक करते हैं, जहां प्रत्येक बोरे में 50-55 किलोग्राम घोंघा होता है। कवचीय मीन घोंघा (पी. ग्लोबोसा) को अन्य जिलों सेमोटरसाइकिल, वैन, टेम्पो आदि जैसे उपयोगी वाहनों के माध्यम से आवश्यकतानुसार पूर्णिया में लाकर बेचा जाता है।

3.4 घोंघें का प्रसंस्करण

खुदरा विक्रेता, व्यापारी से घोंघें खरीदते हैं जिसके बाद वे घोंघें के उपरी कवच उतारते हैं और खुदरा कीमतों पर घोंघें का मांस बेचते हैं। छोटे समूह में 5-8 लोग होते हैं, जिनमें से अधिकांश महिलाएं होती हैं। महिला सदस्यों के पास अन्य घरेलू काम होने के कारण वे दिन में कुछ समय घोंघें तोड़ती हैं और उसके मांस को बेचती हैं, जिसमें कभी-कभार उनके पुरुष भी मदद करते हैं। एक बड़ा समूह बड़े व्यापारियों द्वारा दिए गए उधार पर पीक सीजन के दौरान 5-8 बैग/प्रतिदिन खरीदता है। एक कुशल सदस्य प्रति घंटे 8-10 किलोग्राम तक घोंघा तोड़ सकता है। घोंघें के उपरी कवच को तोड़ने के लिए लकड़ी और लोहे की पिन से बने दो छोटे उपकरणों (जिसे स्थानीय रूप से फुटौनी और खोलनी कहते हैं) का उपयोग किया जाता है। प्रसंस्करण चैनल और चार्ट का विवरण तालिका-1 एवं चित्र-3 में दिखाया गया है।

तालिका-1: पूर्णिया में घोंघें एवं उसके मांस का मूल्य

क्र. स.	प्रकार	मूल्य (औसत)/किग्रा
1	घोंघा/कवच सहित	100 रुपये/किग्रा
2	घोंघा का मांस सभी भागों (आहारनाल) सहित	140 रुपये/किग्रा
3	शुद्ध मांस (जठरांत्र मार्ग से निकालना)	175 रुपये/किग्रा
4	अपशिष्ट जल/कई बीमारियों के लिए उपयोगी	50 रुपये/लीटर

3.5 घोंघें की बिक्री

घोंघा का मांस मछली और झींगे के बाद प्रोटीन का एक बेहतर स्रोत माना जाता है। घोंघा (पी. ग्लोबोसा) के पैर और हेपेटोपैन्क्रियास दोनों ही खाद्य के रूप में उपयोग किया जाता है। घोंघें के मांस में एक विशेष स्टेरोल और महत्वपूर्ण फैटी एसिड पाया जाता है। कई अध्ययनों ने पुष्टि की है कि पी. ग्लोबोसा के मांस में उच्च प्रोटीन और कम वसा सामग्री होने के कारण भोजन के रूप में खाया जाता है। पी. ग्लोबोसा की बाजार भाव साल के दिन, मौसम उपलब्धता और मांस की गुणवत्ता के साथ उतार-चढ़ाव होते रहता है। प्रायः यह देखा गया है कि बाजारों में पी. ग्लोबोसा की रोज़ाना आपूर्ति पीक या ऑफ सीजन के दौरान कैच (फसल) के अंतर पर निर्भर करती है। प्रभावी रूप से अधिकांश पी. ग्लोबोसा की बिक्री मंगलवार और गुरुवार की तुलना में रविवार, सोमवार, बुधवार, शुक्रवार और शनिवार को अधिक होती है, यह धार्मिक दृष्टिकोण हो सकता है, विवरण तालिका-2 में प्रस्तुत किया गया है। पूर्णिया जिले में, घोंघा की मांग अधिक होने के कारण, बिहार के समस्तीपुर, खगड़िया जैसे अन्य जिलों से घोंघा को आयातित किया जाता है। पाइला और बेलम्या प्रजातियों में, पी. ग्लोबोसा और बी. बंगालेंसिस की अच्छी मांग है और अक्सर इन क्षेत्रों में मध्यम और निम्न-वर्गीय परिवारों द्वारा औसत खुदरा मूल्य 120 रुपये प्रति किलोग्राम खरीदा जाता है।

तालिका-2. पूर्णिया बिहार में घोंघा की व्यक्तिगत, दैनिक बिक्री और आय

दिन	किलोग्राम में औसत दर 120 बिक्री खुदरा मूल्य/किग्रा	घोंघा का विक्रय प्रतिदिन/कि.ग्रा.	औसत खुदरा विक्रय मूल्य 120/कि.ग्रा.
रविवार	50	37	4440
सोमवार	40	31	3770
मंगलवार	40	30	3600
बुधवार	45	35	4200
गुरुवार	40	31	3770
शुक्रवार	50	37	4440
शनिवार	45	35	4200

पूर्णिया में सर्वेक्षण में पाया कि बेचे गए घोंघें इनसे जुड़े स्थानीय लोगों की आय पर बहुत प्रभाव पड़ता है। एक विक्रेता एक दिन में शुद्ध औसत लाभ 1000-1500 रुपये का कमाई कर लेता है।

3.6 पारिस्थितिक संतुलन बनाने में मदद

बिहार के विभिन्न जलीय क्षेत्रों में घोंघें की कई प्रजातियाँ प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं और मूल्यवान भी हैं, क्योंकि वे कृषि और जलीय फसलों के कचरे की एक विस्तृत श्रृंखला को खाते हैं और उन कचरों में प्रजनन करते हैं, जैसे केला (मूसा एक्यूमिनटा), सिंघाड़ा (ट्रैपा नटांस) और मखाना (यूरायल फेरॉक्स) आदि। कवचीय मीन मैक्रो-अकशेरुकी जीवों का प्रमुख घटक हैं, वे ज़ूप्लैंकटन और कशेरुकी टैक्सा, जैसे मछलियों और पक्षियों के बीच की कड़ी बनाती हैं और आर्द्रभूमि आवासों के ऊर्जा प्रवाह और जैव-भू-रासायनिक चक्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मछलियों और पक्षियों की जीव विविधता सीधे इनके आवासों की मोलस्क आबादी पर निर्भर करती है।कवचीय मीन की बहुतायत मछलियाँ, प्रजाति विविधता के सन्दर्भ में पक्षियों के लिए एक अच्छी जीवन समर्थन प्रणाली का संकेत देती है (चित्र-4 एवं 5)। स्थानीय मानव आबादी के लिए भोजन, वित्त, मनोरंजन, दवाओं, विटामिन और खनिज आदि का पूरक है। कवचीय मीन का व्यावसायिक पहलू और खाद्य श्रृंखला के उच्च ट्रॉफिक स्तर पर रहने वाले जानवरों के लिए कच्चे माल के रूप में जैविक विविधता बढ़ाने और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में मदद करती है। यहाँ प्रस्तुत तथ्य और आंकड़े बताते हैं कि घोंघा उत्पादन/आपूर्ति में काफी कमी आई है, जिसका प्रमुख कारण मखाना फसल क्षेत्र का विकास है जहाँ मखाना और अन्य जलीय फसलों में कीटनाशकों का अनियंत्रित प्रयोग होता है जिससे इनके जीवन चक्र प्रभावित होती है। इसके परिणामस्वरूप, उनके प्राकृतिक उत्पादन में भी कमी आने के साथ-साथ वयस्क और प्रजनक के स्पॉनिंग ग्राउंड भी नष्ट हो रहेहैं। इस प्रकार, उनके औषधीय मूल्य और इन संसाधनों के संबंध में कवचीय मत्स्य पालन के संबंध में काफी गुंजाइश है, स्थानीय लोगों की आय बढ़ाने और रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए वाणिज्यिक आधार पर विवेकपूर्ण उपयोग की आवश्यकता है।

3.7 पोषण और औषधीय उपयोग

ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले स्थानीय लोगों का मानना है कि घोंघें के मांस में कुछ विशेष उपचार गुण होते हैं, जो इनका उपयोग विभिन्न प्रकार के बीमारियों के इलाज के लिए करते हैं, जैसे उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, चिंता, घबराहट, साथ ही शरीर में उच्च तापमान को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। इसके अलावा रक्त संचार संबंधी समस्याओं, कब्ज, पेचिश और दस्त सहित पाचन संबंधी अनेक बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए भी किया जाता है। विस्तृत विधि/उपचार **तालिका-3** में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका-3: खाद्य, पोषण और औषधीय के रूप में उपयोग किए जाने वाले कवचीय मीन

क्र. स.	प्रजातियाँ जो रोगों के उपचार के लिए उपयोग की जाती हैं	रोग	नियंत्रण विधि
1.	पाइला प्रजाति	रिकेट्स	इन मोलस्कन के अंडे से तैयार सूप बच्चों में रिकेट्स के इलाज के लिए उपयोग लाया जाता है।
2.	पाइला और बेलामिया प्रजाति	रतौंधी	इन प्रजाति के घोंघो के करी आदिवासी लोगों द्वारा नियमित रूप से खाई जाती है और इससे आँखों की रोशनी बेहतर होती है।
3.	बेलामिया और पाइलाकी छोटी प्रजाति	अस्थमा जोड़ों का दर्द और गठिया	बेलामिया प्रजाति के घोंघें से तैयार सूप का उपयोग इलाज के लिए किया जाता है
4.	बेलामिया बंगालेंसिस	कंजंक्टिवाइटिस	मिट्टी के बर्तन में साफ ताजे पानी में रखी जाने वाली प्रजाति का पानी आई ड्रॉप की तरह इस्तेमाल किया जाता है।
5.	लेमेलिर्डेस और पैरेसिया	हृदय संबंधी बीमारियाँ	इन प्रजातियों से तैयार सूप का उपयोग हृदय संबंधी बीमारियों के इलाज के लिए किया जाता है।
6.	पैरेसिया प्रजाति	रक्तचाप	इन प्रजातियों से तैयार सूप का उपयोग रक्तचाप को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।
7.	लैमेलिडेन्स और पी. ग्लोबोसा	घबराहट, चक्कर आना और निर्जलीकरण	शैल पाउडर यदि दोनों प्रजातियों को शहद के साथ मिलाकर चक्कर आना और निर्जलीकरण के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है।

पाइला, बेलम्या, लेमेलिडेन्स और पैरेसिया प्रजातियों के मांसलपैर, प्रोटीन, विटामिन (ए, बी, डी) और खनिजों से भरपूर होते हैं (प्रभाकर और रॉय, 2009)। इसका उपयोग उत्तर बिहार के कोसी क्षेत्र के आदिवासी और मध्य-निम्न आय वाले परिवार द्वारा करी के रूप में और भूनकर मुख्य पोषण तत्व के रूप में किया करतेहैं। वर्तमान अध्ययन में, आदिवासी और मध्यम आय वर्ग के लोग घोंघें को भोजन के रूप में उपयोग करते हैं और जठरांत्र संबंधी मार्ग से छुटकारा पाते है। घोंघें के मांस से सूप भी तैयार करते हैं। प्राथमिक रूप से घोंघें की अंतड़ियाँ निकालकर उसके मांस को सीमित घंटों के लिए मिट्टी के बर्तन में साफ ताजे पानी में रखा जाता है और फिर पानी का उपयोग नेत्रश्लेष्मलाशोथ के लिए 'आई ड्रॉप' के रूप में किया जाता है। इस क्षेत्र में इस रोग के उपचार के लिए यह विधि सर्वोतम मानी जाती है। इसके अलावा मांस के सूप का उपयोग दवा के रूप में किया जाता है, जिसके बारे में माना जाता है कि यह जोड़ों की सूजन, दर्द, रक्तचाप, हृदय सम्बन्धी बीमारी, औरत सम्बन्धी बीमारी,अस्थमा और गठिया के साथ-साथ घावों को जल्दी ठीक करने में भी मदद करता है। रेंगसुंदरी और अन्य., 2017 के अनुसार, भारत के तमिलनाडु राज्य में पी. ग्लोबोसा का उपयोग "नाथई पर्पम" की तैयारी में किया जाता है, जिसका उपयोग सिद्ध चिकित्सा पद्धति में रक्तस्राव, बवासीर, फिस्टुला, गुदा की जलन, तिल्ली का बढ़ना, मधुमेह और तपेदिक के इलाज के लिए दवा के रूप में किया जाता है। झारखंड राज्य के संथाल परगना जिले के स्थानीय लोग पी. ग्लोबोसा का उपयोग विभिन्न नेत्र और अन्य बीमारियों के लिए करते हैं (बोडिंग, 2001)। पी. ग्लोबोसा का उपयोग बंधन विकारों के उपचार में किया जाता है (पंडियाराजन और अन्य., 2022)। गर्भवती महिलाएँ भी घोंघें को औषधीय लाभों के लिए घोंघें के हीमोलिम्फ का अधिक सेवन करती हैं, विशेष रूप से प्रसव पीड़ा के मामलों में और जन्म के दौरान रक्त की हानि से बचने के लिए (एडेये, 1996)। भारत के उत्तरपूर्वी क्षेत्र जैसे नागालैंड की जनजातियाँ अस्थमा के इलाज के लिए घोंघें का भरपूर उपयोग करती हैं (जमीर और लाल, 2005)। वही पश्चिम में राजस्थान के सहरिया लोगों के बारे में बताया जाता है कि वे पारंपरिक चिकित्सा में घोंघें से कमजोरी का इलाज करते हैं (महावर और जोरोली, 2007)। घोंघें के मांस में जैवसक्रिय यौगिक प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है जो रोगाणुरोधी, सूजनरोधी, एंटी-ऑक्सीडेटिव, कैंसर विरोधी और प्रतिरक्षा बढ़ाने वाले गुणों को प्रदर्शित करता है (बेनकेडॉर्फ और अन्य., 2010)। अतः बिहार में कवचीय मीन का बाजार महत्वपूर्ण एवं आर्थिक महत्व रखता है। कवचीय मीन (घोंघा) के मांस का उपयोग जलीय कृषि के साथ-साथ मानव प्रोटीन पूरक के रूप में किया जाता है, इसे कई बीमारियों के इलाज के लिए पारंपरिक औषधीय प्रथाओं में नियोजित किया गया है। यह मानव जाति के लिए कई पहलुओं में लाभकारी हो सकता है। स्थानीय उपचार पद्धति में स्वदेशी पद्धति से अनेक रोगों का उपचार किया जाता है, जिसे इस क्षेत्र में 'होरोपैथी' कहा जाता है। इसी प्रकार उत्तर बिहार के आर्द्रभूमि क्षेत्र में भी एक ओर अनेक रोगों के उपचार में कवचीय मछलियों का उपयोग किया जाता है, तो दूसरी ओर दैनिक भोजन के रूप में कवचीय मछलियों का उपयोग आम बात है। इसलिए स्थानीय लोगों के भरण-पोषण के लिए इन कवचीय मछलियों का संरक्षण और प्रबंधन आवश्यक है।

निष्कर्ष

बिहार में कवचीय मीन मार्केटिंग सिस्टम विकासशील चरण में है और घोंघें की मांस के उपयोग विभिन्न प्रकार से किया जाता है। कवचीय मत्स्य पालन स्थानीय लोगों की प्रोटीन युक्त खाद्य मांग का एकमात्र समाधान है क्योंकि उच्च आय और निम्न आय दोनों आबादी के लिए कम लागत वाले प्रोटीन इनसे प्राप्त किए जा सकते हैं। कवचीय मछलियाँ धान, मखाना, सिंघाड़ा और अन्य जलीय कृषि कार्यक्रमों के साथ मिलकर विकसित होती हैं, जो प्रोटीन की भूखी दुनिया में पशु प्रोटीन का विस्तार करने का एक अत्यधिक कुशल तरीका प्रदान करती हैं। भविष्य में, घोंघा का बीज उत्पादन और पालन के साथ-साथ विदेशी मुद्रा के लिए एक नया क्षेत्र खोलेगी। इसके बारे में और विशेष अध्ययन करने और बीज उत्पादन एवं पालन तकनीक विकसित करने की आवश्यकता है।

***

कृषि नवाचार के लिए चैट जी पी टी की भूमिका

आरती कुमारी, आशुतोष उपाध्याय, कीर्ति सौरभ, पवनजीत एवं अनुप दास
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

सारांश

ऐसे युग में जब तकनीक तीव्र गति से आगे बढ़ रही है, कृषि क्षेत्र एक परिवर्तनकारी क्रांति के कगार पर खड़ा है। खेती के तरीकों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग कृषि में आधुनिकता के प्रति हमारे दृष्टिकोण को नया आकार देने का वादा करता है। इस कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीकों में सबसे आशाजनक चैट जी पी टी है, जो ओपन ए. आई. द्वारा विकसित एक उन्नत भाषा मॉडल है। यह लेख चैट जी पी टी के कृषि क्षेत्र में उपयोग के प्रसंशात्मक पहलुओं को अच्छी तरह से प्रस्तुत करता है, जिससे कृषि परिदृश्य में क्रांति आ सकती है।

परिचय

कृषि कई अर्थव्यवस्थाओं की रीढ़ है, और भारत में, यह आबादी के विशाल बहुमत का प्राथमिक व्यवसाय भी है। हालाँकि, इसके महत्व के बावजूद, भारतीय किसानों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिसमें सूचना, संसाधनों और प्रौद्योगिकी तक पहुँच की कमी शामिल है। किन्तु ए. आई. के प्रमुख घटकों में चैट जी पी टी की मदद से विकसित ऍप्लिकेशन्स द्वारा स्थानीय भाषा में कृषि हेतु उपयुक्त समय की सलाह और मार्गदर्शन प्रदान करके किसानों के जीवन में क्रन्तिकारी बदलाव लाया जा सकता है।

कृषि कई अर्थव्यवस्थाओं की रीढ़ है, और भारत में, यह आबादी के विशाल बहुमत का प्राथमिक व्यवसाय भी है। इसके महत्व होने के बावजूद, भारतीय किसानों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिसमें सूचना, संसाधनों और प्रौद्योगिकी तक पहुँच की कमी शामिल है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने विभिन्न उद्योगों में क्रांति ला दी है, और कृषि भी इसका अपवाद नहीं है। सटीक खेती और फसल निगरानी से लेकर पूर्वानुमानित विश्लेषण और स्वचालित मशीनरी तक, ए. आई. तकनीकें कृषि क्षेत्र में संचालन और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित कर रही हैं। चैट जी पी टी, ओपन ए. आई. द्वारा विकसित एक भाषा मॉडल है, जिसमें कृषि उद्योग में क्रांति लाने की क्षमता है। जेनेरेटिव प्री-ट्रेनिंग ट्रांसफॉर्मर (जी पी टी) आर्किटेक्चर द्वारा संचालित, चैट जी पी टी को विशेष रूप से प्राकृतिक भाषा पाठ उत्पन्न करने के लिए डिज़ाइन किया गया है जो मानव भाषा की नकल करता है।

इसके अलावा, पुस्तकों, लेखों और वेब सामग्री जैसे विविध स्रोतों को शामिल करने वाले व्यापक डेटासेट पर प्रशिक्षित,चैट जी पी टी भाषा इनपुट की एक विस्तृत श्रृंखला में मानव जैसी प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करने में उत्कृष्टता प्राप्त किये हुए है। इसकी क्षमताएँ केवल टेक्स्ट जनरेशन से आगे बढ़कर क्वेरी रिज़ॉल्यूशन, भाषा अनुवाद, टेक्स्ट का सारांश, ग्राहक सहायता और तकनीकी लेखन जैसे अनुप्रयोगों तक फैली हुई हैं। चैट जी पी टी को जो चीज़ अलग बनाती है, वह है मशीन लर्निंग तकनीकों के माध्यम से अनुकूलन और सुधार करने की इसकी क्षमता। शुरुआत में, मॉडल प्राकृतिक भाषा पैटर्न को समझने और दोहराने के लिए विशाल डेटासेट पर व्यापक प्रशिक्षण से गुजरता है। यह मूलभूत शिक्षा चैट जी पी टी को सुसंगत टेक्स्ट को समझने और उत्पन्न करने में सक्षम बनाती है। साथ हीं, मॉडल को छोटे, विशेषीकृत डेटासेट पर प्रशिक्षित करके विशिष्ट कार्यों या उद्योगों के लिए ठीक किया जा सकता है। एक बार ठीक हो जाने के बाद, चैट जी पी टी एक परिष्कृत फीड-फ़ॉरवर्ड न्यूरल नेटवर्क का उपयोग करके प्राकृतिक भाषा इनपुट - जैसे प्रश्न या संकेत - को संसाधित करता है। कृत्रिम न्यूरॉन्स की कई परतों से युक्त यह नेटवर्क, प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करने के लिए एक डिकोडिंग तंत्र का उपयोग करता है। पिछले संदर्भ के आधार पर बाद के शब्दों के संभाव्यता वितरण से नमूना लेकर, सुनिश्चित करता है कि इसके आउटपुट धाराप्रवाह और प्रासंगिक हों। संक्षेप में, चैट जी पी टी की उच्च-गुणवत्ता, संदर्भ-संवेदनशील प्रतिक्रियाएँ देने की क्षमता इसे कृषि सहित विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण क्षमता वाला एक बहुमुखी तकनीक बनाती है। कृषि पद्धतियों के भीतर दक्षता और निर्णय लेने को बढ़ाने में इसकी भूमिका आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों पर इसके परिवर्तनकारी प्रभाव को उजागर करती है।

कृषि में चैटजीपीटी की क्षमता का दोहन

हाल के अध्ययनों ने कृषि में चैट जी पी टी के बहुमुखी अनुप्रयोगों तथा कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर प्रकाश डाला है। यह तकनीक संभावित रूप से कृषि पद्धतियों में क्रांतिकारी बदलाव ला सकती है।कृषि क्षेत्र में चैट जी पी टी का उपयोग चित्र संख्या १ में दर्शाया गया है।

चित्र संख्या 1. कृषि क्षेत्र में चैटजीपीटी का संभावित उपयोग

फार्म मशीनीकरण में अनुप्रयोग: चैट जी पी टी विभिन्न फार्म प्रबंधन प्रणालियों से प्राप्त डेटा का प्रभावी ढंग से विश्लेषण कर सकता है, जिससे इन्वेंट्री प्रबंधन, वित्तीय निरीक्षण और श्रम आवंटन जैसे कार्यों को अनुकूलित किया जा सकता है। सेंसर डेटा और ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि का लाभ उठाकर, यह बेहतर मशीनरी रखरखाव की सुविधा प्रदान करने में भी सक्षम है, जिससे परिचालन दक्षता बढ़ती है और डाउनटाइम कम होता है। इसके अलावा, यह किसानों को इष्टतम रोपण कार्यक्रम और उर्वरक आवेदन समय के बारे में सटीक निर्णय लेने में सहायता कर सकता है।

कृषि जल प्रबंधन में अनुप्रयोग: ऐतिहासिक मौसम पैटर्न और मिट्टी की नमी के आंकड़ों को शामिल करने वाले व्यापक डेटासेट पर प्रशिक्षित, चैट जी पी टी फसल की पानी की आवश्यकताओं की भविष्यवाणी करने में उत्कृष्ट है। यह भारी धातुओं और कीटनाशकों जैसे दूषित पदार्थों के नमूनों का विश्लेषण करके पानी के उपयोग को अनुकूलित करने पर अमूल्य मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह सटीक जल आवंटन करने में सक्षम है और टिकाऊ कृषि प्रथाओं को बढ़ावा देती है।

निर्णय लेने और परामर्श सेवाओं को बढ़ावा: कृषि में एक महत्वपूर्ण चुनौती जटिल डेटा स्रोतों और जलवायु परिवर्तन के बीच उचित निर्णय लेना है। चैट जी पी टी एक मजबूत सलाहकार विशेष रूप में कार्य करता है, जो वास्तविक समय की जानकारी और अनुरूपित सिफारिशें प्रदान करता है। मौसम की स्थिति, मिट्टी की सेहत, फसल की जीवन शक्ति और बाजार की गतिशीलता जैसे कारकों का विश्लेषण करके, यह रोपण कार्यक्रम, सिंचाई रणनीतियों, कीट प्रबंधन और इष्टतम फसल समय पर रणनीतिक सलाह भी प्रदान करता है।

सटीक खेती और संसाधन अनुकूलन: सटीक खेती का उद्देश्य संसाधन इनपुट को कम करते हुए फसल की पैदावार को अधिकतम करना है। चैट जी पी टी सेंसर, ड्रोन और सैटेलाइट इमेजरी से व्यापक डेटासेट का प्रसंस्करण करके इस खोज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिष्कृत प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण तकनीकों के माध्यम से, यह जटिल डेटा को कार्रवाई योग्य अंतर्दृष्टि में अनुवाद करता है। उदाहरण के लिए, यह मिट्टी की नमी सेंसर से डेटा का विश्लेषण करके सटीक सिंचाई कार्यक्रम की सिफारिश कर सकता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि फसलों को

महत्वपूर्ण विकास चरणों में इष्टतम जल स्तर मिले। यह न केवल फसल उत्पादकता को बढ़ाता है बल्कि विशेष रूप से जल-तनाव वाले क्षेत्रों में टिकाऊ जल प्रबंधन तकनीकों को भी बढ़ावा देता है।

कृषि में आई ओए टी तकनीकों से डेटा की निगरानी और विश्लेषण के लिए चैट जी पी टी: कृषि उद्योग में आई ओए टी उपकरणों से डेटा की निगरानी और विश्लेषण करने के लिए चैटजीपीटी का उपयोग किया जा सकता है। ये तकनीक किसानों और कृषि प्रबंधकों को फसलों, मिट्टी, और मौसम की स्थिति के बारे में महत्वपूर्ण डेटा प्रदान करते हैं। चैट जी पी टी सेंसर डेटा का विश्लेषण कर सकता है और फसल की वृद्धि में पैटर्न, मौसम के परिवर्तनों को पहचान सकता है। इसके साथ ही, यह उर्वरक और कीटनाशक के उपयोग के समय को भी निर्धारित कर सकता है। इस तरह की तकनीकी सहायता किसानों को उपयुक्त निर्णय लेने में मदद कर सकती है, जो फसल की पैदावार में सुधार और पर्यावरण की रक्षा में सहायक साबित हो सकती है।

पूर्वानुमानात्मक विश्लेषण और उपज पूर्वानुमान: प्रभावी कृषि प्रबंधन और बाजार नियोजन के लिए सटीक उपज पूर्वानुमान आवश्यक है। अपनी पूर्वानुमान क्षमताओं का लाभ उठाते हुए, चैट जी पी टी ऐसे मॉडल विकसित करती है, जो मौसम के पैटर्न, मिट्टी की उर्वरता और ऐतिहासिक उपज डेटा जैसे परिवर्तनकारी घटकों के आधार पर फसल की उपज का पूर्वानुमान लगाते हैं। संभावित उपज में उतार-चढ़ाव के बारे में शुरुआती अलर्ट प्रदान करके, यह किसानों को रोपण घनत्व को समायोजित करने या फसल किस्मों में विविधता लाने जैसे सक्रिय उपाय अपनाने में सक्षम बनाता है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना करते हुए, फसल की पैदावार पर उनके प्रभावों का अनुमान लगाने के लिए विविध जलवायु परिदृश्यों का अनुकरण करती है, जिससे किसानों को अनुकूलन के लिए लचीली रणनीति तैयार करने में मदद मिलती है।

पशुधन उत्पादन प्रबंधन में अनुप्रयोग: पशुधन प्रबंधन में, यह फ़ीड उपयोग को अनुकूलित करने, व्यापक डेटा विश्लेषण के माध्यम से पशु स्वास्थ्य समस्याओं के शुरुआती संकेतों की पहचान, और फीडर और पानी के कुंड जैसे उपकरणों के लिए रखरखाव आवश्यकताओं की भविष्यवाणी करने में भी सक्षम है। साथ ही यह स्वचालित रिपोर्ट तैयार करता है जो पशुधन स्वास्थ्य और परिचालन संवर्द्धन की निगरानी में सहायता करती है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में अनुप्रयोग: सेंसर और कैमरों से डेटा का उपयोग करके, चैट जी पी टी खाद्य दोषों और उत्पाद की शेल्फ लाइफ़ का अनुमान लगाता है, साथ ही विशिष्ट अवयवों और आहार संबंधी प्राथमिकताओं के अनुरूप अनुकूलित व्यंजन तैयार करने में भी मदद करता है । यह संदूषण जोखिमों का पूर्वानुमान लगाकर खाद्य सुरक्षा प्रोटोकॉल को बढ़ाता है और इन्वेंट्री, लॉजिस्टिक्स और वित्तीय

डेटा आवश्यकताएँ: मॉडल विकास के लिए पर्याप्त मात्रा मे डेटा की आवश्यकता होती है।

ब्लैक बॉक्स मॉडल: इसकी निर्णय लेने की प्रक्रिया को समझना चुनौतीपूर्ण हो सकता है, जिससे हितधारकों को स्पष्टीकरण देना जटिल हो सकता है।

कृषि की जटिलता: कृषि की बहुमुखी प्रकृति, चैटजीपीटी की सभी परिवर्तनकारी घटकों का सटीक रूप से हिसाब रखने की क्षमता को चुनौती दे सकती है।

डेटा प्रकार की सीमाएं: पाठ प्रसंस्करण मे कुशल होने के बावजूद, चैटजीपीटी को कृषि मे महत्वपूर्ण गैर-पाठीय डेटा प्रकारों के साथ संघर्ष करना पड सकता है।

पूर्वाग्रह और त्रुटियाँ: यह एक ए आई मॉडल के रूप मे, पूर्वाग्रह और त्रुटियाँ प्रदर्शित कर सकता है, जिसके कारण वास्तविक दुनिया मे इसके अनुप्रयोग से पहले गहन मूल्यांकन की आवश्यकता होती है।

निरीक्षण को शामिल करते हुए आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन को सुव्यवस्थित करता है। इसके अतिरिक्त, यह पोषण संबंधी जानकारी प्रदान करता है और ग्राहकों की पूछताछ का जवाब देता है, जिससे उत्पादन दक्षता में सुधार होता है और मैन्युअल डेटा प्रविष्टि बोझ कम होता है।

सारांश में, जबकि चैटजीपीटी विभिन्न क्षेत्रों में कृषि पद्धतियों को बदलने के लिए महत्वपूर्ण संभावनाएं रखती है, वास्तविक दुनिया के कृषि अनुप्रयोगों में इसकी क्षमता को अधिकतम करने के लिए इसकी क्षमताओं और सीमाओं पर सावधानीपूर्वक विचार करना आवश्यक है।

कृषि में चैट जी पी टी की सीमाएं

अपनी क्षमता के बावजूद, चैट जी पी टी को कृषि अनुप्रयोगों में कुछ सीमाओं का सामना करना पड़ता है, जो निम्नलिखित है:

निष्कर्ष

कृषि क्षेत्र में चैटजीपीटी के एकीकरण से नवाचार को बढ़ावा देने और खेती के तरीकों में क्रांतिकारी बदलाव लाने की अपार संभावनाएं हैं। निर्णय लेने की प्रक्रिया को बेहतर बनाने, संसाधनों के उपयोग को अनुकूलित करने, पूर्वानुमानित अंतर्दृष्टि प्रदान करने और ज्ञान प्रसार को सुविधाजनक बनाने के ज़रिए, चैटजीपीटी एक अधिक उत्पादक, टिकाऊ और लचीली कृषि प्रणाली में योगदान दे सकती है। इस मॉडल का उपयोग दक्षता में सुधार, फसल की पैदावार बढ़ाने और खेती को अधिक टिकाऊ बनाने के लिए कई तरह से किया जा सकता है। अनुप्रयोगों में मौसम के पैटर्न का विश्लेषण, फसल की वृद्धि की भविष्यवाणी, कीटों और बीमारियों की पहचान, सटीक खेती, सिंचाई का अनुकूलन, फसल की पैदावार की भविष्यवाणी, फसल प्रजनन में सुधार, कार्यों को स्वचालित करना, निर्णय लेना और रणनीतिक योजना बनाना, खाद्य सुरक्षा में सहायता करना, पशुधन के गुणवत्ता व प्रबंधन में सुधार डेटा की निगरानी और विश्लेषण करना, प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण और कृषि रिपोर्ट और शोध पत्रों को समझना शामिल है।

जैसे-जैसे तकनीक विकसित होती जा रही है, हम उम्मीद कर सकते हैं कि अधिक से अधिक किसान और कृषि प्रबंधक अपने संचालन में चैट जी पी टी को एक मूल्यवान तकनीक के रूप में अपनाएंगे।

***

भारतीय कृषि की विकास यात्रा एवं तकनीकी परिवर्तन

रोहन कुमार रमण, विवेकानंद भारती, धीरज कुमार सिंह, उज्ज्वल कुमार, अभय कुमार, गौतम रंजन, तारकेश्वर कुमार, अकरम अहमद, वेद प्रकाश, मो. मोनोब्रुल्लाह , वी. साईंनाथ एवं अनिर्बान मुखर्जी
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

परिचय

कृषि, भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। भारतीय कृषि क्षेत्र में पिछले कई दशकों में महत्वपूर्ण वृद्धि, विकास और तकनीकी सुधार हुई है, जो दुनिया भर के समाजों को जीविका, आर्थिक स्थिरता और सांस्कृतिक विरासत प्रदान करती है, जिसने इसे जीवन-आधारित प्रणाली से दुनिया के सबसे बड़े कृषि उत्पादकों में से एक में बदल दिया है। कृषि क्षेत्र को जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि और तकनीकी सुधार, जैसी चुनौतियों और अवसरों दोनों का सामना करना पड़ता है। खाद्य सुरक्षा, आर्थिक समृद्धि और पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए, कृषि विकास में नवीन दृष्टिकोण तलाशना आवश्यक है। भारत में कृषि के विकास को कृषि पद्धतियों में परिवर्तन और उत्थान के आधार पर विभिन्न कालखंडों में विभाजित किया जा सकता है। इन कालखंडों में प्राचीन काल, मध्यकाल, औपनिवेशिक काल और आधुनिक काल शामिल हैं। प्रत्येक अवधि में विभिन्न कृषि तकनीकों, प्रौद्योगिकियों और प्रणालियों को अपनाया एवं विकसित किया गया, जिससे भारत में कृषि की वृद्धि और विकास हुआ।

सारणी 1: स्वंतंत्रता पुर्व भारतीय कृषि की विकास यात्रा

क्रम संख्या	विभिन्न काल खंड	समय अवधि	विशेषताये
1	सिंधु घाटी सभ्यता	3300-1300 ईसा पूर्व	कृषि का प्रारंभिक साक्ष्य सिंधु घाटी सभ्यता से मिलता है, जिसमें सिंचाई, जुताई और फसल भंडारण सहित उन्नत कृषि पद्धतियाँ थीं। वे गेहूं, जौ और कपास जैसी फसलों की खेती करते थे।
2	वैदिक काल	1500-500 ईसा पूर्व	वैदिक काल के दौरान, कृषि का धार्मिक प्रथाओं और अनुष्ठानों से गहरा संबंध था। वैदिक ग्रंथों में विभिन्न कृषि पद्धतियों का उल्लेख है, जिनमें लोहे के हल का उपयोग और मानसूनी वर्षा का महत्व शामिल है।
3	मौर्य और गुप्त साम्राज्य	322 ईसा पूर्व-550 ईस्वी	मौर्य साम्राज्य में बड़े पैमाने पर सिंचाई परियोजनाओं की शुरूआत के साथ कृषि में सुधार देखा गया। कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र कृषि पद्धतियों और भूमि प्रबंधन पर विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। गुप्त साम्राज्य में कृषि में प्रगति देखी गई, जिसमें बेहतर सिंचाई तकनीक और विभिन्न फसलों और उर्वरकों का उपयोग शामिल था।
4	दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य	600-1500 ई.	मध्यकाल में नई फसलों और बेहतर सिंचाई तकनीकों की शुरूआत के कारण कृषि का विस्तार देखा गया। मुगलों, विशेष रूप से अकबर ने, विभिन्न कृषि सुधारों को लागू किया, जिनमें भूमि राजस्व प्रणाली और गन्ना और कपास जैसी नकदी फसलों को बढ़ावा देना शामिल था।
5	ब्रिटिश औपनिवेशिक काल	1600-1947 ई.	प्रारंभिक ब्रिटिश शासन: अंग्रेजों ने चाय, कॉफी और नील जैसी व्यावसायिक फसलें शुरू कीं। हालाँकि, उनकी नीतियों के कारण अक्सर भारतीय किसानों का शोषण होता था और स्थानीय उपभोग के लिए खाद्य फसलों के बजाय निर्यात के लिए नकदी फसलों पर ध्यान केंद्रित किया जाता था। अंग्रेजों ने जमींदारी प्रणाली और अन्य भू-राजस्व प्रणालियाँ शुरू कीं, जिसने पारंपरिक कृषि पद्धतियों को बदल दिया और किसानों के बीच बड़े पैमाने पर भूमि हस्तांतरण और ऋणग्रस्तता को जन्म दिया।

स्वतंत्रता के बाद का युग (1947-वर्तमान)

स्वतंत्रता के बाद भारत ने कृषि क्षेत्र में बहुत विकास किया है। इस समय यह दुनिया में चीन के बाद दूसरा सबसे बडा कृषि उत्पादक देश है। चाहे खाद्यन्न हो या फल-सब्जी; दूध हो या मीट-मछली हर क्षेत्र में पैदावार में क्रंति आयी है। कुछ प्रमुख विशेषताएं जो स्वतंत्रता के बाद के कृषि युग को दर्शाती है, निम्लिखित हैं:

1. **भूमि सुधार:** स्वतंत्रता के बाद, भारत ने भूमि का पुनर्वितरण और कृषि उत्पादकता में सुधार लाने के उद्देश्य से भूमि सुधार किये। इन सुधारों में जमींदारी उन्मूलन और किरायेदारी सुधार जैसे उपाय शामिल थे।

2. **कृषि नीतियां:** सरकार ने कृषि को समर्थन देने के लिए विभिन्न नीतियां लागू की हैं, जिनमें उर्वरकों के लिए सब्सिडी, सिंचाई परियोजनाएं, न्युनतम समर्थन मुल्य और ग्रामीण विकास कार्यक्रम शामिल हैं।

3. **आधुनिकीकरण:** सटीक खेती, उन्नत फसल किस्मों और बेहतर सिंचाई विधियों जैसी प्रौद्योगिकी को अपनाने के माध्यम से कृषि को आधुनिक बनाने पर जोर दिया गया है। हालाँकि, जलवायु परिवर्तन, पानी की कमी और मिट्टी के क्षरण जैसी चुनौतियाँ इस क्षेत्र को प्रभावित कर रही हैं।

4. **हरित क्रांति (1960-1970):** हरित क्रांति ने फसलों की अधिक उपज देने वाली किस्मों, रासायनिक उर्वरकों और सिंचाई तकनीकों की शुरुआत की, जिससे कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, खासकर गेहूं और चावल में।

भारतीय कृषि में तकनीकी परिवर्तन

हरित क्रांति

विश्व में हरित क्रांति का श्रेय आमतौर पर नॉर्मन बोरलॉग को दिया जाता है। वह एक अमेरिकी कृषि विज्ञानी और मानवतावादी व्यक्ति थे जिन्होंने 20वीं सदी के मध्य में कृषि पद्धतियों को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके काम का विशेष रूप से विकासशील देशों में खाद्य उत्पादन बढ़ाने और भूख को कम करने पर गहरा प्रभाव पड़ा। हरित क्रांति महत्वपूर्ण कृषि उन्नति का दौर था जो 1940 के दशक में शुरू हुआ और 1960 और 1970 के दशक तक जारी रहा, जिसमें फसल उत्पादन और कृषि दक्षता में बड़ी वृद्धि हुई।

प्रारंभिक शोध (1940-1950): हरित क्रांति की जड़ें 20वीं सदी की शुरुआत की वैज्ञानिक प्रगति में थीं, लेकिन मेक्सिको में प्रमुख फसलों की रोग प्रतिरोधी उच्च उपज देने वाली गेहूं की किस्मों (संकर बीज) के विकास के साथ इसे गति मिली। 1960 के दशक में हरित क्रांति ने भारतीय कृषि के लिए एक मुख्य भूमिका निभाया है, जिसमें उन्नत उपज देने वाली किस्मों (संकर बीज)के बीज, रासायनिक उर्वरक और उन्नत सिंचाई तकनीकों की पहल की गई। इन नवाचारों से मुख्यतौर पर पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में खाद्यान्न उत्पादन में उत्कृष्ट वृद्धि हुई। जिससे हरित क्रांति को सफलता मिली। हरित क्रांति की सफलता ने भारत को खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और कृषि को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में स्थापित किया।

अधिक उपज देने वाली किस्मों का परिचय (1960): वर्ष 1960 के दशक में नई फसल किस्मों, विशेष रूप से गेहूं और चावल को व्यापक रूप से अपनाया गया, जो उर्वरकों और सिंचाई के लिए बेहतर प्रतिक्रिया देने के लिए पैदा की गई थीं। फिलीपींस में अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (आईआरआरआई) ने उच्च उपज देने वाली चावल की किस्मों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

विस्तार और वैश्विक प्रसार (1970): हरित क्रांति की तकनीकें और प्रौद्योगिकियां भारत, पाकिस्तान और लैटिन अमेरिका और अफ्रीका के कई हिस्सों सहित अन्य देशों में फैल गई। सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने फंडिंग, अनुसंधान और बुनियादी ढांचे के विकास के माध्यम से इन प्रौद्योगिकियों के प्रसार का समर्थन किया।

कृषि में तकनीकी विकास के विभिन्न चरण

चरण 1: अधिक उपज देने वाली किस्मों (संकर बीज)का परिचय

संकर बीज का विकास: फिलीपींस में अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (आईआरआरआई) और मेक्सिको में अंतर्राष्ट्रीय मक्का और गेहूं सुधार केंद्र (सीआईएमएमवाईटी) ने क्रमशः चावल और गेहूं की नई किस्में विकसित कीं। भारत में इन संकर बीज विशेष रूप से गेहूं और चावल को 1960 के दशक में लाया गया था, जो देश में मुख्य फसलें हैं। इन किस्मों ने पारंपरिक किस्मों की तुलना में प्रति इकाई क्षेत्र में काफी अधिक पैदावार दी, जिससे खाद्य उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। डा. एम एस स्वामीनाथन के नेत्रित्व में भारत देश में भी हरित क्रांति आयी। गेहूं की नई किस्में लरमा रोजो तथा सोनालिका एवम चावल की किस्मे आइ आर 64, जया, रत्ना आदि ने भारत में हरित क्रांति लाने मे प्रमुख भूमिका निभायी।

चरण 2: सिंचाई एवं सिंचाई सुविधा का विस्तार

भारत सरकार ने संकर बीज के लिए पर्याप्त जल आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए नहरों, ट्यूबवेलों और बांधों सहित सिंचाई बुनियादी ढांचे के विस्तार में निवेश किया। जल दक्षता में सुधार और पानी की बर्बादी को कम करने के लिए ड्रिप सिंचाई जैसी नई सिंचाई विधियों को अपनाया गया। इन सुधारों से यह सुनिश्चित हुआ कि किसानों को पूरे मौसम के

दौरान पानी मिले, जिससे फसल की पैदावार अधिक हुई।

चरण 3: उर्वरक उपयोग में वृद्धि

हरित क्रांति के दौरान रासायनिक उर्वरकों का उपयोग नाटकीय रूप से बढ़ गया, जिससे संकर बीज के उत्पादन को बढ़ने और उच्च पैदावार देने के लिए आवश्यक पोषक तत्व मिले। उर्वरकों ने मिट्टी के पोषक तत्वों को फिर से भरने में मदद की, जो संकर बीज की गहन खेती से समाप्त हो गए थे। कुछ में जहां उर्वरकों ने पैदावार बढ़ाने में मदद की, वहीं उनके अत्यधिक उपयोग से मिट्टी का क्षरण हुआ और प्रदूषण वाले क्षेत्र पैदा हुए। इन चिंताओं को दूर करने के लिए जैविक खेती और फसल चक्र जैसी टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा दिया जा रहा है।

चरण 4: बेहतर कीट नियंत्रण

हरित क्रांति में फसलों को कीटों और बीमारियों से बचाने के लिए कीटनाशकों के उपयोग में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई। शोधकर्ताओं ने फसल की ऐसी किस्में विकसित कीं जो कुछ कीटों और बीमारियों के प्रति प्रतिरोधी थीं, जिससे कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो गई। कीटनाशकों के व्यापक उपयोग के कारण पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है, जिसमें जल प्रदूषण और जैव विविधता का नुकसान भी शामिल है। एकीकृत कीट प्रबंधन प्रथाओं का उद्देश्य विभिन्न तरीकों के संयोजन के माध्यम से कीटों को नियंत्रित करना, कीटनाशकों के उपयोग को कम करना और स्थायी कीट प्रबंधन को बढ़ावा देना है।

भारतीय कृषि में विकास

बेहतर कृषि पद्धतियों और तकनीकी प्रगति के कारण भारत का कृषि उत्पादन लगातार बढ़ा है। किसान विभिन्न उपभोक्ता प्राथमिकताओं और बाजार की मांगों को पूरा करते हुए विभिन्न प्रकार की फसलों की खेती कर रहे हैं। अधिक उपज देने वाली किस्मों और आधुनिक कृषि तकनीकों के उपयोग से कृषि उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। बेहतर बुनियादी ढांचे और बाजारों तक पहुंच ने किसानों को अपनी उपज बेहतर कीमतों पर बेचने की सुविधा दी है। सिंचाई, भंडारण और परिवहन में निवेश ने कृषि परिदृश्य को आधुनिक बना दिया है। प्रशिक्षण कार्यक्रम किसानों को उनकी प्रथाओं को बढ़ाने के लिए नए ज्ञान और कौशल से लैस करते हैं। ऋण और बीमा तक पहुंच ने किसानों को अपने खेतों में निवेश करने और जोखिमों का प्रबंधन करने में सक्षम बनाया है। टिकाऊ खेती, फसल विविधीकरण और बाजार संपर्क पर केंद्रित नीतियां विकास को बढ़ावा दे रही हैं

भारतीय कृषि में तकनीकी परिवर्तन के विभिन्न आयाम

1. प्रिसिजन फार्मिंग या सटीक कृषि

सेंसर मिट्टी की नमी, तापमान और पोषक तत्वों के स्तर पर डेटा एकत्र कर सकते हैं, जिससे सटीक उर्वरक और पानी का उपयोग संभव हो पाता है। ड्रोन का उपयोग हवाई निगरानी, फसल स्वास्थ्य मूल्यांकन और लक्षित कीटनाशक छिड़काव, रासायनिक उपयोग को कम करने और दक्षता में सुधार के लिए किया जाता है। डेटा विश्लेषण किसानों को संसाधन उपयोग को अनुकूलित करने, फसल की पैदावार की भविष्यवाणी करने और वास्तविक समय के डेटा के आधार पर सूचित और सटीक निर्णय लेने में मदद करता है। सेंसर और डेटा एनालिटिक्स किसानों को संसाधन उपयोग को अनुकूलित करने में मदद करते हैं, जिससे उपज अधिक होती है और लागत कम होती है। स्मार्ट सिंचाई या स्वचालित सिंचाई प्रणालियाँ पानी का संरक्षण करती हैं और सुनिश्चित करती हैं कि फसलों को इष्टतम जलयोजन प्राप्त हो। कृषि रोबोटों का उपयोग रोपण, कटाई और कीट नियंत्रण, दक्षता में सुधार और श्रम लागत को कम करने जैसे कार्यों के लिए किया जा रहा है। मौसम-आधारित नियंत्रक (ईटी नियंत्रक) सिस्टम वाष्पीकरण दर की गणना करने और तदनुसार सिंचाई को समायोजित करने और सटीक पानी सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय मौसम डेटा का उपयोग करते हैं। मृदा नमी सेंसर सीधे जड़ क्षेत्र में मिट्टी की नमी के स्तर को मापते हैं और डेटा के आधार पर पानी की मात्रा को समायोजित करते हैं।

2. कृषि में सूचना प्रौद्योगिकी

मोबाइल ऐप किसानों को वास्तविक समय की बाजार जानकारी, मौसम पूर्वानुमान और कृषि सलाह तक पहुंच प्रदान करते हैं, जिससे उन्हें सूचित निर्णय लेने में मदद मिलती है। ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म किसानों को खरीदारों से सीधे जुड़ने, बिचौलियों को खत्म करने और बाजार पहुंच में सुधार करने में सक्षम बनाते हैं। ऑनलाइन प्रशिक्षण से किसान अपने ज्ञान और कौशल में सुधार करते हुए विभिन्न कृषि पद्धतियों पर प्रशिक्षण संसाधनों और पाठ्यक्रमों तक पहुंच सकते हैं। मोबाइल ऐप और ई-एनएएम (राष्ट्रीय कृषि बाजार) जैसे ऑनलाइन प्लेटफॉर्म ने किसानों को अपनी उपज को सही समय पर और उचित मूल्य पर सीधे खरीदारों को बेचने में सुलभ और सक्षम बनाया है, जिससे की बिचौलियों की भूमिका कम हो गई है और बेहतर कीमतें सुनिश्चित हुई हैं। इसके अतिरिक्त, कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) और तकनिकी लर्निंग का उपयोग कर फसल की पैदावार की भविष्यवाणी करने, आपूर्ति श्रृंखलाओं को अनुकूलित

करने और जोखिमों को अधिक प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने में मदद कर रहा है।

3. कृषि में जैव प्रौद्योगिकी

आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलें (जीएमओ) कीट प्रतिरोध, शाकनाशी सहिष्णुता और बढ़ी हुई उपज क्षमता प्रदान करते हैं, लेकिन उनका अपनाना विवादास्पद बना हुआ है। जैव उर्वरक मिट्टी की उर्वरता बढ़ाते हैं और सिंथेटिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करते हैं, जिससे टिकाऊ कृषि में योगदान मिलता है। प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त जैव कीटनाशक सिंथेटिक कीटनाशकों का एक सुरक्षित विकल्प प्रदान करते हैं, जिससे पर्यावरणीय प्रभाव कम होता है।

4. शिक्षण, प्रशिक्षण और कृषि विस्तार की भूमिका

कृषि शिक्षा और प्रशिक्षण में सुधार यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि किसानों के पास नई प्रौद्योगिकियों को अपनाने के लिए आवश्यक कौशल हों। प्रौद्योगिकी अपनाने पर तकनीकी सहायता और मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए किसान विस्तार सेवाओं को मजबूत करना आवश्यक है। साथ ही किसानों के बीच डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना डिजिटल विभाजन को पाटने और उन्हें प्रौद्योगिकी का पूरी तरह से उपयोग करने में सक्षम बनाने के लिए महत्वपूर्ण है।

5. उत्पादकता पर प्रौद्योगिकी का प्रभाव

सटीक कृषि तकनीकों और उन्नत फसल की किस्मों से फसल की पैदावार अधिक होती है, जिससे किसानों की आय बढ़ती है। प्रौद्योगिकी किसानों को संसाधनों के उपयोग को अनुकूलित करने, इनपुट, श्रम और फसल के बाद के नुकसान से जुड़ी लागत को कम करने में मदद करती है। प्रौद्योगिकी किसानों को उच्च गुणवत्ता वाली फसलें पैदा करने, बाजार की मांग को पूरा करने और बेहतर कीमतें प्राप्त करने में सक्षम बनाती है।

भारतीय किसानों पर प्रौद्योगिकी का प्रभाव

हाल के समय में, विभिन्न क्षेत्रों और फसलों में सफलता की अलग-अलग डिग्री के साथ, कृषि क्षेत्र में विकास जारी रहा है। कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय (2022) के अनुसार, भारत दूध, दालों और मसालों का दुनिया का सबसे बड़ा उत्पादक देश है, जबकि चावल, गेहूं, फलों और सब्जियों के उत्पादन में भारत पूरे विश्व भर में दूसरे स्थान पर है। इस वृद्धि को राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एनएफएसएम) और प्रधान मंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) जैसी उचित सरकारी नीतियों द्वारा समर्थित किया गया है, जिसका उद्देश्य उत्पादकता बढ़ाना, जल उपयोग दक्षता में सुधार करना और किसानों की आय में वृद्धि करना है।

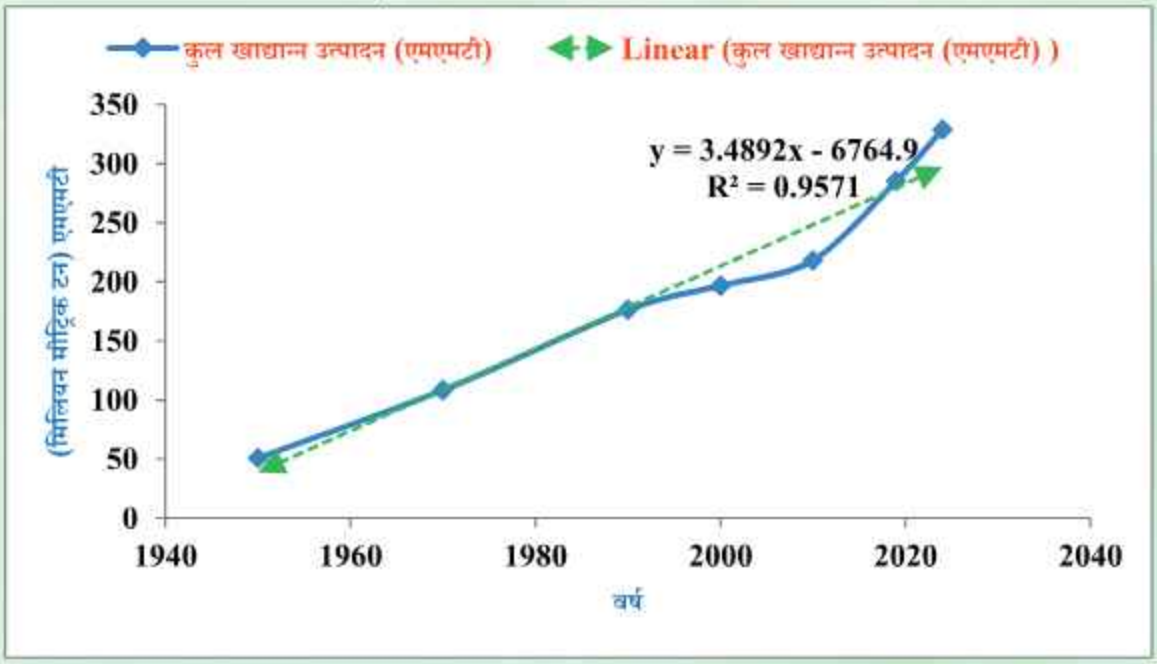

तकनीकी उन्नति ने भारतीय कृषि के आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रमुख नवाचारों में से सबसे महत्वपुर्ण उचित कृषि तकनीकों को अपनाना है। इनमें फसल स्वास्थ्य की निगरानी, इनपुट उपयोग को अनुकूलित करने और संसाधनों को अधिक कुशलता से प्रबंधित करने के लिए भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस), रिमोट सेंसिंग और ड्रोन का उपयोग शामिल है। कृषि में विभिन्य तकनीक का उपयोग पर्यावरणीय प्रभाव को कम करते हुए पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि करने में सक्षम है। तकनीकी प्रोनत्ति का एक अन्य क्षेत्र जलवायु-लचीली फसल किस्मों का विकास और प्रसार है। जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादकता के लिए बढ़ते खतरे को देखते हुए, भारतीय

शोधकर्ताओं और संस्थानों ने ऐसी फसलों के प्रजनन पर ध्यान केंद्रित किया है जो अत्यधिक मौसम की स्थिति का सामना कर सकें, जैसे कि सूखा-सहिष्णु चावल और गर्मी प्रतिरोधी गेहूं। बदलते जलवायु पैटर्न के सामने खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए ये नवाचार महत्वपूर्ण हैं। प्रौद्योगिकी शारीरिक श्रम को कम करती है, संसाधन प्रबंधन में सुधार करती है और समग्र उत्पादकता को बढ़ाती है। डेटा-संचालित अंतर्दृष्टि किसानों को रोपण, कटाई और विपणन के बारे में सूचित विकल्प चुनने में सशक्त बनाती है। अधिक पैदावार और कम लागत किसानों के लिए बेहतर लाभप्रदता में तब्दील हो जाती है।

सारणी 2: वर्ष 1947 से 2024 तक भारत का वार्षिक कुल खाद्य उत्पादन

समयावधि	खाद्य उत्पादन में बढोतरी
1947-1950	स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती वर्षों में, भारत को भोजन की भारी कमी का सामना करना पड़ा। 1950-51 में कुल खाद्यान्न उत्पादन लगभग 50.82 मिलियन मीट्रिक टन (एमएमटी) था।
1960-1970	1960 के दशक के अंत में हरित क्रांति शुरू हुई, जिसमें उच्च उपज वाले विभिन्न प्रकार के बीज, उर्वरक और सिंचाई सुधार शामिल थे, जिससे उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। 1970 तक खाद्यान्न उत्पादन लगभग 108.42 एमएमटी तक पहुंच गया।
1980-1990	निरंतर कृषि प्रगति के कारण उत्पादन में और वृद्धि हुई। 1990-91 में खाद्यान्न उत्पादन लगभग 176.39 एमएमटी था।
1990-2000	तकनीकी प्रगति और नीति सुधारों ने निरंतर विकास किया। 2000-01 तक, उत्पादन लगभग 196.81 एमएमटी था।
2010-2020	उत्पादन में वृद्धि जारी रही, 2010-11 में लगभग 244.49 एमएमटी और 2018-19 में 285.21 एमएमटी तक पहुंच गया।
2020 से वर्तमान	हालिया डेटा 2023-24 के लिए अनुमानित उत्पादन 328.85 एमएमटी के साथ लगातार वृद्धि का संकेत देता है, जो बेहतर कृषि पद्धतियों और अनुकूल मौसम स्थितियों के प्रभाव को दर्शाता है।

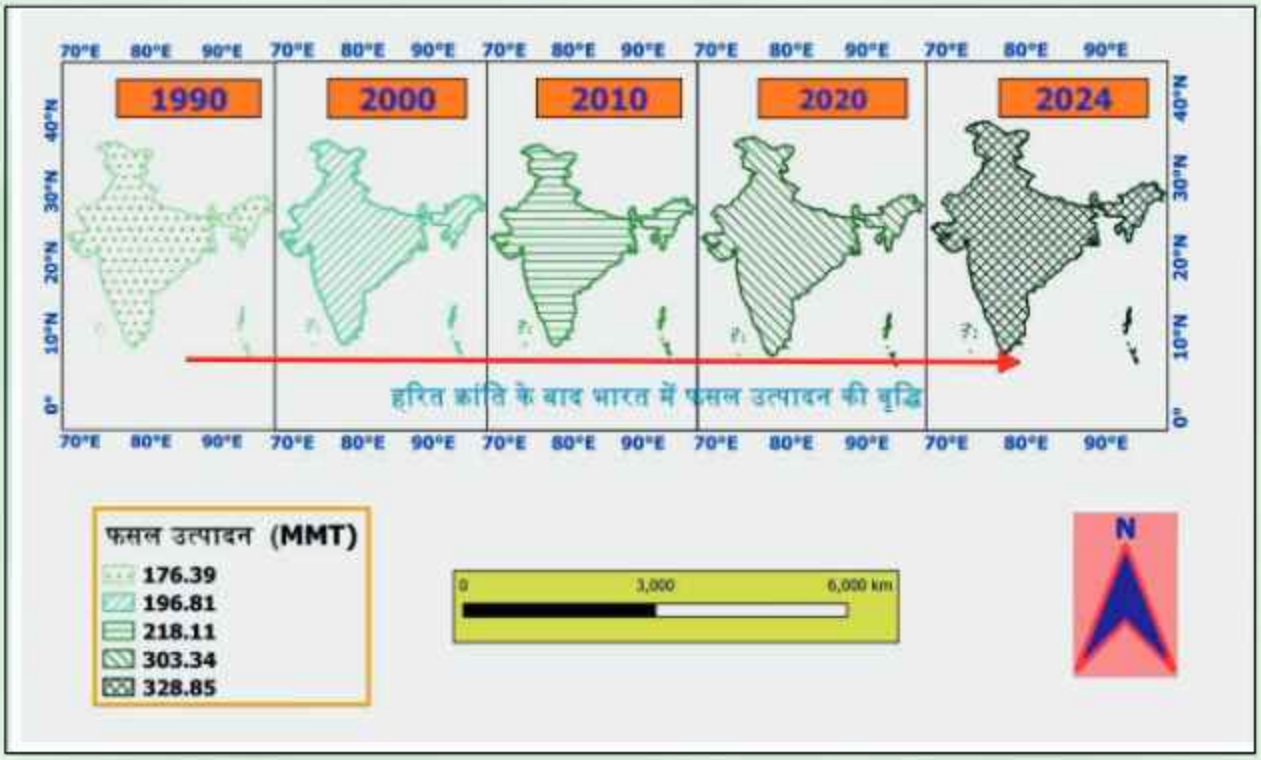

चित्र: भारतीय खाद्य उत्पादन में दशकीय विकास

भारतीय कृषि का भविष्य

इन उपलब्धियों के बावजूद, भारतीय कृषि को अभी भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिनमें खंडित भूमि जोत, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा और छोटे किसानों के लिए ऋण और प्रौद्योगिकी तक सीमित पहुंच शामिल है। कोविड-19 महामारी ने कृषि आपूर्ति श्रृंखला में कमजोरियों को भी उजागर किया है, जिससे डिजिटल बुनियादी ढांचे और ग्रामीण विकास में और निवेश की आवश्यकता पर बल दिया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित इंटरनेट कनेक्टिविटी और प्रौद्योगिकी की सामर्थ्य। यह सुनिश्चित करने के लिए प्रशिक्षण और शिक्षा आवश्यक है तकि किसान नई तकनीकों का प्रभावी ढंग से उपयोग कर सकें। निर्बाध प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए विश्वसनीय बिजली और मजबूत संचार बुनियादी ढाँचा महत्वपूर्ण हैं।

दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए जैविक खेती, जल संरक्षण और जलवायु-स्मार्ट कृषि पर ध्यान देना होगा। किसानों को उपभोक्ताओं से जोड़ने, उचित मूल्य और बाजार पहुंच सुनिश्चित करने के लिए मजबूत मूल्य श्रृंखला विकसित करना जरूरी है। कृषि सेवा के लिए ई-कॉमर्स, बाज़ार सूचना, डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म आदि का ज्यादा से ज्यादा उप्योग भी आवश्यक है। किसान सहकारी समितियों को मजबूत करना और उनकी आर्थिक भलाई को बढ़ाने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना एक महत्वपुर्न कदम होगा। आधुनिक मशीनरी लागत को कम करने और दक्षता में सुधार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। फसल प्रबंधन के बारे में अधिक जानकारी पूर्ण निर्णय लेने के लिए डेटा एनालिटिक्स और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग किया जाएगा। जैव प्रौद्योगिकी फसल की किस्मों में नवाचार को बढ़ावा देना जारी रखेगी, जिससे उपज और लचीलापन में वृद्धि होगी। भारतीय कृषि की निरंतर वृद्धि और विकास लक्षित नीतिगत हस्तक्षेपों और अनुसंधान और विकास में निवेश में वृद्धि के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान करने पर निर्भर करेगा। दीर्घकालिक पर्यावरणीय और आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए जैविक खेती और एकीकृत कीट प्रबंधन जैसी टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देना भी महत्वपूर्ण होगा।

निष्कर्ष

भारतीय कृषि की वृद्धि और तकनीकी प्रोनत्ति ने इस क्षेत्र को देश की अर्थव्यवस्था की आधारशिला में बदलने में अहम भूमिका निभाई है। हरित क्रांति से लेकर सटीक खेती और डिजिटल तकनिकी को अपनाने तक, भारतीय कृषि ने उत्पादकता और स्थिरता में सुधार करने में उचित बदलाव की है। हालाँकि, अपनी क्षमता का पूरी तरह से एहसास करने के लिए, इस क्षेत्र को लगातार चुनौतियों जैसे जलवायु परिवर्तन, जल की कमी, मिट्टि की घटती गुन्नवत्ता आदि से पार पाना होगा और उभरती पर्यावरणीय और आर्थिक स्थितियों के जवाब में नवाचार करना जारी रखना होगा। भारतीय कृषि में बदलाव के लिए सहयोगात्मक प्रयास की आवश्यकता है। नवाचार को बढ़ावा देकर, बुनियादी ढांचे में निवेश करके और किसानों का समर्थन करके, भारत अपनी कृषि क्षमता का दोहन कर सकता है और एक समृद्ध भविष्य सुनिश्चित कर सकता है।

***

लैबियो गोनियस की जीवन-अवस्था के अनुसार पालन-पोषण पद्धतियाँ

सुरेंद्र कुमार अहिरवाल, जसप्रीत सिंह, कमल शर्मा, तारकेश्वर कुमार, राकेश कुमार, विवेकानंद भारती, अमरेन्द्र कुमार एवं उमेश कुमार मिश्र
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

परिचय

लेबियोगोनियस को पूर्वी भारत में एक महत्वपूर्ण जलीय कृषि प्रजाति माना जाता है, जहाँ इसका उपयोग बहुसंस्कृति प्रणाली में मृगल को बदलने के लिए किया जाता है। यह एक शाकाहारी मछली है, जो मुख्य रूप से शैवाल, हरी घास और डूबे हुए खरपतवारों को खाती है। स्थानीय बाजार में इसकी पूरी आपूर्ति नदी और आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्रों के माध्यम से पूरी की जाती है। इसकी बाजार में उचित मांग है और इसके स्वादिष्ट स्वाद के कारण इसकी कीमत (₹250-350/किग्रा) अधिक है। अपनी खाद्य प्राथमिकताओं और कठोर प्रकृति के कारण, एल. गोनियस को राज्य के मौसमी और निचले भूमि जल निकायों में मोनोकल्चर और पॉलीकल्चर सिस्टम के लिए संभावित उम्मीदवार प्रजाति के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

प्रजनन कार्यक्रम के लिए एक साल की मछलियों की बजाय दो साल से अधिक उम्र की मछलियों को प्राथमिकता दी जाती है। लेबियो गोनियस विषमलैंगिक है, और नर और मादा के लिए यौन भेदभाव केवल प्रजनन के मौसम के दौरान द्वितीयक यौन लक्षणों की उपस्थिति के कारण संभव है। मादा में लाल से गुलाबी रंग के साथ उत्तल आकार में एक छिद्र होता है, चिकना और फिसलन वाला पेक्टोरल पंख, दोनों तरफ उभरा हुआ पेट और वेंट के पास हल्का दबाव अंडे को बाहर निकाल देगा (चित्र 1), जबकि नर में अवतल आकार का एक छिद्र होता है जो आमतौर पर सफेद रंग का होता है, पेक्टोरल पंख अपेक्षाकृत लंबा और खुरदरा होता है, पेट गोल होता है और वेंट के पास हल्का दबाव दूधिया सफेद दूध बाहर निकल जाता है (चित्र 2)। लैबियो गोनियस दूसरे वर्ष के अंत में परिपक्वता प्राप्त करता है, जब नर के लिए इसका औसत वजन और लंबाई क्रमशः 248.48 ग्राम और 28.21 से.मी. होती है, जबकि मादा के लिए यह 392.80 ग्राम और 30.89 से.मी. होती है।

चित्र 1. भारतीय लघु कार्प लेबियो गोनियस की मादा

चित्र 2. भारतीय लघु कार्प लेबियो गोनियस का नर

कृत्रिम प्रजनन

मछली हार्मोन (WOVA-FH या OVAFISH) को इंट्रामस्क्युलर (पृष्ठीय पंख के आधार या पार्श्व रेखा के ऊपर) या इंट्रापेरिटोनियल (पेक्टोरल या पेल्विक पंख के आधार) मार्ग के माध्यम से दिया जाता है, जिसमें मादाओं के लिए 0.7-0.8 मिली/किग्रा और नरों के लिए 0.3-0.4 मिली/किग्रा की दर से एकल खुराक दी जाती है, और उसके बाद हार्मोन ब्रूड मछली को स्पॉनिंग टैंक में छोड़ दिया जाता है और स्पॉनिंग 10 से 12 घंटों के बीच होती है। स्पॉनिंग टैंक से एकत्रित निषेचित अंडों को एक गोलाकार ऊष्मायन कक्ष (circular incubation chamber) में 72 घंटों के लिए रखा जाता है। ऊष्मायन के 14 से 16 घंटे के बाद अंडों से मछली के लार्वा निकलते हैं। लार्वा का आकार 5.2 से 6.8 मिमी और और वजन क्रमशः 1.5 से 2.0 मिलीग्राम तक होता है। छोटे जल निकाय या आयताकार सीमेंट वाले टैंक या मिट्टी के तालाब जिनका क्षेत्रफल 0.02 से 0.10 हेक्टेयर (200-1000 वर्ग मी.) और 1 से 1.5 मी. की गहराई हो, को स्पॉन पालन के लिए प्राथमिकता दी जाती है। अण्डों के फूटने के तीन दिन बाद, स्पॉन को सुबह के समय नर्सरी तालाब में स्थानांतरित कर दिया जाता है, तथा स्पॉन का अनुशंसित भंडारण घनत्व 3 से 5 मिलियन/हेक्टेयरहोता है। स्पॉन पालन 25 से 30 दिनों के लिए किया जा सकता है भोजन केतोर पर, सरसों की खली और चावल की भूसी का 1:1 अनुपात में बारीक चूर्ण मिश्रण पूरक आहार के रूप में पहले पांच दिनों के लिए 600 ग्राम/एक लाख स्पॉन/दिन तथा बाद के दिनों के लिए 1.5 किग्रा/एक लाख स्पॉन/दिन की दर से दो बराबर किस्तों में सुबह और शाम को दिया जाता है।

फ्राई से वयस्क तक का पालन-पोषण

मध्यम आकार का मिट्टी का तालाब फ्राई पालन के लिए आदर्श माना जाता है। तालाब में उर्वरीकरण हेतु 10-12 टन/हेक्टेयर की दर से कच्चे गाय के गोबर का प्रयोग किया जाता है। उपरोक्त मात्रा का एक तिहाई हिस्सा फ्राइज़ के स्टॉकिंग से 14 दिन पहले दिया जाता है, और बाकी की मात्रा को 15-दिन के अंतराल पर विभाजित खुराकों में इस्तेमाल किया जाता है। फ्राइज़ का इष्टतम स्टॉकिंग घनत्व 2 से 3 लाख / हेक्टेयर होताहै। फ्राइज़ पालन को 120 दिनों तक किया जा सकता है, जिससे वांछित आकार के फिंगरलिंग्स (80-90 मिमी, 8-8.5 ग्राम) प्राप्त किए जा सकते हैं, तथा इष्टतम पालन स्थितियों के तहत 91-96% जीवित रहने की संभावना होती है। भोजन के तौर पर, सरसों की खली और चावल की भूसी का 1:1 अनुपात में बारीक चूर्णित मिश्रण पहले 30 दिनों के लिए भंडारित फ्राई बायोमास के 10-12% की दर से पूरक आहार के रूप में प्रदान किया जाता है, जिसे बाद के तीन महीनों के दौरान घटाकर 8-10%, 6-8% और 4-6% तक कर दिया जाता है। युवा मछलियों के उत्पादन के लिए फिंगरलिंग का औसत वजन 9.85 ग्राम होता है, तथा इष्टतम भंडारण घनत्व लगभग 0.1 से 0.3 लाख/हेक्टेयर बनाए रखा जाता है।सरसों के तेल की खली और चावल की भूसी का 1:1 अनुपात में बारीक चूर्ण मिश्रण, भंडारित फिंगरलिंग बायोमास के 5 से 10% की दर से पूरक आहार के रूप में प्रदान किया जाता है। पालन-पोषण की अवधि के अंत में, किशोरों का वजन 29.71 से 35.97 ग्राम हो जाता है और इष्टतम पालन-पोषण की स्थिति में 90-95% जीवित रहते हैं। वयस्कों को तैयार करने के लिए तीन महीने तक आयताकार सीमेंटेड टैंक में किशोर पालन किया जाता है। स्टॉकिंग के समय किशोर का औसत वजन 36.37 ग्राम, और इष्टतम स्टॉकिंग घनत्व लगभग 0.1 से 0.3 लाख / हेक्टेयर पर बनाए रखा जाता है। सरसों के तेल की खली और चावल की भूसी का 1:1 अनुपात में बारीक चूर्ण मिश्रण, भंडारित फिंगरलिंग बायोमास के 5 से 10% की दर से पूरक आहार के रूप में प्रदान किया जाता है। पालन-पोषण की अवधि के अंत में, किशोरों का वजन 99.06 से 119.43 ग्राम हो जाता है और इष्टतम पालन-पोषण की स्थिति में 92-96% जीवित रहते हैं।

निष्कर्ष

लैबियो गोनियस एक मध्यम आकार की कार्प है जिसे आमतौर पर कुरिया लैबियो के नाम से जाना जाता है। यह मौसमी जल निकायों में पालन के लिए आदर्श प्रजाति मानी जाती है, जिसमें 4-6 महीने तक की जल धारण क्षमता होती है। एक शाकाहारी बॉटम फीडर को कम्पोजिट या पॉलीकल्चर सिस्टम में बॉटम फीडर के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। हालांकि, इस क्षेत्र में इस प्रजाति का व्यावसायिक जलीय कृषि उत्पादन नहीं हो रहा है, क्योंकि गुणवत्ता वाले बीजों की अनुपलब्धता है तथा मत्स्यपालकों में जलीय कृषि प्रणाली में इस मछली की खेती की संभावनाओं के बारे में जागरूकता का अभाव है। इसलिए, हमने फ्राई से लेकर ब्रूडस्टॉक जीवन स्तर तक प्रजातियों पर आधारभूत जानकारी स्थापित की है, जिससे मछली किसानों, हितधारकों, राज्य के अधिकारियों, शोधकर्ताओं और नीति योजनाकारों को वाणिज्यिक जलीय कृषि प्रणाली में प्रजातियों को अपनाने और बढ़ावा देने में लाभ होगा।

***

खेसारी साग: धान-परती भूमि में किसानों के लिए टिकाऊ और लाभकारी विकल्प

कुमारी शुभा, ए.के. चौधरी, अनिर्बन मुखर्जी, मनीषा टम्टा, शिवानी, उमेश कुमार मिश्र, राकेश कुमार, संजीव कुमार एवं अनुप दास
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

1. परिचय

भारत में धान की खेती के बाद खेत अक्सर खाली रह जाते हैं। इस परती भूमि का उपयोग करके किसान खेसारी साग उगा सकते हैं, जो न केवल पोषण से भरपूर है बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी लाभकारी है। इसे "बीमा फसल" के रूप में व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त है क्योंकि यह कठिन परिस्थितियों में भी उग सकती है, जिससे गरीब किसानों को आर्थिक, सामाजिक और पोषण सुरक्षा मिलती है। यह बहुमुखी फसल अपने अनुकूलन क्षमता के कारण अत्यधिक पर्यावरणीय परिस्थितियों में भी जीवित रह सकती है, जिसमें ठंड और गर्मी की लहरें, जलमग्नता, अत्यधिक वर्षा, लवणीय मिट्टी, और पोषक तत्वों की कमी या भारी धातुओं से प्रदूषित पर्यावरण शामिल हैं। चरम परिस्थितियों में, खेसारी मानवता के लिए एकमात्र उपलब्ध ऊर्जा स्रोत के रूप में काम कर सकती है।

खेसारी दक्षिण एशियाई देशों में, विशेषकर भारत में, एक लोकप्रिय फसल है, जिसे अनाज और चारे दोनों के लिए उगाया जाता है। हालांकि, भारत के पूर्वी क्षेत्र में खेसारी की एक अनूठी प्रथा है जहाँ इसके कोमल तना, पत्तियाँ और कोमल फलियाँ सब्जी के रूप में खाई जाती हैं (चित्र 1)। इन हिस्सों को अक्सर अन्य सर्दी की साग के साथ मिलाकर स्थानीय लोगों द्वारा खाया जाता है। इसके अतिरिक्त, पूर्वी भारत में किसान खेसारी की खेती के लिए एक दोहरे उद्देश्य की विधि अपनाते हैं। वे उगने के प्रारंभिक चरण में कोमल तना और पत्तियों को हरी पत्तेदार सब्जियों के रूप में सेवन और बिक्री के लिए लगाते हैं।

2. खेसारी साग के फायदे

i. पोषक तत्व

खेसारी की पोषण संबंधी संरचना खेत मटर और फाबा बीन्स के समान है, जिसमें कम वसा और उच्च स्टार्च सामग्री होती है। इसकी प्रोटीन सामग्री 25–27% होती है, जो खेत मटर और फाबा बीन्स से अधिक है, लेकिन सोयाबीन से कम है। अमीनो एसिड की मात्रा भी अन्य फसलों के समान है, जिसमें लिसिन नामक अमीनो एसिड की मात्रा अधिक होती है और सल्फर अमीनो एसिड की कमी होती है। मानव उपभोग के लिए खेसारी अत्यंत उपयुक्त है क्योंकि इसमें 58% वसा अम्ल पॉलीअनसैचुरेटेड होते हैं। इसके अलावा, इसमें फाइबर की मात्रा अधिक होती है, जो पाचन तंत्र के लिए फायदेमंद है और संपूर्ण स्वास्थ्य को सुधारने में मदद करता है।

ii. मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने का प्राकृतिक समाधान:

खेसारी साग एक नाइट्रोजन स्थिरीकरण पौधा है, जो मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह पौधा वायुमंडलीय नाइट्रोजन को अवशोषित करके मिट्टी में जमा करता है, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है और अगले फसल के लिए मिट्टी तैयार होती है। इसके अलावा, खेसारी साग की जड़ें मिट्टी को ढीला करती हैं, जिससे पानी और पोषक तत्वों का अवशोषण बेहतर होता है। इस प्रकार, खेसारी साग की खेती से मिट्टी की उर्वरता में सुधार होता है और भविष्य की फसलों के लिए लाभकारी स्थिति तैयार होती है। खेसारी साग की खेती विभिन्न क्षेत्रों में विविध और कम संसाधन-प्रधान कृषि प्रणालियों के हिस्से के रूप में की जाती रही है, जिससे यह एक लचीला और कम इनपुट वाली फसल बनती है।

iii. कम लागत, अधिक लाभ:

खेसारी साग की खेती की लागत अपेक्षाकृत कम होती है क्योंकि इसे उगाने के लिए ज्यादा खाद, कीटनाशक या पानी की आवश्यकता नहीं होती। इस वजह से उत्पादन की लागत घट जाती है, और कम लागत में उच्च उत्पादन होने के कारण किसानों को अधिक लाभ होता है।

iv. जल संरक्षण:

खेसारी साग की खेती में कम पानी की आवश्यकता होती है, जिससे जल संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान मिलता है। विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां पानी की कमी होती है, इस पौधे की खेती से जल संसाधनों की बचत होती है। इसके अलावा, कम पानी की आवश्यकता के कारण किसानों को सिंचाई के खर्चों में भी बचत होती है।

v. जल्दी उपलब्ध होने वाला सब्जी:

खेसारी साग की फसल आमतौर पर 40-50 दिनों में पक जाती है, इससे किसान जल्दी लाभ प्राप्त कर सकते हैं और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है। इसके अलावा, जल्दी पकने वाली फसल के कारण किसान साल में एक से अधिक फसल उगाकर अपनी आय बढ़ा सकते हैं।

3. वनस्पतिक वर्णन

खेसारी साग के पोधे की लंबाई 45-50 से0 मी0 तक होती हैं। इसका विकास कई शाखाओं के साथ होता है और इसके पतले तने 50 सेंटीमीटर तक ऊंचे हो सकते हैं। इसकी जड़ गहरी और मजबूत होती है, जो इसे स्थिरता प्रदान करती है। पत्तियां घास जैसे होती हैं और विपरीत स्थिति में होती हैं, जिनमें 2 जोड़े पत्रक और एक लता-तंतु होता है। पत्रक बिना डंठल के होते हैं, रेखीय- भाले के आकार आकृति के होते हैं, जिनकी लंबाई 5-7.5 सेंटीमीटर और चौड़ाई 1 सेंटीमीटर होती है। फूल एकल होते हैं और अक्षीय प्ररोह पर उत्पन्न होते हैं। ये फूल विभिन्न रंगों में होते हैं, जैसे चमकदार नीला, लाल-लाल, लाल, गुलाबी, या सफेद। फलियां लंबी, सपाट होती हैं और लगभग 2.5-4.5 सेंटीमीटर लंबी, 0.6-1.0 सेंटीमीटर चौड़ी होती हैं, और इनमें 3-5 बीज होते हैं। फलियां हल्की मुड़ी हुई होती हैं। बीजों का व्यास 4-7 मिमी होता है, ये कोणीय और ट्रैपेज़ॉइडल होते हैं। बीज सामान्यतः सफेद, भूरा-धूसर, या पीले रंग के होते हैं, लेकिन कुछ बीज धब्बेदार या चित्तीदार रूप में भी होते हैं।

4. विषाक्तता और मानव स्वास्थ्य

खेसारी साग में एक एंटी-न्यूट्रिशनल यौगिक ODAP होता है, जो 'लथायरीस्म' नामक बीमारी से जुड़ा है जो जानवरों और इंसानों दोनों को प्रभावित करती है। चूंकि घास मटर आसानी से उगाई जाती है और यह चरम परिस्थितियों, जैसे सूखा और बाढ़, को सहन कर सकती है, यह अक्सर उन फसलों के असफल होने पर भूखमरी से बचने का एकमात्र विकल्प होती है। हालांकि, जब इसे लंबे समय तक आहार का बड़ा हिस्सा बनाया जाता है (जो अक्सर अकाल के दौरान होता है), तो 'लथायरीस्म' स्थायी लकवा और मस्तिष्क की क्षति पैदा कर सकता है। 7 से 15 साल की उम्र के बच्चे विशेष रूप से इसके प्रति संवेदनशील होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय सूखा क्षेत्र कृषि अनुसंधान केंद्र (ICARDA) इथियोपिया के प्रजनकों के साथ मिलकर घास मटर की ऐसी किस्मों का विकास कर रहा है जिनमें न्यूरोटॉक्सिन ODAP की मात्रा कम हो।

5. खेसारी साग की खेती

i. भूमि की तैयारी:

धान की कटाई के बाद खेत की जुताई करके उसे खेसारी साग की बुवाई के लिए तैयार किया जाता है। खेत को अच्छे से साफ कर लेना चाहिए ताकि उसमें कोई अवांछित पौधे न हों। अगर संभव हो तो खेत में जैविक खाद डालकर उसकी उर्वरता बढ़ाई जा सकती है।

ii. बीज की बुवाई:

खेसारी साग के बीज को खेत में बिखेरकर या कतारों में बोया जा सकता है। बीज की मात्रा लगभग 25-30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर होनी चाहिए। बीज की गहराई लगभग 2-3 सेमी होनी चाहिए और बीज बोने के बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए।

iii. सिंचाई और देखभाल:

इसे बहुत कम सिंचाई की आवश्यकता होती है। जरूरत पड़ने पर हल्की सिंचाई की जाती है। फसल के शुरुआती 20-30 दिनों में अच्छी सिंचाई करनी चाहिए ताकि पौधे मजबूत हो सकें। खरपतवार नियंत्रण के लिए समय-समय पर निराई-गुड़ाई करनी चाहिए।

iv. फसल की कटाई:

खेसारी साग की फसल 40-50 दिनों में तैयार हो जाती है। खेसारी दाल के लिए 70-80 दिनो में फसल पकने पर उसे काटकर सुखाना चाहिए और फिर उसकी गहाई करके बीज निकालने चाहिए। काटने के बाद पौधे को पशुओं के चारे के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

5. आर्थिक लाभ:

खेसारी साग की खेती से किसानों को अतिरिक्त आय का स्रोत मिलता है। इसे बाजार में बेचने से उन्हें अच्छी कीमत मिलती है। साथ ही, इसका उपयोग पशुओं के चारे के रूप में भी किया जा सकता है, जिससे पशुपालन में भी लाभ होता है। इससे किसानों को दोहरा लाभ होता है: एक ओर फसल बेचने से आय होती है और दूसरी ओर पशुओं के चारे का खर्च भी कम होता है। खेसारी साग की खेती एक टिकाऊ और लाभकारी विकल्प है, विशेषकर उन किसानों के लिए जो धान की फसल के बाद परती भूमि को उपयोग में लाना चाहते हैं। इससे न केवल उनकी आर्थिक स्थिति सुधरती है बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान होता है।

***

लाइवबेयरर रंगीन मछलियों का प्रजनन एवं प्रबंधन

तारकेश्वर कुमार, कमल शर्मा, सुरेन्द्र कुमार अहिरवाल, विवेकानंद भारती, पंकज कुमार एवं अमरेंद्र कुमार
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

परिचय

लाइवबेयरर (बच्चा देने वाली) मछलियाँ सीधे सूक्ष्म बच्चे को जन्म देती है। इसमें गप्पी, मौली, स्वोर्डटेल और प्लेटी आती हैं। आमतौर पर लाइवबेयरर 4 से 6 महीने के बीच परिपक्व होती हैं। हालाँकि, गप्पी और प्लेटी दो महीने के भीतर भी परिपक्व हो जाती हैं। नर और मादा को आसानी से पहचाना जा सकता है। नर छोटे और चमकीले रंग के आकर्षक होते हैं, जबकि मादा बड़े और हल्के रंग के होते हैं। परिपक्व मादाओं में उभड़ा हुआ पेट होता है और नर में गोनोपोडियम होता है जो गुदा पंख का एक ट्यूब जैसा है।

लाइवबेयरर दो प्रकार के होते है

क. ओवोविविपेरस– इसमें मादा के गर्भाषय में अंडे का निषेचन होता है, परिपक्व निषेचित अंडे गर्भाषय में ही स्फूटित हो जाते है। स्फूटन के बाद माता के उदर से बच्चा बाहर आ जाता हैं।

ख. विविपेरस– इसमें मादा मछली के गर्भाशय में अंडों का निशेचन होता है। निशेचित अंडे गर्भाशय में ही स्फूटित हो जाता है। लेकिन बच्चे गर्भ में गर्भनाल के द्वारा मादा से पोषण प्राप्त करते हैं। मादा के गर्भधारण समय–सीमा के पश्चात् बच्चे गर्भ से बाहर आते हैं।

लइव बेयरर मछली में अंडा गर्भाशय में होता है जहाँ उन्हें निशेचित किया जाता है। इन मछलियों के अण्डे का निशेचन आंतरिक होता है तथा मादा मछली सीधे सूक्ष्म बच्चे को जन्म देती है। इनमें से कुछ मछलियाँ निम्नलिखित हैः–

1. गप्पी

इन मछलियों का जीवन लगभग 18 माह का होता है। यह बच्चों को जन्म देने वाली एक प्रसिद्ध मछली है। इस मछली में नर की लंबाई 3 सेंटीमीटर तथा मादा की लंबाई 5 सेंटीमीटर होती हैं। यह कई रंगों में पाई जाती हैं। इनकी पूँछ छोटी व गोल होती है और शरीर का रंग हल्का भूरा या ओलिव हरा होता हैं। इनको खरीदते समय ये विशेष ध्यान देना चाहिए कि उनका आकार बड़ा हो क्योंकि छोटी मछलियों का रंग पूर्ण रुप से विकसित नहीं होता है। जब ये लगभग 3–4 सेंटीमीटर की हो जाती है तो परिपक्व हो जाती है तथा प्रजनन के लिए 23–35 डिग्री सेल्सियस पानी का तापमान अच्छा होता है तथा इनमें प्रजनन की क्षमता भी अच्छी होती है। यह प्रत्येक 4–6 सप्ताह में 30–50 बच्चे को जन्म देती है। इनके रंग में बहुत भिन्नता पाई जाती है तथा इनके पूँछ अन्य मछलियाँ से भिन्न होती है। इनके पूँछ के आकार पर इन्हें राउण्ड, स्मीथ, फैन, व्हील तथा पिन टेल इत्यादि कहते हैं।

चित्र– 1. गप्पी

2. प्लेटी

यह मछली बहुत ही आकर्षक तथा गोल शरीर वाली होती है जो लगभग 7 सेंटीमीटर की होती है। यह लाल, पीला तथा काले के साथ–साथ कई रंगों में पाई जाती है। यह सामूहिक एक्वेरियम के लिए बहुत ही उत्कृष्ट एवं आसानी से प्रजनित होने वाली मछली है। इसमें नर छोटे और

चित्र–2. प्लेटी

चमकीले रंग वाले होते है। नर मछली का गुदा पंख गोनोपोडियम में विकसित हो जाता है, जो प्रजनन के लिए होने वाला एक छड़ी के आकार का अंग है। प्लैटीज़ में एक बार में 20–50 बच्चे (शिशु मछलियाँ) हो सकते हैं, जो कि महीने में एक बार हो सकता है। जब यह 2.5–3.5 सेंटीमीटर की हो जाती है तो प्रजनन के लिए परिपक्व हो जाती है। इसके प्रजनन के लिए पानी का तापमान 23–25 डिग्री सेल्सियस अनुकूल माना जाता है।

3. स्वार्डटेल

यह मछली प्लेटी जैसी ही होती है लेकिन इसका आकार प्लेटी की तुलना में बडा होता है। स्वार्डटेल की लंबाई 6–16 सेंटीमीटर तक की होती है। यह काफी आक्रामक

चित्र–3. स्वार्डटेल

किस्म की होती है। इसलिए इसे छोटे व धीरे तैरने वाली मछलियों में नहीं डालना चाहिए। ये मछलियाँ एक्वेरियम में बहुत प्रसिद्ध है और ये अनेक रंगों में पाई जाती हैं, जिसमें हरा व लाल रंग प्रमुख है। इसमें नर मछली के पुच्छीय पंख का निचला भाग तलवार की भाँति निकला हुआ होता है इसलिए इसे स्वार्ड टेल के नाम से जाना जाता है। स्वोर्डटेल मछली शौकिया एक्वारिस्ट के लिए प्रजनन हेतु सबसे आसान में से एक है, यदि टैंक की परिस्थितियां उपयुक्त हैं और उसमें नर और मादा दोनों हैं तो प्रजनन बिना किसी हस्तक्षेप के हो जाएगा। नर को मादा से गोनोपोडियम की उपस्थिति से पहचाना जा सकता है, जो एक संशोधित गुदा पंख है जिसका उपयोग प्रजनन के दौरान मादा को गर्भवती करने के लिए किया जाता है। प्रजनन के लिए एक नर पर तीन या चार मादाओं का अनुपात अनुशंसित है। जब ये 6–7 सेंटीमीटर की होती है तो परिपक्व हो जाती है और प्रजनन के लिए तैयार हो जाती है। प्रजनन के लिए पानी का तापमान 22–25 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त हैं। एक्वेरियम में पौधे और अन्य संरचनाएँ जन्म के बाद फ्राई को छिपने के लिए जगह प्रदान करेंगी। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि नवजात फ्राई को अन्य एक्वेरियम निवासी खा जाएँगे यदि उन्हें आश्रय नहीं मिल पाता है।

4. ब्लैक मोली

यह मछली पूर्ण रुप से काले रंग की होती है, लेकिन कभी–कभी इनके रंग में कुछ अंतर पाया जाता है। यह एक सर्वाहारी मछली है एवं ये पौधे के पत्तों से शैवाल को निकालने में सहायता करती है। यह बहुत ही नाजुक स्वभाव की मछली होती है यदि तापमान में थोड़ा सा भी अंतर हुआ तो इसके लिए बहुत हानिकारक होता है। ये एक्वेरियम में रखने के लिए बहुत ही लोकप्रिय मछली है

चित्र–4. ब्लैक मोली

तथा इनका काला रंग इतना गहरा होता है कि इनकी आँख भी दिखाई नहीं देती हैं। इन मछलियों में नर का पृष्ठीय पंख बहुत बड़ा होता है, इसलिए इन्हें सेल–फिन मोलीज कहते हैं। कुछ मछलियों में पुच्छीय पंख अर्द्ध चंद्राकार होते हैं, इन्हें मून टेल ब्लैक मोली कहते हैं। ब्लैक मोली

परिपक्वता और आकार के आधार पर 10–140 जीवित बच्चे पैदा कर सकती है। मादाएं अपने अपेक्षाकृत अल्पकालिक नर साथी की मृत्यु के बाद भी शुक्राणु को लंबे समय तक संग्रहीत कर सकती हैं। इस प्रजाती के लिए गर्भधारण अवधि लगभग तीन से चार सप्ताह का होता है जो तापमान पर निर्भर करता है। एक मादा पूरे वर्ष में कई बार बच्चे को जन्म दे सकती है। जब इनकी लंबाई 6–8 सेंटीमटर की हो जाती हैं तो ये परिपक्व हो जाती है तथा इन्हें प्रजनन कराया जा सकता है। इनके प्रजनन के लिए 25–26 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त होता है।

प्रजनन की प्रक्रिया

एक्वेरियम को पसंद करने वाले लोगों में इन प्रजातियों के प्रति अत्यधिक झुकाव देखा गया है। कुछ लाईव बेयरर मछलियाँ स्वजाति भक्षी होती हैं तथा वे अपने बच्चों को भी खा जाती है। ऐसी अवस्था में बच्चों का बचाव बहुत जरुरी होता है। बच्चों को बचाने के लिए उन्हें सुरक्षित स्थान प्रदान करना चाहिए, इसके लिए या तो एक्वेरियम में पौधे के पत्ते डाल दिए जाते हैं या पिंजरा/छन्नी, डाइड्रिला (जलीय पौधा) आदि एक्वेरियम के बीच में रख दिया जाता है, जो नर व मादा को बच्चों के नजदीक आने से रोकता है। प्रजनन के लिए एक्वेरियम के एक कोने में तैरता हुआ प्लास्टिक का एक पिंजरा या छन्नी डाल दिया जाता है। इस पिंजरे की जाली इतनी छोटी होती है कि प्रजनक इसके बाहर नहीं निकल सकते हैं लेकिन, इनके छोटे–छोटे बच्चे आसानी से बाहर निकल जाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप ये प्रजनक के भंक्षण से बच जामे हैं। इन मछलियों का प्रजनन अन्य मछलियों की तरह नहीं होता है। बल्कि नर मछलियों के गुदा फिन जिसे गुनोपोडियम कहते हैं, उसका परिवर्तन मैथुनविण्यक अंग (कोपुलेट्री आर्गेन) के रुप में हो जाता है। इस अंग के द्वारा ही नर शुक्राणुओं को मादा मछलियों तक पहुँचाते हैं। मादा मछलियाँ शुक्राणुओं को अपने अंदर रखती हैं और तब 5–6 के समूह में बच्चे देती है। प्रजनन के बाद छोटे बच्चे जाली से बाहर आकर सतह पर एकत्रित होने लगते हैं। जब इनकी संख्या अधिक होने लगती है तो इन्हें निकाल कर पालन के लिए भेज दिया जाता है। एक समान्य मादा एक बार में 4–200 तक

चित्र–5. प्रजनन जाल

सरणी–1. लाईव बेयरर प्रजातियों की प्रजनन तालिका

प्रजाति	आकार (सेंटीमीटर में)		आवश्यक जलीय गुणवत्ता			गर्भकाल (दिन)	प्रतिमादा शिशु की संख्या
	नर	मदा	तापमान (डिग्री सेल्सियस)	पीएच	कठोरता (पीपीएम)		
गप्पी	2.5–3.5	5–6	23–28	7.5–8.5	50–100	21–35	20–100
प्लेटी	3–4	4–5	18–25	7.5–8.5	50–100	28–42	10–100
स्वार्ड टेल	3–4	4–5	22–28	7.5–8.5	50–100	28–42	20–100
'ब्लैक मोली	8–9	10	23–28	7.5–8.5	50–100	40–70	30–70

'खाने वाले नमक 0.5–1.0 ग्राम/लीटर

रंगीन मछलियों के बच्चे का पालन

रंगीन मछलियों के बच्चों को सीमेंट की टंकियो में रखा जाता है क्योंकि ये टंकियाँ बहुत ही मजबूत होती है और इनका रख–रखाव भी काफी सरल होता है। जन्म के चार दिन बाद मछली के बच्चे (जिरे) को जिसे फ्राई भी कहते हैं जल प्रवाह के साथ दूसरे टंकियों में डाला जाता है। फिर 10–15 दिनों बाद इनको बड़े टैंकों में डाला जाता है। एक टंकी में किसी एक प्रजाति की मछलियों को रखा जाना चाहिए। वैसे सामान वर्ग के 2–3 प्रजातियों का संग्रह भी एक साथ किया जा सकता है।

लाइव बियरर का पालन

सजीव प्रजनक मछलियों के पालन में ज्यादा कठिनाईयों का सामना नहीं करना पड़ता है क्योंकि ये अण्डे देने वाली मछलियों की अपेक्षा काफी बड़े होते हैं। इसके भोजन के लिए सूक्ष्म सजीवों की आवश्यकता नहीं पड़ती, यह पूर्ण रुप से जैव पल्वक जैसे डैफनिया, मोईना और ब्रायन श्रिंप (आरटेमिया) पर निर्भर होते हैं। जिरा (फ्राई) संवर्धन बड़े पैमाने पर नर्सरी तालाबों में किया जा सकता है। उत्तम व्यवसाय के लिए स्वस्थ जिरे के चुनाव पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

रंगीन मछलियों के प्रजनन एवं संवर्धन को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक

1. मीठे जल की व्यवस्था

मछलियों को सुरक्षित रखने, उनके प्रजनन तथा संवर्धन के लिए पानी पूरे साल एक्वेरियम में नियमित रुप से उपलब्ध होना चाहिए। पानी रिसने से या उच्च तापमान होने से एक्वेरियम में पानी कम हो जाता है। अतः एक्वेरियम में पानी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए तथा नियमित रुप से एक्वेरियम में पानी डालते रहना चाहिए।

2. हाइड्रोजन आयन सांद्रता

पानी प्राकृतिक या हल्का खारा होना चाहिए जो लगभग 7.0–8.0 पीएच के बीच होना चाहिए। कम तथा अधिक पीएच दोनों ही मछलियों की वृद्धि तथा विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। समय–समय पर एक्वेरियम के पानी की जाँच करनी चाहिए। अनुकूल सांद्रता न होने पर उस जल को निकाल कर स्वच्छ जल भरना चाहिए। इससे मछलियाँ स्वस्थ्य रहती है अन्यथा वे बीमार पड़ जाती है।

3. पानी की कठोरता

पानी की कठोरता लगभग 15 पीपीएम तक होनी चाहिए। पानी की कुल कठोरता थोड़ी भी ज्यादा या कम होने पर मछलियों का संपूर्ण विकास नहीं हो पाता है तथा वे बीमार पड़ जाते हैं।

4. तापमान एवं प्रकाश

एक्वेरियम में तापमान तथा प्रकाश की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रजनन तथा संवर्धन के लिए आदर्श तापमान का होना बहुत आवश्यक है। आदर्श तापमान लगभग 26–28 डिग्री सेल्सियस है। इस तापमान पर मछली का विकास पूर्ण रुप से होता है। उचित प्रकाश प्रजनन तथा संवर्धन के लिए आवश्यक है। ऐसा देखा गया है कि कम प्रकाश में प्रजनन सफल नहीं होता है तथा संवर्धन के दृष्टिकोण से मछली का विकास रुक जाता है।

5. घुलित ऑक्सीजन

रंगीन मछलियों के प्रजनन एवं संवर्धन में घुलित ऑक्सीजन का भी बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। एक्वेरियम में एकत्रित पानी में घुलित ऑक्सीजन के कमी की पूरी संभावना रहती है। अतः नियमित ऑक्सीजन प्रदान करने के लिए वायु प्रवाहक या वायु स्पीडक (एरयेटर) का उपयोग किया जाता है। घूलित ऑक्सीजन की मात्रा लगभग 5–8 पीपीएम होने पर मछलियों की मृत्यु की संभावना कम होती है।

रंगीन मछलियों के प्रजनन एवं संवर्धन संबंधी कुछ महत्वपूर्ण जानकारियाँ

- रंगीन मछलियों का प्रजनन एवं संवर्धन शुरु करने से पहले उचित प्रशिक्षण आवश्यक है।
- एक मत्स्य प्रजनक का ध्यान मुख्य रुप से एक प्रजाति के बाजार पर केंद्रित होना चाहिए। जिससे प्रबंधन तरीकों में सहजता होती है।
- मुख्य एक्वेरियम के अलावा एक या एक से अधिक टैंकों की व्यवस्था होनी चाहिए। जिसमें विभिन्न प्रजनन पद्धतियों जैसे चुने गए परिपक्व मछलियों को अनुकूल वातावरण में रखा जा सके। ध्यान रहे कि पानी की गुणवत्ता की जाँच निरंतर हो तथा प्रतिदिन पानी को बदला जाए।
- एक ही परिपक्व मछलियों को दो वर्षो से अधिक प्रजनन नहीं कराना चाहिए।
- छोटे स्तर पर संवर्धन के लिए अँगूठा का नियम (थम्ब रुल) होता है। प्रत्येक 2–5 सेंटीमीटर लम्बे मछली के लिए 75 वर्ग सेंटीमीटर का क्षेत्र होता है।
- प्रजनन एवं संवर्धन की इकाईयाँ पूर्णतः पानी तथा बिजली की सुविधा पर निर्भर करता है। अगर रंगीन मछलियों की प्रजनन इकाईयाँ बहते हुए स्वच्छ जल

(नदी) के समीप बनाई जाए तो बहुत उपयोगी होता है।

- परिपक्व नर व मादा (ब्रडर्स) मछली को जलीय वातावरण के अनुकूल दोनों को अलग–अलग रखा जाना चाहिए तथा उन्हें दिन में दो या तीन समय उच्च गुणवत्ता वाले प्रोट्रीन युक्त आहार दिया जाना चाहिए, जैसे जीवित आहार।
- छोटे स्तर पर पालन करने के लिए 500–1000 वर्ग फीट क्षेत्र और बड़े स्तर पर पालन के लिए एक एकड़ क्षेत्र की आवश्यकता होती है। इस एक एकड़ के क्षेत्र में कुछ तालाब का भी होना आवश्यक है।
- जल की गुणवत्ता के आधार पर प्रजातियों का चयन किया जाता है। जैसे बच्चे देने वाली प्रजातियों का क्षारीय जल में उत्तम होता है।
- लइव बेयरर के जिरा (फ्राई) को महीन पाऊडर विशेष आहार के रुप में दिया जाता है या जीवित आहार को महीन–महीन काट कर दिया जाता है, ताकि उसका सही विकास हो।

निष्कर्ष

रंगीन मछलियों का पालन लोगो के लिए एक लाभकारी एंव आशाजनक विकल्प हो सकता है। इसे करने के लिए छोटी जगह तथा कम प्रारंभिक निवेश की आवश्यकता होती है, और जल कृषि की तुलना में, किसी भी प्राकार के रंगीन मछली के फार्म शुरू करने के पहले चरण में, बहुत परिष्कृत या जटिल उपकरण की आवश्यकता नही होती है। इसके पालन हेतु मछलियों के स्पष्ट व्यवहार तथा जीव विज्ञान की समझ होना आवश्यक है। इसलिए इसे शहरी क्षेत्रों में भी पाला जा सकता है, घर के पिछवाड़े या अपने निवास के छत पर थोड़े परिवर्तन के साथ पालन किया जा सकता है।

***

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं मशीन लर्निंग का अनुप्रयोग

मणिभूषण, आशुतोष उपाधयाय, संजीव कुमार, शिवानी, अजय कुमार, अकरम अहमद, आरती कुमारी, सोनका घोष, सरफराज अहमद एवं अनिल कुमार

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

परिचय

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) विज्ञान की वह शाखा है जो मानव बुद्धि की नकल करने वाली मशीनों के विकास से संबंधित है। मशीन लर्निंग (एमएल) एआई का एक उप-डोमेन है जहां मशीन स्पष्ट रूप से प्रोग्राम किए बिना डेटा से स्वचालित रूप से सीख सकती है। एआई और एमएल तकनीकें कृषि डेटा का विश्लेषण करके संसाधन उपयोग को अनुकूलित करने की क्षमता रखती हैं। इसने विभिन्न इनपुट मापदंडों की भविष्यवाणी और फसल की कटाई के बाद के जीवन की भविष्यवाणी करके खेती का वर्तमान चेहरा बदल दिया है। एआई और एमएल एक-दूसरे से कैसे संबंधित हैं, इसे समझने का सबसे सरल तरीका यह है कि एआई एक मशीन या सिस्टम को मानव की तरह समझने, तर्क करने, कार्य करने या अनुकूलित करने में सक्षम बनाने की व्यापक अवधारणा है और एमएल एआई का एक अनुप्रयोग है जो मशीनों को निष्कर्ष निकालने की अनुमति देता है।

एआई में अनुप्रयोगों का व्यापक दायरा है और यह एक प्रणाली में प्रौद्योगिकियों का उपयोग करता है ताकि यह मानव निर्णय लेने की नकल कर सके। यह सभी प्रकार के डेटा के साथ काम करता है: संरचित, अर्ध-संरचित, और असंरचित और एआई सिस्टम सीखने, तर्क करने और स्वयं को सही करने के लिए तर्क और निर्णय का उपयोग करते हैं। दूसरी ओर मशीन लर्निंग (एमएल) एक मशीन को पिछले डेटा से स्वायत्त रूप से सीखने की अनुमति देता है एवं ऐसी मशीनें बनाना है जो आउटपुट की सटीकता बढ़ाने के लिए डेटा से सीख सकें। हम विशिष्ट कार्य करने और सटीक परिणाम देने के लिए डेटा के साथ मशीनों को प्रशिक्षित करते हैं। मशीन लर्निंग में अनुप्रयोगों का दायरा सीमित है और पूर्वानुमानित मॉडल तैयार करने के लिए स्व-शिक्षण एल्गोरिदम का उपयोग करता है। यह केवल संरचित और अर्ध-संरचित डेटा का उपयोग कर सकता है और एमएल सिस्टम सीखने के लिए सांख्यिकीय मॉडल पर भरोसा करते हैं और नए डेटा प्रदान किए जाने पर स्वयं को सही कर सकते हैं।

कृषि में एआई एवं एमएल का उपयोग

1950 के बाद से जब जॉन मैकार्थी द्वारा 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' शब्द गढ़ा गया था, एआई ने मानव जाति की सर्वोत्तम संभव तरीके से सेवा करने के लिए एक या दूसरे तरीके से शोषण करते हुए एक लंबा सफर तय किया है। कृषि एक प्रमुख उद्योग होने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था की नींव भी है। कृषि क्षेत्र में एआई और एमएल फसल उत्पादन और पशुधन के विभिन्न पहलुओं में महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एक प्रकार की मशीन लर्निंग है जहां हम मशीनों या रोबोटों में धारणा, सीखने, तर्क और समझ की भावना पैदा करने का प्रयास करते हैं। अब विभिन्न कंपनियों ने कृषि रोबोट विकसित किए हैं जो मानव मजदूरों की तुलना में फसलों की कटाई जैसे सभी आवश्यक कृषि संबंधी कार्यों को अधिक मात्रा में और तेज गति से कर सकते हैं।

इस संबंध में फसल और मिट्टी की निगरानी सेंसर की मदद से की जाती है और फसल और मिट्टी के स्वास्थ्य की निगरानी के लिए ड्रोन और/या सॉफ्टवेयर-आधारित तकनीक द्वारा कैप्चर किए गए डेटा को संसाधित करने के लिए कंप्यूटर विज़न और डीप-लर्निंग एल्गोरिदम का उपयोग किया जाता है। पूर्वानुमानित कृषि विश्लेषण में, बीज बोने के इष्टतम समय की भविष्यवाणी करने, कीटों के हमलों से होने वाले जोखिमों पर अलर्ट प्राप्त करने और बहुत कुछ करने के लिए विभिन्न कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग टूल का उपयोग किया जा रहा है। फसल की पैदावार पर मौसम परिवर्तन जैसे विभिन्न पर्यावरणीय प्रभावों को ट्रैक करने और भविष्यवाणी करने के लिए विभिन्न मशीन लर्निंग मॉडल विकसित किए जा रहे हैं। कई कंपनियां अब सप्लाई चेन एफिशिएंसी भी लेकर आई हैं। ये कंपनियां एक कुशल और स्मार्ट आपूर्ति श्रृंखला बनाने के लिए कई स्रोतों से आने वाले डेटा-स्ट्रीम पर वास्तविक समय डेटा विश्लेषण का उपयोग कर रही हैं।

बेहतर उपज सुनिश्चित करने के लिए बुआई का समय बहुत महत्वपूर्ण घटक है। इस दिशा में, इंटरनेशनल सेंटर फॉर रिसर्च ऑन सेमी एरिड ट्रॉपिक्स 'आईसीआरआईएसएटी' ने माइक्रोसॉफ्ट के साथ मिलकर मशीन लर्निंग और पावर बीआई सहित माइक्रोसॉफ्ट कॉर्टाना इंटेलिजेंस सूट द्वारा संचालित एक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस सोइंग ऐप विकसित किया है। यह ऐप किसानों को बुआई के लिए इष्टतम तिथि पर बुआई संबंधी सलाह भेजता है। यह हैदराबाद के चयनित जिले में किसानों को सही बुआई की तारीख के बारे में सूचित करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग करता है जो यह सुनिश्चित करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है कि किसान अच्छी फसल लें। जब किसानों को बुआई की सही तारीख के

बारे में सूचित किया जाता है, तो यह उन्हें बीज की लागत के साथ-साथ उर्वरक अनुप्रयोगों के कारण होने वाले नुकसान से बचाता है। समय पर बुआई की इस जानकारी से किसानों को मेसेज मिलने से उपज में 30 फीसदी की बढ़ोतरी हो चुकी है। सबसे दिलचस्प बात तो ये है कि ये काफी किफायती है. किसान को अपने खेतों में कोई सेंसर लगाने या कोई पूंजीगत व्यय करने की आवश्यकता नहीं है। उनके पास केवल एक स्मार्ट फीचर फोन होना चाहिए जो टेक्स्ट संदेश प्राप्त करने में सक्षम हो।

इसी प्रकार मशीन लर्निंग (एमएल) का उपयोग प्रारंभिक चेतावनी प्रणालियों में किया जाता है जो किसानों को संभावित प्रकोप के बारे में सचेत करता है। इसका उपयोग कीटों और बीमारियों के प्रसार की भविष्यवाणी के लिए मॉडल विकसित करने के लिए भी किया जा सकता है। मशीन लर्निंग किसानों को क्षरण के क्षेत्रों की पहचान करने और मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार के लिए प्रबंधन योजनाओं को तैयार करने में मदद कर सकती है। फसल के स्वास्थ्य पर नज़र रखने और किसी भी समस्या का पता लगाने के लिए ड्रोन या उपग्रह तस्वीरों का गहन शिक्षण एल्गोरिदम द्वारा विश्लेषण किया जा सकता है। ये मॉडल प्रारंभिक बीमारी, कीट, या पोषण संबंधी कमी का पता लगाकर त्वरित कार्रवाई करने में सक्षम बनाते हैं। मशीन लर्निंग से किसानों को मौजूदा बाजार की मांगों के अनुरूप फसल उगाने के बारे में सूचित प्रबंधन निर्णय लेने में भी मदद मिलती है।

निष्कर्ष के तौर पर, कोई यह कह सकता है कि एआई और एमएल अपने साथ कृषि क्षेत्र के लिए शक्तिशाली लाभ लेकर आते हैं। जैसे-जैसे डेटा की मात्रा आकार और जटिलता में बढ़ती है, नई संभावनाएँ लगातार उभरती रहती हैं। इसके परिणामस्वरूप स्वचालित और बुद्धिमान सिस्टम सामने आएंगे और कार्यों को स्वचालित करने, मूल्य अनलॉक करने और बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए कार्रवाई योग्य अंतर्दृष्टि उत्पन्न करने में मदद मिलेगी।

डेटा-आधारित निर्णय

आधुनिक दुनिया पूरी तरह डेटा के बारे में है। कृषि क्षेत्र के संगठन खेती की प्रक्रिया के हर विवरण में सूक्ष्म अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए डेटा का उपयोग करते हैं, जिसमें संपूर्ण उपज आपूर्ति श्रृंखला की निगरानी करने से लेकर पैदावार उत्पादन प्रक्रिया पर गहन जानकारी प्राप्त करना शामिल है। एआई-संचालित भविष्य कहनेवाला विश्लेषण पहले से ही कृषि व्यवसायों के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहा है। किसान एआई के साथ कम समय में अधिक डेटा इकट्ठा कर सकते हैं और संसाधित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, एआई बाजार की मांग का विश्लेषण कर सकता है, कीमतों का पूर्वानुमान लगा सकता है और साथ ही बुआई और कटाई के लिए इष्टतम समय भी निर्धारित कर सकता है।

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता मिट्टी के स्वास्थ्य का पता लगाने, सूचना एकत्र करने, मौसम की स्थिति की निगरानी करने और उर्वरक और कीटनाशकों के आवेदन की सिफारिश करने में मदद कर सकती है। फार्म प्रबंधन सॉफ्टवेयर उत्पादन के साथ-साथ लाभ को भी बढ़ाता है, जिससे किसान फसल उगाने की प्रक्रिया के हर चरण में बेहतर निर्णय लेने में सक्षम होते हैं।

लागत बचत

कृषि उपज में सुधार करना किसानों के लिए एक निरंतर लक्ष्य है। एआई के साथ मिलकर, सटीक कृषि किसानों को कम संसाधनों के साथ अधिक फसलें उगाने में मदद कर सकती है। खेती में एआई न्यूनतम खर्च को कम करते हुए पैदावार को अधिकतम करने के लिए सर्वोत्तम मृदा प्रबंधन प्रथाओं, परिवर्तनीय दर प्रौद्योगिकी और सबसे प्रभावी डेटा प्रबंधन प्रथाओं को जोड़ती है।

कृषि में एआई का अनुप्रयोग किसानों को वास्तविक समय में फसल की जानकारी प्रदान करता है, जिससे उन्हें यह पहचानने में मदद मिलती है कि किन क्षेत्रों में सिंचाई, उर्वरक या कीटनाशक उपचार की आवश्यकता है। वर्टिकल कृषि जैसी नवोन्वेषी कृषि पद्धतियाँ भी संसाधनों के उपयोग को कम करते हुए खाद्य उत्पादन बढ़ा सकती हैं। इसके परिणामस्वरूप शाकनाशियों का उपयोग कम हुआ, फसल की गुणवत्ता बेहतर हुई, लागत में उल्लेखनीय बचत के साथ-साथ अधिक मुनाफा हुआ।

स्वचालन प्रभाव

कृषि कार्य कठिन है, इसलिए श्रमिकों की कमी कोई नई बात नहीं है। शुक्र है, स्वचालन अधिक लोगों को काम पर रखने की आवश्यकता के बिना एक समाधान प्रदान करता है। जबकि मशीनीकरण ने कृषि गतिविधियों को बदल दिया है, जिसमें अत्यधिक मानव पसीने और भारी पशु श्रम की आवश्यकता होती है, जिसमें कुछ ही घंटे लगते हैं, डिजिटल स्वचालन की एक नई लहर एक बार फिर इस क्षेत्र में क्रांति ला रही है।

स्वचालित कृषि मशीनरी जैसे ड्राइवर रहित ट्रैक्टर, स्मार्ट सिंचाई, उर्वरक प्रणाली, आई ओ टी (इन्टरनेट ऑफ़ थिंग) संचालित कृषि ड्रोन, स्मार्ट छिड़काव, ऊर्ध्वाधर खेती सॉफ्टवेयर और कटाई के लिए एआई-आधारित ग्रीनहाउस रोबोट इसके कुछ उदाहरण हैं। किसी भी मानव कृषि श्रमिक की तुलना में, एआई-संचालित उपकरण कहीं अधिक कुशल और सटीक हैं।

स्वचालित सिंचाई प्रणालियों का अनुकूलन

एआई एल्गोरिदम स्वायत्त फसल प्रबंधन को सक्षम बनाता है। जब IoT (इंटरनेट ऑफ थिंग्स) सेंसर के साथ जोड़ा जाता है जो मिट्टी की नमी के

स्तर और मौसम की स्थिति की निगरानी करता है, तो एल्गोरिदम वास्तविक समय में तय कर सकता है कि फसलों को कितना पानी प्रदान करना है। एक स्वायत्त फसल सिंचाई प्रणाली को टिकाऊ कृषि और कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देते हुए पानी के संरक्षण के लिए डिज़ाइन किया जाता है। स्मार्ट ग्रीनहाउस में एआई वास्तविक समय के डेटा के आधार पर तापमान, आर्द्रता और प्रकाश के स्तर को स्वचालित रूप से समायोजित करके पौधों की वृद्धि को अनुकूलित करता है।

निष्कर्ष

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) और मशीन लर्निंग (एमएल) का कृषि में व्यापक उपयोग आजकल हो रहा है। कृषि सहस्राब्दियों से मानव सभ्यता की रीढ़ रही है, जो जीविका प्रदान करने के साथ-साथ आर्थिक विकास में भी योगदान देती है, जबकि सबसे पहले एआई भी कई दशक पहले ही उभरा था। फिर भी, हर उद्योग में नवीन विचार पेश किए जा रहे हैं और कृषि कोई अपवाद नहीं है। हाल के वर्षों में, दुनिया ने कृषि प्रौद्योगिकी में तेजी से प्रगति देखी है, जिससे कृषि पद्धतियों में क्रांति आ गई है। ये नवाचार तेजी से आवश्यक होते जा रहे हैं क्योंकि जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि और संसाधनों की कमी जैसी वैश्विक चुनौतियाँ हमारी खाद्य प्रणाली की स्थिरता को खतरे में डाल रही हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई)और मशीन लर्निंग (एमएल) फसल उत्पादन पूर्वानुमान/ फोरकास्टिंग, जल एवं सिंचाई प्रबंधन, कीट, क्रॉप डिजीज डिटेक्शन, उर्वरक प्रबंधन, मिट्टी प्रबंध, जलवायु एवं मौसम की जानकारी, पशुधन प्रबंधन इत्यादि में उपयोग हो रहा है। एआई एवं एम एल कई चुनौतियों का समाधान करता है और पारंपरिक खेती के कई नुकसानों को कम करने में मदद करता है एवं कृषि उत्पादन को बढ़ाने में बहुत मदद करता है जिस से फसल उत्पादन एवं किसानों की आमदनी बढती है।

***

औषधीय गुणों से भरपूर है – सहजन

प्रदीप कुमार[1], रामकेवल[2], दिलीप कुमार तिवारी[3] एवं राजीव कुमार[4]

सहायक प्राध्यापक, सस्य विज्ञान, वीर कुंवर सिंह कृषि महाविद्यालय, डुमरांव, बक्सर[1]

विषयवस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केंद्र, बक्सर[2]

सहायक प्राध्यापक, श्री परमहंस शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालय विद्याकुंड, अयोध्या[3]

सहायक प्राध्यापक, कृषि, संस्कृति विश्वविद्यालय, मथुरा[4]

सहजन मुख्य रूप से ट्रॉपिकल क्षेत्रो में पाया जाने वाला एक वृक्ष है, इसको अंग्रेजी में ड्रमस्टिक ट्री भी कहा जाता है । इसका वैज्ञानिक नाम मोरिंगा ओलिफेरा (*Moringa Oleifera*) है, जो मोरिन्गेसी कुल से है । इसके फल पत्ते बीज और तने कई औषधिय गुणपाए जाते है। सहजन के फल की सब्जी लगभग हर घर में बनती है। खाने में इसका स्वाद सबको खूब अच्छालगता है। इनमें प्रोटीन, अमीनो एसिड, बीटा कैरोटीन और विभिन्न फीनॉलिक होते हैं। सहजन पत्तियों को ताजा या पाउडर के रूप में भोजन के पूरक के रूप में उपयोग किया जा सकता है। सहजन के बीज में विटामिन ए., सी., कैल्सियम, फास्फोरस, आयरन , जिंक जैसे विभिन्न पोषक तत्व पाए जाते हैं। इस पौधे में जड से लेकर सहजन के फूल, पत्तियों तक सेहत के गुण भरे हुए हैं। इसका इस्तेमाल सदियों से आयुर्वेद में हो रहा है, यह कई बीमारियों से छुटकारा दिलाने में मदद करता है।

सहजन (मोरिन्गा)

बिहार में किसानों की आय बढ़ाने के लिए राज्य सरकार की ओर से काफी प्रयास किए जा रहे हैं। इसके लिए कई नई योजनाएं चलाकर किसानों को फायदा भी पहुंचाने की कोशिश की जा रही है। किसानों को परती भूमि पर अनुदान दिया जा रहा है, नई योजना के तहत सहजन की खेती के लिए किसानों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। कृषि विभाग ने किसानों को सहजन की खेती के लिए प्रोत्साहित करने के लिए 50 प्रतिशत अनुदान देने का फैसला किया है। सहजन बिहार के किसानों के लिए जाना पहचाना पौधा है, सहजन एक मेडिसिनल प्लांट है, यह औषधीय गुणों से भरपूर है, इसमें बहुत सारे रोगों के रोकथाम के गुण पाये जाते हैं। इसमें कई तरह के मल्टीविटामिन्स और एण्टीऑक्सीडेंट गुण पाए जाते हैं। वहीं चारे के रूप में इसकी पत्तियों को पशुओं को खिलाया जाता है। इसकी खासियत ये है कि इसकी एक बार बुवाई के बाद चार साल तक बुवाई नहीं करनी पड़ती है। साल में दो बार फली तोड़ते हैं। हर पौधे से करीब 200–400 सहजन मिलता है। पौधा जैसे–जैसे बड़ा होता है, वैसे–वैसे वजन भी बढ़ता जाता है। पहले साल में 540 पौधों में से 200 क्विंटल फलियां मिल जाएंगी। अगर इनको थोक में 15 रुपये किलो भी बेचा जाए तो 3 लाख रुपये की कमाई एक एकड़ से होगी। पहले साल सहजन की खेती पर करीब 50 हजार रुपये खर्च आता है, इसके बाद तीन साल तक खर्च कम होता जाता है क्योंकि पौधे लगाने नहीं होते। सहजन की खेती के लिए ज्यादा पानी की आवश्यकता नहीं होती यह पौधा बंजर जमीन में भी लगाया जा सकता है। साथ ही यह

सर्दी भी सह सकता है, साल में दो बार इसके फलियां लगने के कारण इससे कमाई भी अच्छी होती है। सहजन का पौधा लगाने के दस महीने बाद फल देने लगता है।

सहजन एक बहुत ही उपयोगी और पोषक वाला पेड़ है, जिसके विभिन्न भागों का आयुर्वेद, खाना, शुद्धिकरण और अन्य उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है। सहजन में विटामिन, मिनरल, एंटीऑक्सिडेंट, एंटीइंफ्लेमेटरी, एंटीबायोटिक और एंटीहेलमिंटिक जैसे गुण होते हैं, जो शरीर को विभिन्न बीमारियों और संक्रमणों से बचाते हैं। सहजन का सेवन शुगर, कोलेस्ट्रॉल, रक्तचाप, वजन, पाचन, इम्यूनिटी, लिवर, यौन, आँखों, हड्डियों और त्वचा के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में मदद करता है। सहजन की खेती भी आसान और लाभकारी है, जो नकदी और व्यावसायिक लाभ देती है।

सहजन की खेती– भारत में बहुत तेजी से बढ़ रही है। इसकी खेती से अच्छा लाभ कमाया जा सकता है।

1. जलवायु– सहजन की खेती के लिए 25–30 डिग्री औसत तापमान आवश्यक होता है। यह ठण्ड को आसानी से सहन कर लेता है, लेकिन पाला इनके लिए हानिकारक होता है। 40 डिग्री से अधिक तापमान फूलों के लिए भी हानिकारक हो सकता है।
2. मिट्टी का चयन– सहजन के पौधों को सभी प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है, लेकिन बलुई दोमट मिट्टी अच्छी मानी जाती है। उत्तम उपज के लिए मिट्टी का PH. मान 6–7.5 तक होना चाहिए।
3. खेत की तैयारी– खेत की अच्छे से जुताई कर खरपतवार नष्ट करें। 2.5 × 2.5 मीटर की दूरी पर 45 × 45 × 45 सेंमी. तक गहरे गड्ढे तैयार करें।
4. सहजन की उन्नत किस्में– सहजन की उन्नत किस्मों से साल में दो बार पैदावार ली जा सकती है।

1. PKM–1: यह उन्नत किस्म तमिलनाडु के कृषि विज्ञान केंद्र द्वारा विकसित की गई है। इसकी खासियत है कि यह तेजी से उगती है और अधिक उत्पादक होती है।

2. ODC–3: इस उन्नत किस्म को ओरिस्सा के कृषि विज्ञान केंद्र द्वारा विकसित किया गया है। इसकी खासियत है अच्छी उत्पादनशीलता और विपरीत परिस्थितियों में भी सही रूप से पला जा सकता है।

3. MO–80: यह उन्नत किस्म उत्तर प्रदेश में विकसित की गई है। इसकी खासियत है उच्च उत्पादकता और तेजी से विकास।

4. PKM–2: यह उन्नत किस्म तमिलनाडु के कृषि विज्ञान केंद्र द्वारा विकसित की गई है। इसकी खासियत है अच्छी पलनीयता और अधिक पत्तों का उत्पादन।

5. अन्य–रोहित–1,कोयम्बटूर–1 और 2।

सहजन के गुण:–

हाई ब्लड प्रेशर कंट्रोल

उच्च रक्तचाप के मरीजों को सहजन की पत्तियों का रस निकालकर काढ़ा बनाकर देने से लाभ मिलता है। साथ ही इसका काढ़ा पीने से घबराहट,चक्कर आना, उल्टी में भी राहत मिलती है।

कैल्शियम का स्रोत

फली में प्रचुर मात्रा मेंकैल्शियम पाया जाता है, जो बच्चों के लिए बहुत फायदेमंद होता है। इससे हड्डियां और दांत दोनों ही मजबूत बनते हैं। इसे गर्भवती महिलाओं को देने से उनके होने वाले बच्चों में कैल्शियम की मात्रा भरपूर मिलती है और होने वाला शिशु स्वस्थ्य होता है।

मजबूत एवं स्वस्थ्य बाल

मोरिंगा बालों के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों का एक भंडार है। सहजन में कैल्शियम, आयरन, पोटेशियम, मैग्नीशियम, सेलेनियम, तांबा और मैंगनीज जैसे खनिज प्रचुर मात्रा में होते हैं जो स्वस्थ बालों के लिए लाभकारी है। विशेष तौर पर सजहन में मौजूद विटामिन ए और विटामिन ई की मौजूदगी बालों के लिए फायदेमंद बनाती है। क्यूंकि विटामिन ई एक एंटीऑक्सीडेंट है और यह रक्त के प्रवाह को बढ़ाकर सिर की त्वचा को स्वस्थ बनाये रखता है जो बालों के स्वस्थ विकास के लिए लाभकारी है।

शुक्राणुओं की संख्या में वृध्दि

प्लांट इंडस्ट्री ब्यूरो की शोध में पाया गया कि सहजन के फल का नियमित रूप से सेवन करने पर शुक्राणुओं की संख्या बढ़ती है और यह शुक्राणुओं की संख्या के साथ साथ उनकी गतिशीलता दोनों को बढ़ाने का कार्य करता है।

तथा वीर्य को गाढ़ा करने में मदद करता है, मोरिंगा महिलाओ में गर्भाशय सम्बन्धित समस्याओं से भी बचाता है।

मोरिंगा के बीज सिरदर्द में सहायक

सहजन में सूजन और दर्द को कम करने वाले गुण होते हैं जिनकी की वजह से यह शरीर में विभिन्न प्रकार के दर्द से राहत दिलाने में मदद करता है। यह गठिया, जोड़ों का दर्द, माइग्रेन और सिरदर्द जैसे अन्य समंस्याओं के इलाज के लिए में लाभकारी होता है। मोरिंगा की जड़ो से लेकर पौधे के रस तक इसका हर हिस्सा हमारे स्वास्थ के लिए गुणकारी होता है। मोरिंगा के पत्तों का पेस्ट घाव पर लगाया जाता है और इन पत्तों की सब्जी भी सिर दर्द में राहत देने में मदद करती है। सहजन के पत्तों को पीसकर गर्म कर सिर में लेप लगाने या इसके बीज को घीसकर सूंघने से सिर दर्द दूर हो जाता हैं।

पाचन समस्याओं के निदान के लिए

मोरिंगा में मौजूद आइसोथियोसाइनेट्स प्रभावी रूप से पाचन तंत्र की विभिन्न समस्याओं जैसे अल्सर, गैस्ट्रिटिस और कब्ज का इलाज करने में उपयोगी होते हैं। यह दवा की दुकान पर मिलने वाली एंटासिड्स दवाईओं का एक बेहतर हर्बल विकल्प है। सहजन में एंटीबायोटिक और एंटीबैक्टीरियल गुण होते हैं, जो हेलीकॉक्टर पिलोरी और कोलिफोर्म बैक्टीरिया जैसे दस्त का कारण बनने वाले रोगजनकों के विकास को रोकते हैं और दस्त जैसी अन्य समस्याओं को कम करते हैं।

सहजन के पत्तियों के लाभ

मोटापा और शरीर की बढ़ी हुई चर्बी को दूर करने के लिए मोरिंगा को एक लाभदायक औषधि माना गया है। इसमें फास्फोरस की मात्रा पाई जाती है जो कि शरीर की अतिरिक्त कैलोरी को कम करती है और साथ ही वसा को कम कर मोटापा कम करने में सहायक होती हैं। सहजन की पत्तियों के रस के सेवन से मोटापा धीरे धीरे कम होने लगता है। शरीर की चयापचय क्रिया को बढ़ाने के लिए मोरिंगा का सकारात्मक प्रभाव होता है। यह आपके शरीर की कैलोरी जलाने में भी मदद कर सकता है। मोरिंगा की पत्तियाँ फाइबर युक्त होती है और वजन कम करने के लिए मोरिंगा को अपने आहार में शामिल करना एक अच्छा विकल्प है।

त्वचा का संरक्षण

सहजन में एंटीबैक्टीरियल, एंटीफंगल और एंटीवायरल गुण होते हैं, जो आपकी त्वचा को कई प्रकार के संक्रमण से बचते हैं। यह प्रदूषण, पसीना, और कुछ रासायनिक उत्पादों की वजह से आपकी त्वचा पर मौजूद हानिकारक विषाक्त पदार्थों के प्रभावों को बेअसर करता है। त्वचा को प्रभावी ढंग से हाइड्रेट और डिटॉक्सीफाई करता है। इसके अलावा मोरिंगा में प्रोटीन अधिक होता है जो त्वचा की कोशिकाओं को पारा और कैडमियम के कारण होने वाली क्षति से बचता है। इसी कारण से, मोरिंगा का प्रयोग कई त्वचा की देखभाल करने वाले उत्पादों में किया जाता है। सहजन में विटामिन ए भरपूर मात्रा में पाया जाता है। चूँकि विटामिन ए त्वचा की सुंदरता को बनाएं रखता है। इसलिए सहजन के तेल का प्रयोग सौंदर्य प्रणाली के लिए भी किया जाता है। इसकी फली की सब्जियां खाने से या फिर मोरिंगा सीड्स का तेल लगाने से, त्वचा में हमेशा चमक बनी रहती है। जिससे त्वचा शुष्क और मुरझाई हुई नहीं दिखती है। मोरिंगा में लोहा पाया जाता है जो खून को साफ रखता है। जिससे यह चेहरे पर होने वाले मुहासे को खत्म करता है और त्वचा की सुंदरता और चमक बनाए रखता है।

इम्युनिटी बढाने में सहायक

अगर किसी व्यक्ति की रोग–प्रतिरोधक क्षमता कमजोर है, तो उस व्यक्ति के बीमार होने का खतरा बढ़ जाता है। ऐसे में जरूरी है कि अपनी डाइट में उन खाद्य पदार्थों को शामिल किया जाए, जो रोग–प्रतिरोधक क्षमता में सुधार करने में मदद करें। इन्हीं खाद्य पदार्थों में से एक है सहजन। सहजन की फली या इसकी पत्तियों के सेवन से इम्यूनिटी में सुधार हो सकता है। इसका संतुलित मात्रा में सेवन रोग–प्रतिरोधक क्षमता में सुधार कर सकता है। ध्यान रहे कि इसे अगर जरूरत से ज्यादा खाया गया, तो इसमें इसोथियोसीयानेट और ग्लाइकोसाइड सायनाइडनामक विषैले तत्व होते हैं, जो तनाव को बढ़ा सकते हैं और इसके एंटीऑक्सीडेंट असर को कम कर सकते हैं।

एनीमिया में प्रतिरोधी

सहजन की छाल या इसकी पत्तियों का सेवन एनीमिया यानी लाल रक्त कोशिकाओं की कमी से बचाव के लिए भी किया जा सकता है। सहजन की पत्तियों के एथनोलिक एक्सट्रेक्टमें एंटी–एनीमिया गुण भी मौजूद होते हैं और इसके सेवन से हीमोग्लोबिन के स्तर में सुधार हो सकता है,

जिससे लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन में मदद मिल सकती है

एंटी–एजिंग के लिए लाभ

बढ़ती उम्र का असर चेहरे पर भी दिखने लगता है, नतीजतन चेहरे की चमक कम होने लगती है और झुर्रियां बढ़ने लगती हैं। ऐसे में आप में से कई लोग एंटी–एजिंग क्रीम का भी सहारा लेते होंगे, जिसका असर कुछ वक्त तक ही रहता है। इस कारण इसका उपयोग बार–बार करने की जरूरत होती है। इस स्थिति में बेहतर है कि अगर डाइट में सहजन शामिल करें तो बेहतर लाभ होगा, क्योंकि कहीं न कहीं आपकी डाइट का असर आपकी त्वचा और चेहरे पर पड़ता है। आप अपने डाइट में सहजन को या इसकी पत्तियों को शामिल कर सकते हैं। इसका सेवन आपके चेहरे पर बढ़ती उम्र के प्रभाव को कम करने में मदद कर सकता है।

निष्कर्श

हर चीज के फायदे और नुकसान दोनों होते हैं। अगर किसी चीज को जरूरत से ज्यादा या गलत तरीके से सेवन किया जाए, तो उसके नुकसान भी हो सकते हैं। वैसे ही सहजन के नुकसान भी हो सकते हैं, अगर उसका सही तरीके से सेवन न किया जाए तो।

सहजन के नुकसान

गर्भावस्था में संतुलित मात्रा में सहजन की फलियों और पत्तियों का सेवन कर सकते हैं। हालांकि, इसकी छाल के सेवन से गर्भपात होने का खतरा हो सकता है। ऐसे में बेहतर है कि सेवन करने से पहले विशेषज्ञ की राय लें। सहजन के पत्ते हाई ब्लड प्रेशर की समस्या से राहत दिलाने में मदद कर सकते हैं, लेकिन ध्यान रहे कि जिनको लो ब्लड प्रेशर की परेशानी है, वो इसका सेवन न करें। यह कभी–कभी लो ब्लड प्रेशर का कारण बन सकता है। उपरोक्त कथनुसार इसके सेवन से मधुमेह में राहत मिल सकती है, लेकिन इसके अधिक सेवन से ब्लड ग्लूकोज के स्तर में जरूरत से ज्यादा कमी भी हो सकती है, जो खतरनाक हो सकता है।

***

कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए जल के बहुआयामी उपयोग: स्थायी समाधान की ओर एक कदम

अकरम अहमद, आशुतोष उपाध्याय, अनुप दास, आरती कुमारी, वेद प्रकाश, सुरेन्द्र कुमार अहिरवाल, अजय कुमार, शिवानी, टी. के. कोले, पवन जीत, एम के त्रिपाठी, रचना दूबे, अभिषेक कुमार एवं अभिषेक कुमार दूबे

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

भारत के पास विश्व के मीठे जल संसाधनों का केवल 4% ही है, लेकिन यह वैश्विक जनसंख्या के 17% का भरण-पोषण करता है, जिससे गंभीर जल संकट और आपूर्ति व मांग में असंतुलन उत्पन्न होता है। यह असंतुलन जल संकट को गंभीर रूप से बढ़ावा देता है, खासकर जब हम देखते हैं कि देश के 70-85% जल का उपयोग कृषि में हो रहा है। भविष्य में, अनुमान है कि वैश्विक कृषि उत्पादन का 20% हिस्सा सिंचाई के लिए पानी की कमी से प्रभावित हो सकता है। भारत में प्रचलित चावल-गेहूं फसल प्रणाली अत्यधिक जल की मांग करती है, और विशेष रूप से, धान की खेती प्रति किलोग्राम अनाज उत्पादन में 3,000 से 5,000 लीटर पानी का उपयोग करती है। अत्यधिक जल खपत और अव्यवस्थित सिंचाई पद्धतियाँ, जैसे निरंतर जल भराव, इस समस्या को और जटिल बना रही हैं। परिणामस्वरूप, भूजल का अत्यधिक दोहन हो रहा है और सतही जल की उपलब्धता घट रही है, जिससे जल संकट की समस्या और गंभीर हो रही है।

साथ ही, कम फसल जल उत्पादकता, सतत कृषि के लिए एक बड़ी चुनौती बन चुकी है, और यह जल और मिट्टी स्वास्थ्य प्रबंधन के प्रभावी तरीके न अपनाने के कारण और बढ़ रही है। भारत में भी कृषि की स्थिरता को कई गंभीर समस्याएँ प्रभावित कर रही हैं, जिनमें बढ़ती जलवायु समस्याएँ, जैसे बार-बार सूखा, गर्मी, सर्द एवं गर्म हवायें और दीर्घकालिक मानसून की कमी शामिल हैं। अन्य चुनौतियों में कम फसल और जल उत्पादकता, प्राकृतिक संसाधनों का क्षय, उच्च लागत और किसानों की घटती आय आदि शामिल हैं। बिहार, जो कृषि की दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील राज्य है, यहां भी यह समस्याएँ विकराल रूप ले रही हैं। बिहार की कृषि मुख्य रूप से मानसूनी वर्षा पर निर्भर करती है और यह सूखा, जलभराव, अनियमित वर्षा और बाढ़ जैसी समस्याओं का सामना करती है। इस परिदृश्य में, बिहार में स्थायी कृषि और पारिस्थितिकी पुनर्स्थापना के लिए स्थान-विशिष्ट जल-स्मार्ट खेती की तकनीकों का विकास अत्यंत आवश्यक हो गया है। इसी सन्दर्भ में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना ने 2023 में अपने सबजपुरा फार्म पर एक अभिनव 'जल का बहुआयामी उपयोग' मॉडल विकसित किया है, जो कृषि क्षेत्र में आने वाली चुनौतियों का समाधान करने के लिए एक अनूठी पहल है। यह मॉडल जल संचयन और संरक्षण की प्रभावी तकनीकों को एक साथ मिलाकर किसानों को जल के कुशलतम उपयोग की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करता है। इस मॉडल में भूजल पुनर्भरण, मछली पालन, स्मार्ट जल उपयोग विधियाँ जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई, और फर्टिगेशन जैसी आधुनिक पोषक तत्व प्रबंधन पद्धतियाँ शामिल हैं। संसाधन संरक्षण तकनीकों का उपयोग करके आदान-उपयोग क्षमता को बढ़ाने के साथ-साथ मिट्टी की सेहत में सुधार और वैश्विक तापमान बृद्धि की संभावना को कम करने का लक्ष्य भी रखा गया है।

"जल का बहुआयामी उपयोग" मॉडल के घटक

यह नव विकसित मॉडल 0.65 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है और इसमें आठ विभिन्न अध्ययन शामिल हैं, जो जल, मिट्टी और अन्य घटकों के विभिन्न पहलुओं को व्यापक रूप से प्रदर्शित करते हैं।

खेत में तालाब (फार्म पोंड) – जल प्रबंधन का प्रभावी समाधान

एक फार्म तालाब को 40 मीटर × 20 मीटर × 2.5 मीटर (भंडारण क्षमता: 2000 क्यूबिक मीटर) आकार में परियोजना स्थल के निचले क्षेत्र में खुदवाया गया। इसका बाहरी ढलान 1:1 अनुपात में रखा गया, जिसे स्थानीय रूप से उपलब्ध दूब घास से स्थिर किया गया ताकि मिट्टी का कटाव न हो। यह पोखर परियोजना स्थल से बहकर आने वाले जल को संग्रहीत करता है और आवश्यकतानुसार ट्यूब वेल से भरा जाता है।इससे फसलों की जल आवश्यकताओं के अनुसार पानी की आपूर्ति की जाती है, जो गुरुत्वाकर्षण प्रवाह या दबाव आधारित सिंचाई प्रणाली के माध्यम से होती है। पोखर में जल स्तर की दैनिक माप के लिए स्टाफ गेज स्थापित किया गया है, और औसत जल गहराई 1.6 मीटर बनाए रखी जाती है।

तालाब में मिश्रित मछली पालन

मछली तालाब में गाय का गोबर (10 टन/हेक्टेयर/वर्ष), यूरिया (150 किग्रा/हेक्टेयर/वर्ष), एसएसपी (200 किग्रा/हेक्टेयर/वर्ष), और चूना (250 किग्रा/हेक्टेयर/वर्ष) का प्रयोग किया जाता है। इससे प्राथमिक उत्पादन बनाए रखने और फाइटोप्लैंकटन व जूप्लैंकटन के विकास को बढ़ावा मिलता है। कैटला कैटला, लोबेयो रोहिता, सिरहिनस मृगाल, सिटेनोफैरिंगोडॉन इडेला, और पैंगासियानोडॉन हाइपोफथाल्मस की छोटी उंगलिकायें (फिंगरलिंग्स) 35:30:20:10:5 के अनुपात में

चित्र सं. 1. फार्म पोण्ड, सिंचाई प्रणाली और अन्य घटक

10,000 मछलियां/हेक्टेयर की घनत्व पर डाले जाते हैं। 28% क्रूड प्रोटीन युक्त एक व्यावसायिक फ्लोटिंग पैलेटेड अनुपूरक आहार मछलियों के शरीर के वजन का 4% के हिसाब से दिया जाता है। पानी की गुणवत्ता के पैरामीटर जैसे क्षारीयता, कठोरता, डीओ (घुलित ऑक्सीजन) सामग्री, पानी का तापमान, पीएच, नाइट्रेट, और अमोनिया की जांच मासिक अंतराल पर सुबह के समय की जाती है।

तालाब मेड़ सघनीकरण

तालाब के किनारे अमरूद, नींबू, केला और सहजन जैसे फलदार पौधे लगाए गए हैं। गर्मियों में खीरा जैसी सब्जियां और सर्दियों में टमाटर और बैंगन भी उगाए जाते हैं। इन प्रयासों का उद्देश्य भूमि का उपयोग बढ़ाना और अतिरिक्त आय लेना है। तालाब के किनारे पर 10x8x7 फीट का एक बांस का बतख शेड बनाया गया है। इसमें 3 से 4 महीने के 24 बतखों

चित्र सं. 2 पोखर किनारों का सघनीकरण केले, अमरूद, सहजन और नींबू के साथ

को रखा गया है।

निम्न भूमि परिस्थितियों के लिए संशोधित उच्च- निम्न संरक्षण बेड तकनीक

पूर्वी भारत के निचले क्षेत्रों में भारी मानसूनी वर्षा, खराब जल निकासी और बार-बार जलभराव जैसी समस्याएं होती हैं, जिससे कृषि उत्पादकता प्रभावित होती है। यह तकनीक इन चुनौतियों का स्थायी समाधान प्रदान करती है।

संरचना और डिज़ाइन:

- इस प्रणाली में वैकल्पिक रूप से उच्च और निम्न बेड होते हैं, जिन्हें साधारण कटाई और भराई विधि से बनाया जाता है।
- उच्च बेड – 0.8 से 1.2 मीटर चौड़े और 15 से 60 सेमी ऊंचे, जो जलभराव कम करते हैं और सब्जी उत्पादन के लिए आदर्श होते हैं।
- निम्न बेड – 1 से 1.5 मीटर चौड़े, जो जल संग्रहण क्षेत्र के रूप में काम करते हैं और मानसून के दौरान जल-प्रेमी फसलों के लिए उपयुक्त होते हैं।

फसल उत्पादन: मानसून में निम्न बेड में धान, जबकि उच्च बेड पर सब्जियां (भिंडी, लोबिया, सोयाबीन) उगाई जाती हैं। रबी मौसम में – निम्न बेड में दालें या अनाज, जबकि उच्च बेड पर कोल फसलें (गोभी, ब्रोकोली) लगाई जाती हैं। ग्रीष्मकाल में – उन्नत बेड पर सब्जियां।

जल संचयन और उत्पादकता: यह प्रणाली 30-50% बहाव जल को निम्न बेड में संग्रहित कर जल उत्पादकता में वृद्धि करती है। उच्च बेड और निम्न बेड की इस तकनीक को चित्र 3 में दर्शाया गया है।

चावल आधारित प्रणाली में जल प्रबंधन

चित्र सं. 3 निम्न भूमि परिस्थितियों के लिए संशोधित उच्च-निम्न संरक्षण बेड तकनीक

उन्नत उत्पादन तकनीकों और उपयुक्त फसल चक्रों का विकास अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह बिना मृदा स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाए उत्पादकता और आय को बढ़ाने में मदद करता है। यह संसाधन संरक्षण विकल्पों के साथ मिलकर खेती की दीर्घकालिक स्थिरता को सुनिश्चित करता है। लगातार धान-गेहूं फसल प्रणाली ने कई समस्याएं उत्पन्न की हैं, जैसे:

1. संसाधन क्षरण, 2. मृदा उर्वरता में गिरावट, 3. खरपतवार, कीट और बीमारियों की समस्याएं, उत्पादकता में ठहराव, भूजल स्तर में गिरावट

इन समस्याओं का समाधान करने के लिए वर्तमान धान-गेहूं प्रणाली में विविधता लाने और इसे सघन बनाने की आवश्यकता है। इसे ध्यान में रखते हुए, चार फसल प्रणालियां विकसित की गई हैं:

1. धान-गेहूं-मूंग, 2. धान-मसूर-मूंग, 3. धान-मक्का- ढैंचा, एवं 4. धान-फूलगोभी-पालक-मूंग

इन फसल प्रणालियों में संसाधन संरक्षण तकनीकी (RCT) उपायों का उपयोग किया जाता है, जैसे: न्यूनतम / शून्य जुताई, अवशेष संरक्षण, मल्चिंग. इसके अलावा, सिंचाई के पानी का कुशल उपयोग भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। खरीफ के मौसम में धान की सिंचाई के लिए निम्नलिखित चार तरीके अपनाए जाते हैं: 1. वैकल्पिक नम और शुष्क, 2. महत्वपूर्ण वृद्धि चरणों पर सिंचाई, 3. सेंसर-आधारित सिंचाई, एवं 4. बाढ़ सिंचाई

चित्र सं. 4 स्प्रिंकलर प्रणाली से सुसज्जित फसल प्रखण्ड

आम और केला में जल प्रबंधन

एक आम का ब्लॉक (0.17 हेक्टेयर) और एक केले का ब्लॉक (0.03 हेक्टेयर) स्थापित किया गया है, जिसका उद्देश्य आय में स्थिरता प्रदान करना और जल उत्पादकता को बढ़ाना है। इन फसलों को विभिन्न मल्चिंग और फर्टीगेशन विधियों के तहत उगाया जाता है ताकि जल का प्रभावी उपयोग किया जा सके। ग्राफ्टेड आम के पौधे (किस्म – आम्रपाली) वर्षा ऋतु के अंत में रोपे जाते हैं और इनकी रोपाई 5 मीटर × 5 मीटर की दूरी पर की जाती है। आम की खेती के लिए दो प्रकार की सिंचाई विधियाँ अपनाई जाती हैं, जिनमें ड्रिप सिंचाई के साथ इनऑर्गेनिक फर्टीगेशन और किसानों की पारंपरिक उर्वरक विधि (नियंत्रण) के साथ रिंग सिंचाई शामिल हैं। वहीं, केले की खेती के लिए 2023 के वर्षा ऋतु के अंत में ऊतक संवर्धन (टिशू कल्चर) पौधे (किस्म – G9) लगाए गए, जिनकी रोपाई 2 मीटर × 2 मीटर की दूरी पर की गई। केले की खेती के लिए दो सिंचाई विधियाँ अपनाई जाती हैं, जिनमें ड्रिप सिंचाई के साथ इनऑर्गेनिक फर्टीगेशन और किसानों की पारंपरिक उर्वरक विधि (नियंत्रण) के साथ फर्रो सिंचाई शामिल हैं। आम और केले दोनों के लिए तीन प्रकार के मल्चिंग उपचार अपनाए जाते हैं, जिनमें वीडमैट, वोवेन कोयर जियो-टेक्सटाइल मल्चिंग और बिना मल्च (नियंत्रण) शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, सह-फसल के रूप में मसूर और सब्जी मटर को शामिल किया गया है, जिससे न केवल आय में वृद्धि होगी बल्कि मृदा स्वास्थ्य भी बेहतर बना रहेगा।

बहु-उपयोग जल प्रणालियों से उत्पन्न ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी की संभावनाओं पर शोध

इस अध्ययन में, हम कृषि प्रणालियों में जल के बहुआयामी उपयोग जैसे कि फसल उत्पादन, मुर्गी पालन, बागवानी, कृषि वानिकी आदि की गतिशीलता को मात्रात्मक रूप से समझने का प्रयास करेंगे ताकि प्रणाली स्तर पर समग्र ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का आकलन किया जा सके। इसके लिए, हम बंद बक्सा तकनीक का उपयोग करेंगे, जिसके तहत खेतों से साप्ताहिक अंतराल पर सैंपल एकत्र किए जाएंगे। एकत्रित सैंपलों का विश्लेषण गैस क्रोमैटोग्राफ के माध्यम से किया जाएगा ताकि खेत स्तर पर मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन का सटीक अनुमान लगाया जा सके।

हमारा लक्ष्य निम्न-उत्सर्जन और उच्च-उत्पादकता वाली प्रणालियों की पहचान करना है, जो न केवल कृषि उत्पादन को अनुकूलित करें, बल्कि कम ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन वाली टिकाऊ कृषि प्रणाली के लिए मार्ग भी प्रदान करें।

बायोमास पुनर्चक्रण

एक समर्पित कंपोस्टिंग इकाई फसल अवशेषों, बतख की बीट और अन्य जैविक अपशिष्ट को पुनः उपयोग करने के लिए एकीकृत की गई है।

चित्र सं. 5 ड्रिप आधारित फर्टिगेशन प्रणाली से युक्त आम और केला पौधे

कम्पोस्टिंग के माध्यम से बायोमास का पुनर्चक्रण कृषि और जैविक कचरे को पोषक तत्वों से भरपूर खाद में परिवर्तित करता है, जिससे मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है और सतत कृषि को बढ़ावा मिलता है।

विविध गतिविधियों में सौर ऊर्जा का उपयोग

कृषि में सौर ऊर्जा अनुप्रयोग की अपार संभावनायें है। एक सौर इकाई तालाब के किनारे स्थापित किये जाने का प्रस्ताव है, जो ऐरेटर को संचालित करेगी। यह ऐरेटर तालाब के पानी में घुलित ऑक्सीजन के स्तर को बढ़ाने में सहायक होगा। इसके अलावा, यह इकाई रात्रि में ऊर्जा-कुशल प्रकाश भी प्रदान करेगी। सौर ऊर्जा से संचालित विभिन्न नवाचारों को अपनाया जाएगा, जिनमें कीट पकड़ने की युक्ति और एक धान थ्रेशर शामिल हैं, जिसे संस्थान द्वारा विकसित किया गया है। ये नवाचार फसलों को कीटों से बचाने और कटाई उपरांत कृषि प्रक्रियाओं की दक्षता बढ़ाने में मदद करेंगे।

ये उपाय नवीकरणीय ऊर्जा के उपयोग को प्रोत्साहित करते हैं और संसाधनों की दक्षता को बढ़ाते हैं, जिससे टिकाऊ कृषि प्रणालियों को बढ़ावा मिलता है। साथ ही, ये कम-कार्बन एवं पर्यावरण-मित्र प्रथाओं का समर्थन करते हैं, इनका पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान होता है।

भविष्य में कृषि क्षेत्र में जल के बहुआयामी उपयोग को और अधिक प्रभावी और लाभदायक बनाने के लिए मशरूम उत्पादन, मधुमक्खी पालन, गाय, भैंस, बकरी पालन तथा चारा फसलों के समावेश को बढ़ावा दिया जा सकता है। इन सभी घटकों को एकीकृत करके किसानों के लिए एक समग्र और सतत कृषि मॉडल विकसित किया जा सकता है, जिससे जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग हो सकेगा और किसानों की आय में भी वृद्धि होगी।

समग्र लाभ:

इस बहुआयामी मॉडल को अपनाने से किसानों को निम्नलिखित लाभ मिल सकते हैं –

- **जल का कुशल और पुनः उपयोग:** विभिन्न कृषि और पशुपालन गतिविधियों में जल का पुनः उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, मछली पालन के तालाबों के पानी का उपयोग खेतों की सिंचाई में किया जा सकता है।
- **आय के विभिन्न स्रोत:** किसानों को केवल पारंपरिक फसलों पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा, बल्कि पशुपालन, मधुमक्खी पालन, और मशरूम उत्पादन से भी उनकी आय बढ़ेगी।
- **सतत कृषि प्रणाली:** चारा फसलों के समावेश से पशुओं के लिए खाद्य उपलब्धता बनी रहेगी, जिससे पशुपालन लाभदायक होगा और जैविक खाद के माध्यम से भूमि की उर्वरता भी बनी रहेगी।
- **जल संरक्षण एवं पारिस्थितिक संतुलन:** विभिन्न कृषि एवं पशुपालन तकनीकों के समावेश से जल संरक्षण और पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखा जा सकेगा।

इस तरह, जल के बहुआयामी उपयोग को बढ़ावा देने के लिए कृषि में विविधता लाकर किसानों की आय और जल उपयोग दक्षता को बढ़ाया जा सकता है, जिससे वे अधिक समृद्ध और आत्मनिर्भर बन सकें।

निष्कर्ष

जल का बहुआयामी उपयोग मॉडल का उद्देश्य पूर्वी भारत के किसानों के लिए एक जल-स्मार्ट भविष्यगत भूमि-उपयोग प्रणाली विकसित करना है, जो कृषि क्षेत्र की प्रमुख चुनौतियों से निपटने में सहायक होगी। यह न केवल फसल- जल की उत्पादकता को बढ़ाने में योगदान देगा, बल्कि किसानों की आय में वृद्धि और पर्यावरणीय पदचिह्न (कार्बन एवं जल पदचिह्न) को कम करने में भी सहायक सिद्ध होगा।

इस मॉडल के तहत फसल प्रणाली (मैदानी फसलें एवं बागवानी फसलें), बहुवर्षीय वृक्ष, मिश्रित मछली पालन, मुर्गी पालन, मशरूम उत्पादन, कंपोस्ट इकाइयाँ जैसी विविध कृषि गतिविधियों को शामिल किया गया है। इससे किसानों को बदलते जलवायु परिस्थितियों में सालभर आय, रोजगार और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित होगी।

***

बेर की उन्नत बागवानी

महेंद्र कुमार चौधरी [1], डी. के. सरोलिया[1], पवन सिंह गुर्जर[1] एवं वेद प्रकाश[2]

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर[1]
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना[2]

सारांश

बेर एक प्राचीन लोकप्रिय फल है। यह रैमनैसी कुल से संबंधित है तथा जिजीफस जीनस (वंश) के अंतर्गत आता है। इस फल का उत्पत्ति सम्भवत: दक्षिणी चीन, भारत व मलाया में हुआ। इस जीनस के अंतर्गत लगभग 50 जातियाँ (स्पीसीज) हैं, जिनमें लगभग 18-20 भारत में पाई जाती हैं। व्यावसायिक दृष्टि से कुछ ही जातियाँ उपयोगी हैं। हमारे देश में व्यावसायिक दृष्टि से बागवानी के लिये जिजीफस मोरीशियाना तथा चीन में जिजीफस जुजुबा का उपयोग किया जाता है। बेर के पके फल ताजे खाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त पके फलों को सुखाकर छुआरा, कैन्डी व शीतल पेय के रूप में भी उपयोग में लाया जाता है। पके फल में विटामिन सी.ए.बी. तथा शर्करा के अतिरिक्त खनिज पदार्थ, कैल्शियम, मैग्नीशियम व जस्ता प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसके उत्पाद पोषण, औषधीय स्वाद और आर्थिक महत्व के साथ जीवन शैली का अभिन्न अंग हैं। बेर की उन्ननत बागवानी और मूल्य संवर्धन उत्पाद द्वारा ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया जा सकता हैं।

परिचय

बेर के पौधे में कुछ ऐसे गुण हैं जिसके कारण यह शुष्क क्षेत्रों में खेती के लिये बहुत ही सफल फलदार वृक्ष है। इन्हीं गुणों के कारण इसे बारानी का बादशाह, शुष्क फलों का राजा, गरीब आदमी का फल इत्यादि कहा जाता है। इसकी जड़ मूसलादार होती है जो मिट्टी के कठोर सतह को तोड़कर काफी गहराई तक पहुंचकर निचली सतह से जल शोषित कर पौधे को स्वस्थ रखती है। अन्य फल वृक्षों की तुलना में इसके पौधों को बहुत कम पानी की आवश्यकता पड़ती है। इसकी बागवानी से कम लागत में अधिक आमदनी ले सकते हैं। बेर की खेती भारत के सभी प्रान्तों में सीमित क्षेत्रों में होती है किन्तु मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र व आंध्र प्रदेश में अपेक्षाकृत अधिक होती है।

तालिका 1. महत्वपूर्ण किस्मों के बेर फलों का पोषण मूल्य

संघटक	किस्में				
	गोला	बनारसी कड़ाका	उमरान	कैथली	थार सेविका
गूदा (%)	95	96-97	93-96	96-97	95-96
नमी (%)	80-82	81	78	-	82
बीज (%)	4.7	3.9	4.0.	3.5	-
टीएसएस (%)	17-20	13-17	18-20	16-18	22-24
विटामिन'सी'(mg /100gm)	70.00	66-110	73-103	89-130	88

तालिका 2. बेर की विभिन्न प्रजातिया उनकी उत्पत्ति और वितरण

प्रजातियाँ	प्राकृतिक वितरण या खेती	आर्थिक उपयोग
ज़िज़िफ़स जूजूबे	उत्पति स्थल चीन	खाने योग्य फल, छाल का उपयोग टैनिंग के लिए और चारे के रूप में पत्तियां,
ज़िज़िफ़स मॉरिटियाना	पंजाब, यूपी, बिहार और राजस्थान में खेती की जाती है	खाने योग्य फल, छाल का उपयोग टैनिंग के लिए और चारे के रूप में पत्तियां,
ज़िज़िफ़स न्यूमुलेरिया	उत्तर-पश्चिम भारत और ए.पी. में पाया जाता है।	खाने योग्य फल, चारे के रूप में पत्तियां, टैनिंग के लिए छाल

ज़िज़िफ़स ओनोप्लिया	उत्तर और प्रायद्वीपीय भारत में पाया जाता है	खाने योग्य फल, चारे के रूप में पत्तियां, टैनिंग के लिए छाल
ज़िज़िफ़स रूगेसा	यू.पी., बिहार, एम.पी. और पश्चिमी प्रायद्वीप में पाया जाता है।	खाने योग्य फल
ज़िज़िफससलीवा	पंजाब और पश्चिम बंगाल में पाया जाता है	खाने योग्य फल
ज़िज़िफ़स ज़ाइलोपाइरस	मध्यप्रदेश में पाया गया	लाख होस्ट और टैनिंग के लिए
ज़िज़िफ़स रोटन्डिफ़ोलिया	पश्चिम भारत मुख्यतः राजस्थान	खाने योग्य फल, लकड़ी, मूलवृन्त के रूप में उपयोग

किस्में : देश में बेर की लगभग 200 से भी अधिक किस्मों को सूचीबद्ध किया गया है, लेकिन कुछ प्रजातियाँ ही वाणिज्यिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। इन किस्मों का विकास विभिन्न क्षेत्रों में फलों के भौतिक तथा रासायनिक गुणों — जैसे फल का रंग, आकार, वजन, मिठास व खटास की मात्रा — के आधार पर चयन द्वारा किया गया है । व्यावसायिक किस्मों का वर्गीकरण फलों के पकने के समय के आधार पर किया गया है।

बेर की गोला किस्म

सेब बेर

काठा बेर

बनारसी पेवन्दी

सनौर -5

उमरान

तालिका 3. राज्यवार बेर की व्यावसायिक किस्में (मुख्यत: जीजीफस मौरीसियाना)

राज्य	किस्में		
	अगेती किस्में	मध्य मौसमी किस्में	देर से तैयार होनेवाली किस्में
उत्तर प्रदेश	नरमा वाराणसी, दिल्ली गोला, बनारसी गोला	बनारसी कड़ाका, मुंडिया बनारसी पेवंदी, कैथली	जोगिया, अलीगंज
राजस्थान	गोला, सेब, थार सेविका, पेवंदी	मुंडिया, कैथली, छुहारा	उमरान, गोमा कीर्ति, थार मालती
पंजाब	नाज़ुक,नोकी,नारनौल, रोहतकीगोला, चयनित सफेदा	बनारसी कड़ाका, दंदन, कैथली,सनौर-2,वलैती,थॉर्नलेस	उमरान
हरियाणा	गोला, सफेदा, चयनित सफेदा, नारनौल, सियो, चोंचल	कैथली, सनौर-5, मुंडिया, बनारसी कड़ाका	उमरान, पठानी, ज़ेड जी 2, ज़ेड जी -3
गुजरात	गोला	मेहरुन	गोमा कीर्ति, अजमेरी, चमेली,रांदेरी
महाराष्ट्र	शम्बर, बदामी, गुल, मानुकी	मेहरुन, खरकी, दराखी	-

मूलवृन्त का चयन: बेर में मूलवृन्त के चयन बाग की स्थापना में महत्व पूर्ण भूमिका निभाता हैं जो फलों की वृद्धि, उपज और गुणवत्ता को प्रभावित करता हैं। बेर के विभिन्न प्रजातियों के मूलवृन्तों पर व्यावसायिक किस्मों का परीक्षण किया गया। पाँच वर्ष पुराने चार रूटस्टॉक्स अर्थात् ज़िज़िफ़स नुमुलेरिया, ज़िज़िफ़स स्पीनाक्रिस्टी, ज़िज़िफ़स मॉरिटियाना और ज़िज़िफ़स रोटुन्डिफ़ोलिया में से सबसे अधिक फल उपज 43.70 किलोग्राम/पौधा ज़िज़िफ़स रोटुन्डिफ़ोलिया में देखी गई, इसके बाद ज़िज़िफस मॉरिटियाना (36.98किलोग्राम/पौधा) जब गोला किस्म का अंकुर फूटा। (प्रसाद एट आल., 2006)।

प्रवर्धन: व्यावसायिक दृष्टि से बाग़ लगाने के लिये कायिक विधि से तैयार बेर के पौधे ही उपयोग में लाना चाहिए। बेर का प्रवर्धन चश्मा विधि द्वारा किया जाता है। चश्मा की कई विधियाँ जैसे पैबंद चश्मा (पैच बडिंग), ढाल चश्मा व छल्ला चश्मा (रिंग बडिंग) प्रचलित है। व्यवसायिक तौर पर पौधे बनाने के लिए पैबंद चश्मा (पैच बडिंग) सबसे सफल व प्रचलित विधि है इस विधि से पौध तैयार करने के लिये मूलवृंत (बीजू पौधा) व उन्नत किस्म की कलिकायुक्त टहनी (सांकुर) की आवश्यकता पड़ती है।

चश्माचढ़ाना (बडिंग): चश्मा चढ़ाने के लिए पैबंदी या विरूपित पैबंदी विधि अपनाना चाहिए। चश्मा चढ़ाने का कार्य 15 जून से 15 सितम्बर तक अच्छी सफलता के साथ किया जा सकता है। तैयार मूलवृंत पर चश्मा की क्रिया भूमि सतह से 15 सें.मी. की ऊँचाई पर किया जाता है। अधिक ऊँचाई पर कलिकायन से कलियों के फुटाव में कमी तथा अच्छा विकास नहीं होता है। पैबंदी चश्मा विधि के लिये मूलवृंत पर उचित ऊँचाई पर आयताकार निशान (2.5-3 सें.मी. लम्बा व तने की आधी मोटाई तक) तेज चाकू से लगाकर छाल को आयत के आकार में निकाल दिया जाता है। प्रत्यारोपित किस्म की समान आकार वाले कली साँकुर टहनी से सावधानीपूर्वक निकालकर मूलवृंत पर बनाये गये स्थान पर अच्छी तरह बैठा दिया जाता है। टहनी पर यदि पत्तियाँ हों तो पत्तियों को इस तरह निकालें कि पत्ती की डंठल न टूटें।

कलिका को बैठाने के बाद पोलीथीन की पट्टी से कसकर बाँधा जाता है। बाँधते समय ध्यान रहे कि कली की आँख खुली रहे। चश्मा चढ़ाने के बाद मूलवृंत का ऊपरी कुछ हिस्सा काट कर निकाल दिया जाता है। प्रत्यारोपित कलिका जब 8-10 पत्तियों वाली टहनी बन जाये तो पौधे स्थानांतरण योग्य हो जाते हैं। कलिकायन की इस विधि से लगभग 90 प्रतिशत तक सफलता मिलती है।

चश्मा चढ़ाने के बाद मूलवृंत पर जुड़ाव बिंदु से नीचे जितनी भी कलियाँ निकल रही हों, उन्हें समय-समय पर निकालते रहते हैं।

रोपण विधि: फलदार वृक्ष प्राय: वर्गाकार विधि द्वारा लगाये जाते हैं। जहाँ लाइन से लाइन तथा पौध से पौध की दूरी समान होती है। बेर का बाग़ 6 x 6 मीटर की दूरी पर लगाया जाना चाहिए। बेर के पौधों के बीच में अंतरसस्यन दलहनी फसलें भी उगाकर किसान दुगुना मुनाफा कमा सकते हैं।

गड्ढे की खुदाई: क्षारीय व लवणीय तथा मुरमयुक्त पथरीली मृदा में इसका विशेष महत्व है। इस तरह की भूमि में 1 x 1 x 1 मी. आकार के गड्ढों की खुदाई करके कठोर परत व कंकड़ की परत को तोड़कर निकालना आवश्यक है। जरूरत के अनुसार गड्ढे की गहराई बढ़ाई जा सकती है।

गड्ढे की भराई: यदि मिट्टी उपजाऊ है तो गड्ढे की दो तिहाई ऊपर की मिट्टी + 50 कि.ग्रा. गोबर की खाद + 100 ग्रा. बी.एच.सी. का मिश्रण का

उपयोग किया जाता है। ऊसर प्रभावित क्षेत्रों में गड्ढे की मिट्टी के साथ 2-3 टोकरी रेत+50 किग्रा. गोबर की खाद + 5 किग्रा. बी.एच.सी.के मिश्रण द्वारा गड्ढे भरे जाते हैं। पथरीली जमीन में तालाब या अच्छे खेत की मिट्टी का प्रयोग करें। गड्ढे जमीन से 10 सें.मी. ऊपर तक भरकर खेत में पानी लगा देते हैं, जिससे गड्ढे की मिट्टी अच्छी तरह बैठ जाय।

पौधा-रोपाई: बेर की बागवानी प्रायः शुष्क-अर्धशुष्क क्षेत्रों में की जाती है जो पूरी तरह वर्षा पर आधारित है। इसलिए पौध स्थानांतरण वर्षा ऋतु (जुलाई–सितम्बर) में किया जाता है। नर्सरी से पौध निकालते समय ध्यान रखें कि जड़ों को कम से कम क्षति पहुँचे। यदि पौध पॉलीथीन की थैली में उगाये गये हैं तो थैली को फाड़कर निकाल दें।

सिंचाई की सुविधा होने की दशा में बेर के पौधे जनवरी–फरवरी में भी लगाये जा सकते हैं। इस समय रोपाई के लिए पौधों के साथ मिट्टी की पिंडी निकालने की आवश्यकता नहीं होती। इस तरीके से लगाने में स्थानांतरण सफलता भी अच्छी रहती है।

पौध सदैव शाम के समय लगाना चाहिए तथा रोपाई पश्चात हल्की सिंचाई अवश्य करें।

सिंधाई व काट-छाँट: इसकी कटाई-छंटाई अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बेर में छंटाई फलों की कटाई के बाद अप्रैल के अंतिम सप्ताह से मई के दूसरे पखवाड़े में की जानी चाहिए, जब उत्तर भारत में पेड़ अपने पत्ते गिरा देते हैं। छंटाई का समय वानस्पतिक विकास, पेड़ की छतरी को निर्धारित करता है और कलियों के अंकुरण को आगे बढ़ाता है तथा जल्दी फूल और फल लगने को प्रेरित करता है। छंटाई की कम तीव्रता से फल की उपज और गुणवत्ता में सुधार होता है।

हल्की सर्दी वाले उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में, दिसंबर-जनवरी के दौरान वर्षा होती है और गर्मियों में वर्षा की शुरुआत होती है (उदाहरण के लिए दक्षिणी भारत में तमिलनाडु)। छंटाई जनवरी से अप्रैल तक किसी भी समय की जा सकती है और फलों की परिपक्वता को नियंत्रित करना भी संभव है ताकि वांछित समय पर फल लग सकें। महाराष्ट्र, पश्चिमी भारत में छंटाई का सबसे अच्छा समय अप्रैल के अंत से पहले है।

कटाई पश्चात ब्लाइटाक्स कवकनाशी का गाढ़ा घोल बनाकर कटे स्थान पर लगा देते हैं। (राजबीर सिंह, 2008)

सिंचाई: जड़ें मूसलाधारी एवं मरुदभिद प्रकृति की होने के कारण यदि एक बार स्थापित हो जाती हैं तो इसे बहुत कम देख-रेख की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ तक कि यह असिंचित क्षेत्रों में भी अच्छी पैदावार देने की क्षमता रखता है। यदि सिंचाई के साधन उपलब्ध हों तो मध्य जून में पहली सिंचाई की जाती है तथा इसी के साथ खाद एवं उर्वरक की पहली मात्रा भी दे दी जाती है।

वर्षा ऋतु के प्रारम्भ के साथ पौधे में नई फुटाव शुरू हो जाती है, जिसके लिए वर्षा का पानी ही पर्याप्त है। सितम्बर-अक्टूबर फूल निकलने का समय है। इस समय बाग की सिंचाई नहीं की जाती है। मध्य नवम्बर तक फलन पूरा हो जाता है।

फलों की वृद्धि के लिए बाग में नमी की आवश्यकता पड़ती है, अन्यथा काफी संख्या में फल गिर जाते हैं। यदि संभव हो तो अच्छी पैदावार के लिए इस समय एक सिंचाई आवश्यक है। इसके बाद 1-2 सिंचाई जनवरी-फरवरी में की जाती है, जो पैदावार में वृद्धि तथा अच्छे गुण वाले फल प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

नये लगाये गये बाग की सिंचाई 15-20 दिनों के अंतराल पर थाला विधि से करते हैं जिससे पौधे अच्छी तरह स्थापित हो जाएँ। प्रत्येक सिंचाई के बाद बाग से खरपतवार निकालते रहते हैं, जिससे नमी व पोषक तत्व सुरक्षित रहते हैं।

खाद एवं उर्वरक: एक वर्ष विकसित पेड़ (5 वर्ष या अधिक) के लिए 40-50 किग्रा. गोबर की खाद तथा 1.50 से 2.50 किग्रा. यूरिया प्रतिवर्ष पर्याप्त है। आयु के अनुसार इसे कम करके डाला जाना चाहिए।

कम्पोस्ट या गोबर की खाद की पूरी मात्रा तथा आधी यूरिया की मात्रा जून-जुलाई में तथा शेष यूरिया की मात्रा फलन के बाद नवम्बर-दिसम्बर में दी जानी चाहिए। खाद एवं उर्वरक की यह मात्रा पेड़ के तने से कुछ दूरी से, जहाँ तक पेड़ का फैलाव हो, उसके बीच छिटककर मिट्टी में मिला दी जाती है।

उर्वरक देने के बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। यदि वर्षा की सम्भावना है या वर्षा कुछ पहले हुई हो तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। बारानी क्षेत्रों में 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का दो पर्णीय छिड़काव—पहला फूल लगने के पहले तथा दूसरा फलन के बाद—लाभदायक है। आवश्यकतानुसार फास्फोरस तथा पोटाश का प्रयोग भी किया जाना चाहिए।

फलों की तुड़ाई: फलों की तुड़ाई उत्तरी भारत में किस्म के अनुसार जनवरी-मार्च तक चलती है। दक्षिण भारत में तुड़ाई का मौसम नवम्बर से जनवरी तक होता है। पौधे पर सभी फल एक समय पर पककर तैयार नहीं होते, अतः तुड़ाई 4-5 बार में की जाती है।

सामान्यतः हाथ से तुड़ाई की जाती है। तुड़ाई परिपक्व अवस्था पर ही करनी चाहिए। इसकी पहचान के लिए फल जब अपनी किस्म के अनुरूप रंग का हो जाए तब तोड़ा जाना चाहिए।

तुड़ाई उपरांत अच्छे बाजार भाव व लम्बे समय तक भंडारण के लिये फलों का वर्गीकरण आवश्यक है। अतः तुड़ाई के समय किस्म के अनुसार अलग-अलग रखा जाता है। इसके बाद फलों को उसके रंग व आकार के अनुसार छाँटकर बाँस की टोकरी, लकड़ी या गत्ते के डिब्बों में बाजार भेजा जाता है।

उपज: इसकी वानस्पतिक वृद्धि तेज होती है तथा पहली फसल बाग लगाने के 2-3 वर्ष बाद मिलती है। इसके पौधे प्रति वर्ष अच्छी पैदावार देते हैं। वानस्पतिक विधि से तैयार 8-10 वर्ष के एक पेड़ से किस्म के अनुसार 80-200 किग्रा. तक फल प्रति वर्ष आसानी से मिल जाते हैं।

***

सूक्ष्म जलवायु विनियमन के लिए कृषि-भौतिकीय तकनीकें

वेद प्रकाश, आरती कुमारी, कीर्ति सौरभ, आशुतोष उपाध्याय, अकरम अहमद, सोनका घोष एवं अनुप दास
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

सूक्ष्म जलवायु विनियमन का उद्देश्य फसलों के आसपास के तात्कालिक पर्यावरणीय परिस्थितियों को संशोधित करना है ताकि फसल की वृद्धि को अनुकूलित किया जा सके और पर्यावरणीय तनावों के प्रभाव को न्यूनतम किया जा सके, विशेष रूप से अनियमित जलवायु वाले क्षेत्रों में। सूक्ष्म जलवायु, जिसमें तापमान, आर्द्रता, वायु गति और सौर विकिरण जैसे कारक शामिल हैं, फसल स्वास्थ्य, उपज और गैर-जीवित तनावों के प्रति सहनशीलता निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कृषि-भौतिकीय तकनीकें भौतिक सिद्धांतों और प्रौद्योगिकियों का उपयोग करके फसलों के लिए अनुकूल परिस्थितियां बनाती हैं, जिससे जलवायु परिवर्तनशीलता और चरम मौसम की घटनाओं से उत्पन्न चुनौतियों का समाधान किया जा सकता है। छायांकन, मल्चिंग और वायु अवरोध जैसी तकनीकें पानी के उपयोग की दक्षता में सुधार करती हैं और फसलों की बेहतर वृद्धि के लिए स्थिर सूक्ष्म पर्यावरण तैयार करती हैं।

प्रमुख प्रक्रियाएं जो सूक्ष्म जलवायु में सुधार करती हैं:

1. **हीट लोड प्रबंधन** – सर्दियों में हीट ट्रैपिंग द्वारा तापमान बढ़ाना या गर्मियों में हीट इवेशन द्वारा तापमान कम करना।
2. **जल संतुलन प्रबंधन** – जड़ क्षेत्र में पानी को संरक्षित करने के लिए स्ट्रिप क्रॉपिंग, कॉन्टूर क्रॉपिंग, टेरेसिंग, बंडिंग जैसी तकनीकों का उपयोग।
3. वायु गति नियंत्रण – वायुरोधक या शेल्टर बेल्ट द्वारा वायु की गति को नियंत्रित करना।

सूक्ष्म जलवायु सुधार की प्रमुख तकनीकें:

1. कृषिवोल्टीय प्रणाली

कृषिवोल्टीय प्रणाली में सौर पैनल और कृषि भूमि को एकीकृत किया जाता है, जिससे एक ही भूखंड पर फसल उत्पादन और सौर ऊर्जा उत्पादन दोनों संभव होते हैं (चित्र 1)। यह नवोन्मेषी दृष्टिकोण न केवल टिकाऊ ऊर्जा उत्पादन में योगदान देता है, बल्कि माइक्रोक्लाइमेट को भी अनुकूलित करता है, जिससे फसल की उत्पादकता और सहनशीलता में वृद्धि होती है। सौर पैनल छाया प्रदान करके सौर विकिरण की तीव्रता को कम करते हैं, जिससे गर्मियों में गर्मी तनाव को कम किया जा सकता है ।

2. शेड नेट्स :

शेड नेट्स का उपयोग फसलों पर पड़ने वाली धूप की मात्रा को कम करने के लिए किया जाता है। ये विभिन्न प्रतिशत (जैसे 30%, 50%, 75%) में उपलब्ध होते हैं। शेड नेट्स फसल की वृद्धि में सुधार करते हैं और छाया के माध्यम से तापमान को कम करते हैं। यह सब्जियों, फूलों और नर्सरी पौधों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

3. विंडब्रेक्स और शेल्टर बेल्ट्स :

चित्र 1: सामान्य कृषिवोल्टीय प्रणाली का चित्रात्मक प्रदर्शन

विंडब्रेक्स पेड़ों या झाड़ियों की पंक्तियां होती हैं जो खेतों को तेज हवाओं से बचाती हैं। ये मिट्टी के कटाव को रोकते हैं, फसल की क्षति को कम करते हैं और जल वाष्पीकरण की दर को घटाते हैं।

4. पॉलीहाउस और ग्रीनहाउस

पॉलीहाउस और ग्रीनहाउस संरचनाएं फसलों को बाहरी जलवायु परिस्थितियों से बचाने और अनुकूलित वातावरण प्रदान करने के लिए डिज़ाइन की जाती हैं। ये संरचनाएं तापमान और आर्द्रता को नियंत्रित करके सालभर उच्च मूल्य वाली फसलों की खेती को संभव बनाती हैं।

5. मल्चिंग

मल्चिंग में फसल के आसपास की मिट्टी की सतह को जैविक (जैसे पुआल, घास) या अजैविक सामग्री (जैसे प्लास्टिक फिल्म) से ढक दिया जाता है। यह तकनीक मिट्टी की नमी को बनाए रखती है, तापमान को नियंत्रित करती है और खरपतवारों को बढ़ने से रोकती है।

सूक्ष्म जलवायु विनियमन के लाभ:

- **फसल लचीलापन बढ़ाना:** गर्मी की लहरों, पाला और तेज़ हवाओं के प्रभाव को कम करके फसल वृद्धि में स्थिरता सुनिश्चित करता है।
- **जल संरक्षण:** मल्चिंग और शेड नेट्स जैसी तकनीकें पानी की आवश्यकता को कम करती हैं।
- **फसल की बढ़ती अवधि का विस्तार:** नियंत्रित वातावरण में सालभर फसल उगाना संभव होता है।
- **संसाधन दक्षता में सुधार:** प्रकाश, तापमान और आर्द्रता को अनुकूलित करके संसाधनों की बर्बादी कम की जा सकती है।

सूक्ष्म जलवायु विनियमन फसलों के आसपास की पर्यावरणीय परिस्थितियों को संशोधित कर फसल वृद्धि को अनुकूलित करने और पर्यावरणीय तनाव के प्रभाव को कम करने की एक प्रभावी प्रक्रिया है। बदलती जलवायु और चरम मौसम की चुनौतियों का समाधान करने के लिए कृषिवोल्टीय प्रणाली, शेड नेट्स, विंडब्रेक्स, पॉलीहाउस, और मल्चिंग जैसी कृषि-भौतिकीय तकनीकें तापमान, आर्द्रता, वायु गति और सौर विकिरण को नियंत्रित कर अनुकूल वातावरण प्रदान करती हैं। इन तकनीकों से जल संरक्षण, गर्मी तनाव और ठंड से बचाव, मिट्टी की नमी संरक्षण और फसल की बढ़ती अवधि में विस्तार संभव है। इन उपायों से फसलें पाला, तेज़ हवाओं और गर्मी की लहरों जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों से सुरक्षित रहती हैं, जिससे फसल की उत्पादकता बढ़ती है और कृषि प्रणालियां अधिक टिकाऊ बनती हैं। इसलिए, सूक्ष्म जलवायु विनियमन कृषि को अधिक लचीला और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से सुरक्षित बनाने के लिए एक व्यावहारिक और दीर्घकालिक समाधान है।

***

अल्ट्रासोनोग्राफी – बकरियों के प्रजनन प्रबंधन हेतु प्रभावी तकनीक

रजनी कुमारी[1], रमेश तिवारी[2], प्रदीप कुमार राय[1], मनोज कुमार त्रिपाठी[1], संजय कुमार[2], शंकर दयाल[1], ज्योति कुमार[1], राकेश कुमार[1], पी.सी. चंद्रन[1], अमिताभ डे[1] एवं कमल शर्मा[1]
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना[1]
पशु चिकित्सा सर्जरी एवं रेडियोलॉजी विभाग, बीवीसी, पटना[2]
[1]पशु पोषण विभाग, बी.वी.सी., पटना[2]

परिचय एवं इतिहास

अल्ट्रासाउंड तकनीक का उपयोग 1960 के दशक से, जुगाली करने वाले छोटे पशुओं जैसे की बकरियों, के प्रजनन प्रबंधन में किया जाता रहा है। 1970 के दशक में, पोर्टेबल ए- और बी-मोड इकाइयों के उपयोग से कृषि क्षेत्रमें इसकी उपयोगिता में वृद्धि आयी। बी-मोड इकाइयों ने भ्रूण के विभिन्न भागों को एक छोटी स्क्रीन पर देखना संभव बना दिया, जिससे गर्भावस्था का पता लगाना और भ्रूण की गिनती अधिक सटीक हो गई। इसके विपरीत, ए-मोड इकाइयाँ भी लंबे समय से सुलभ हैं, हालाँकि, वे केवल ध्वनि तरंग संचरण में भारी बदलावों को पहचानने की अपनी क्षमता से सीमित हैं। ये इकाइयाँ "धड़कन" के साथ-साथ प्रकाश संकेत के निर्वहन से गर्भावस्था को पहचानती हैं। इस तथ्य के कारण कि वे भ्रूण की संख्या या गर्भावस्था के चरण को निर्धारित करने में असमर्थ हैं, ये उपकरण अपने आवेदन के दायरे और सटीकता दोनों में सीमित हैं। एक भरा हुआ मूत्राशय, गर्भावस्था का पता लगाने में गलत सकारात्मक परिणाम दे सकता है। बी-मोड इकाइयों में हुई संवहनशीलता सम्बंधित सुधार एवं रिमोट स्ट्रीमिंग सुधार (कुछ इकाइयां टैबलेट और टेलीफोन पर अल्ट्रासाउंड चित्रों के प्रक्षेपण को ध्यान में रखती हैं) ने फ़िल्टरिंग की गति और सुविधा को बढ़ाया है। इसके अलावा, हाल ही में बी-मोड उपकरणों ने अपेक्षाकृत सस्ते मॉडल में भी रिज़ॉल्यूशन में सुधार किया है, जिससे क्षेत्र में पहले और अधिक सटीक भ्रूण स्कैनिंग की अनुमति मिलती है। इन रिज़ॉल्यूशन और पोर्टेबिलिटी उन्नति और लागत में कमी के परिणामस्वरूप इस तकनीक का पशु पालन क्षेत्र में उपयोग बढ़ सकता है।

अल्ट्रासाउंड अनुप्रयोग

गर्भावस्था की जांच : बकरी की ट्रांस-एब्डॉमिनल जांच, गर्भावस्था को पहचानने के लिए एक अत्यंत कुशल और सटीक विधि है। गर्भावस्था का 40-70वां दिन ट्रांसएब्डॉमिनल स्कैनिंग के लिए सबसे अच्छा समय है। 3-5 मेगाहर्ट्ज की परिवर्तनीय आवृत्ति लीनियर प्रोब या 3 मेगाहर्ट्ज की सेक्टर स्कैनिंग प्रोब, सबसे अधिक बार उपयोग की जाने वाली प्रोब हैं। उच्च रिज़ॉल्यूशन इकाइयों का उपयोग करके, ट्रांसएब्डॉमिनल स्कैनिंग गर्भावस्था का जल्द से जल्द पता लगा सकती है। हालाँकि, क्योंकि भ्रूण छोटा होता है और इस स्तर पर आसानी से छूट जाता है, इसलिए 40 दिनों की सिफारिश की जाती है। इस अनुप्रयोग में रुचि रखने वाले बकरी पालकों को सलाह दी जाती है कि यदि किसी चयनित बकरे से ही, प्रजनन करना है तो वे बकरे से प्रजनन करने के बाद उस बकरी को 2 एस्ट्रस चक्रों (42 दिन) तक सीमित रखें। प्रजनन के 40 दिन बाद स्कैनिंग निर्धारित की जानी चाहिए।

गर्भावस्था के चरण का निर्धारण :

एक अनुभवी चिकित्सक, ट्रांसएब्डॉमिनल स्कैनिंग द्वारा गर्भावस्था के चरण (गर्भावस्था के मध्य में गर्भावधि उम्र के 4 दिनों के भीतर) का सटीक आंकलन कर सकता है। अत्यधिक कुशल चिकित्सक, प्लेसेंटोम आकार से द्रव स्थान परिमाण, भ्रूण के आकार एवं भ्रूण की हड्डी के घनत्व में परिवर्तन के सापेक्ष अनुपात के आधार पर, गर्भावस्था के चरण का सटीक अनुमान लगा लेते है। भ्रूण पुटिका या भ्रूण की अन्य शारीरिक विशेषताओं (बाई- पराईटल व्यास, क्राउन से रंप की लंबाई, जुड़ी हुई मेटाकार्पल हड्डी की लंबाई) का आकार भी गर्भावस्था के आरंभ में मापा जा सकता है। इस माप को नोमोग्राफ या तालिका के ज़रिये भ्रूण की उम्र का सटीक अनुमान लगाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। हालाँकि, इनमें से प्रत्येक भ्रूण माप के लिए इष्टतम सीमाएँ ओवरलैप होती हैं जैसे -भ्रूण पुटिका दिन 28-40, क्राउन से रंप की लंबाई दिन 40-70, और बाई- पराईटल व्यास दिन 40-100। हालाँकि, जैसे-जैसे गर्भावस्था 70वें दिन से आगे बढ़ती है, इन मापों को लेना अधिक कठिन हो जाता है।

भ्रूण संख्या का निर्धारण :

भ्रूण की संख्या का सटीक अनुमान गर्भावस्था के 40-70वें दिन भी किया जा सकता है। इस तथ्य के बावजूद कि, गर्भावस्था के मध्य से लेकर पूर्ण अवधि तक (फ़िल्टरिंग के घंटे के बाद, भ्रूण के गुजरने और पुनः अवशोषण की नियमित घटना के कारण) जन्म रिकॉर्ड के आधार पर भ्रूण संख्या मापना मुश्किल है, प्रतिभाशाली विशेषज्ञ भ्रूण की संख्या का पूर्वानुमान 95% की सटीकता दर से लगा लेते है। एकल या जुड़वां गर्भधारण की तुलना में, उच्च क्रम के गुणकों (ट्रिपलेट या अधिक

गर्भधारण) में भ्रूण की संख्या की आंकलन अधिक त्रुटी संभावी होता है।

अंडाशय की अल्ट्रासोनिक इमेजिंग अंडाशय की अल्ट्रासोनिक इमेजिंग जांच द्वारा प्रचुर मात्रा में जानकारी मिलती है, जिसका उपयोग बकरी की पुनर्योजी स्थिति का निदान करने, उपयुक्त उपचार या गर्भाधान हस्तक्षेप चुनने के लिए किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, प्रजनन के बाद गर्भावस्था की प्रारंभिक जांच करते समय, कॉर्पस ल्यूटियम की उपस्थिति या अनुपस्थिति गर्भावस्था की स्थिति के निदान में सहायता करती है। अण्डाशय विकृतियां एवं रोग जैसे, "स्थिर अंडाशय", फौलिकुलर एवं ल्यूटिनाइज्ड सिस्ट, मौजूद होने पर आसानी से पहचाने जा सकते हैं। मौजूद होने पर, कॉर्पस ल्यूटियम का आकार और स्थान (यानी, बायां बनाम दायां अंडाशय) गर्भाशय के भीतर गर्भाधान के स्थान को इंगित करता है (चित्र 1, 2, 3 एवं 4)।

अंडाशय के फौलिकल्स – द्रव से भरी संरचनाएं हैं जो ग्रैनुलोसा कोशिकाओं की एक आंतरिक परत और थेकल कोशिकाओं की एक बाहरी परत से घिरी होती हैं। चूंकि, द्रव अल्ट्रासाउंड तरंगों को परावर्तित करने के बजाय अवशोषित करता है, इसलिए द्रव से भरी संरचनाएं जैसे कि एंट्रल फौलिकल्स, इकोजेनिक अंडाशय ऊतक से घिरी काली गोलाकार संरचनाओं के रूप में दिखाई देती हैं। अधिकांश पशु चिकित्सा ग्रेड अल्ट्रासाउंड स्कैनर 2 से 3 मिमी या उससे अधिक व्यास वाले अंडाशय फौलिकल्स को चिन्हित कर सकते हैं। बड़े एंट्रल फौलिकल्स को सीरियल स्कैनिंग सत्रों के दौरान आसानी से ट्रैक किया जा सकता है।

कॉर्पोरा ल्यूटिया – यह एक क्षणिक अंतःस्रावी ग्रंथि है जो ओव्यूलेशन के बाद उन ऊतकों से बनती है, जो पहले अंडाशय के फौलिकल्स का निर्माण करते थे। अतः इसे फौलिकुलर विकास के अंतिम चरण के रूप में देखा जा सकता है। कॉर्पोरा ल्यूटिया, अंडाशय के भीतर स्पष्ट रूप से इकोजेनिक क्षेत्रों के रूप में दिखाई देते हैं। हालाँकि अंडाशय के फौलिकल्स का आकलन करने के लिए अल्ट्रासाउंड, रेक्टल परीक्षण तकनीक की तुलना में अधिक सटीक है, परन्तु, इनमें से कोई भी तकनीक, विकासशील कॉर्पोरा ल्यूटिया और पुराने प्रतिगामी कॉर्पोरा ल्यूटिया के बीच अंतर जांच नहीं पाती है।

अल्ट्रासोनिक इमेजिंग की नैदानिक सीमाएं अधिकांश परिस्थितियों में, नियमित प्रजनन प्रबंधन के लिए अल्ट्रासाउंड के व्यावहारिक अनुप्रयोग में एक निश्चित समय पर एक ही अल्ट्रासाउंड जांच की जाती है, न कि क्रमिक अल्ट्रासाउंड जांच की जाती है। एक ही अल्ट्रासाउंड जांच के दौरान फॉलिकल (जैसे, प्रमुख, अधीनस्थ, बढ़ता हुआ, पीछे हटता हुआ) या कॉर्पस ल्यूटियम की शारीरिक स्थिति निर्धारित नहीं की जा सकती। अल्ट्रासोनिक इमेजिंग किसी संरचना की शारीरिक विशेषताओं को पहचानने में सहायता करती है, लेकिन शारीरिक या अंतःस्रावी स्थिति के बारे में बहुत कम जानकारी देती है। उदाहरण के लिए, अंडाशय के सिस्ट की शारीरिक विशेषताओं जैसे व्यास और ल्यूटियल ऊतक की उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है; हालाँकि, प्लाज्मा हार्मोन सांद्रता जैसी कार्यक्षमता के बारे में जानकारी नहीं दी जा सकती। परन्तु इसमें अपवाद हो सकते हैं, जैसे भ्रूण के हृदय

चित्र- 1- अल्ट्रासाउंड मशीन

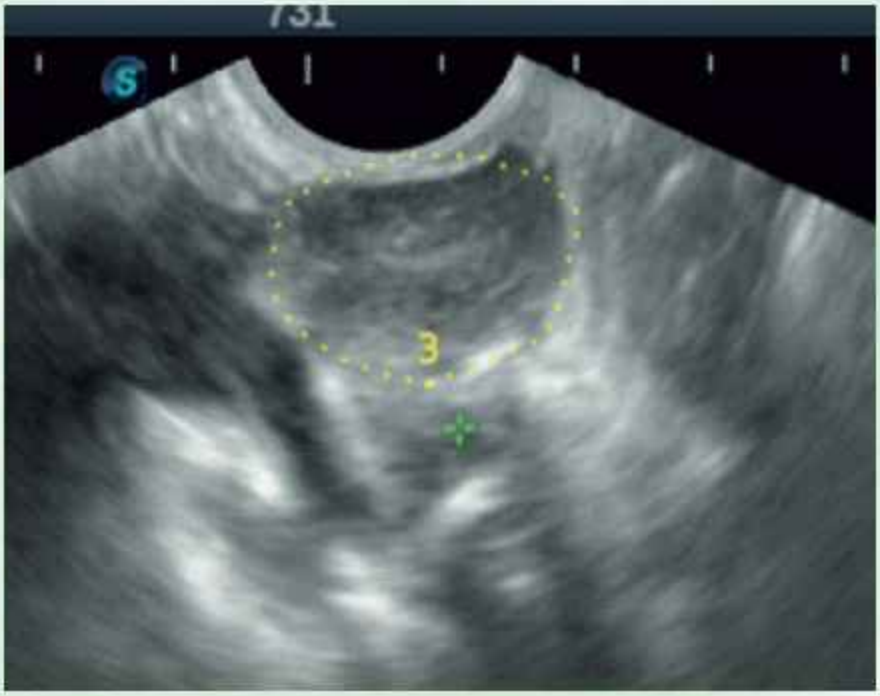

चित्र- 2 - अंडाशय का अल्ट्रासाउंड स्कैनिंग चित्र - जिसमे कोई भी संरचना उपस्थित नहीं है.

चित्र – 3 : अंडाशय का अल्ट्रासाउंड स्कैनिंग चित्र – जिसमें फौलिकल्स (काली गोलाकार संरचना) एवं कॉर्पोरा ल्यूटिया (धुंधले रंग का इकोजेनिक क्षेत्र के रूप में), दोनों ही मौजूद हैं।

चित्र – 4 : अंडाशय का अल्ट्रासाउंड स्कैनिंग चित्र – जिसमें फौलिकल्स (काली गोलाकार संरचना) का माप किया गया है।

की धड़कन का अवलोकन, व्यवहार्य भ्रूण का संकेतक होता है। अल्ट्रासोनिक इमेजिंग का उपयोग, जब उपचार या प्रजनन हस्तक्षेप के लिए किया जाना हो, तब इसे अत्यधिक सावधानी से करना चाहिए। अंडकोष की फिजियोलॉजी और उन तंत्रों की गहन समझ, जिसके द्वारा हार्मोनल कार्यक्रम सफल या विफल होते हैं, ऐसी स्थितियों में, अल्ट्रासोनिक इमेजिंग जानकारी का विवेचन महत्वपूर्ण है।

छोटे जुगाली करने वाले पशुओं के उत्पादन में अल्ट्रासाउंड स्कैनिंग जानकारी का उपयोग

खाद्य संसाधनों का बेहतर आवंटन- गर्भावस्था की स्थिति के अनुसार मादाओं को अलग करने से गैर-गर्भवती पशुओं को अंकित किया जा सकता है, इन पशुओ को आवश्यकता अनुसार चाहे तो बेचा जा सकता है, अथवा कम खिलाया जा सकता है। कुछ उत्पादन प्रणालियों में, यह पाया गया है की, गर्भवती समूह से गैर-गर्भवती पशुओं को ना हटाने से उनमे मोटापा हो जाता है। इससे न तो केवल खाद्य संसाधनों की बर्बादी होती है, परन्तु इन मोटापा ग्रसित पशुओं में प्रजनन की संभावना भी कम होती है. यदि वे गर्भधारण करते हैं तोइनमे केटोसिस होने की संभावना बढ़ जाती है। चूंकि, अधिक भ्रूण संख्या वाले पशुओ में पोषक तत्वों की मांग अधिक होती है, अल्ट्रासाउंड स्कैनिंग द्वारा भ्रूण संख्या के आधार पर समूहीकरण के परिणामस्वरूप खाद्य संसाधनों का बेहतर आवंटन किया जा सकता है। उन बकरियों को, जिनमे अधिक संख्या में भ्रूण है, को उन बकरियों, जिनमे एक ही भ्रूण है, की तुलना में अधिक और उच्च गुणवत्ता वाले खाद्य संसाधनों को आवंटित किया जा सकता है। इससे पूरे झुंड के लिए गर्भावस्था के बेहतर परिणाम होंगे।

गर्भावस्था के दौरान पशु की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सटीक आहार- अधिक गहन उत्पादन प्रणालियों में जो सटीक आहार प्रबंधन का उपयोग करते हैं, पशुओं को गर्भावस्था के चरण और भ्रूण संख्या के अनुसार सटीक रूप से खिलाया जा सकता है। इस जानकारी का उपयोग करके पशुओं को समूहीकृत करना और तदनुसार खिलाना चयापचय संबंधी बीमारियों की घटनाओं को कम करेगा और मातृ और भ्रूण पोषण को अनुकूलित करेगा।

जन्म प्रबंधन का अनुकूलन :

गहन और व्यापक उत्पादन प्रणालियों में भ्रूण की संख्या और गर्भावस्था के चरण के अनुसार समूहीकरण जन्म अवधि के दौरान श्रम दक्षता बढ़ाने का अवसर प्रदान करता है। जन्म के समय श्रम की संभावित रूप से अधिक आवश्यकता वाली मादाओं (जिनके पास कई बच्चे हैं, उनमें डिस्टोसिया और मातृत्व संबंधी समस्याएं अधिक होती हैं) को कम आवश्यकता वाली मादाओं (जिनके पास एक बच्चा है) से अलग करके, सर्वोत्तम जन्म परिणाम प्राप्त करने के लिए संसाधनों (जैसे श्रम, गर्म आवास सुविधाएं इत्यादि) को उचित रूप से आवंटित किया जा सकता है।

दूध उत्पादन में दुधारू पशुओं को कब सुखाया जाए, इसका निर्णय- दूध उत्पादन में स्तनपान कराने वाले पशुओं को सुखाने का निर्णय गर्भावस्था की स्थिति और अवस्था के ज्ञान के साथ किया जा सकता है। इससे पशुओं को इस तरह से प्रबंधित किया जा सकता है कि बेहतर स्तनपान प्रदर्शन और झुंड/झुंड के स्वास्थ्य के लिए इष्टतम शुष्क अवधि की अवधि मिल सके।

प्रथम प्रसूति पशुओं में गर्भावस्था का पता लगाना- गर्भावस्था का जल्दी पता लगने से गैर-गर्भवती पशुओं को तब बेचा जा सकता है जब वे उच्च बाजार मूल्य पर हों (12 महीने से कम उम्र के)। एक वर्ष की आयु से पहले प्रजनन करने की क्षमता का उपयोग जीवन भर उत्पादकता बढ़ाने के लिए चयन उपकरण के रूप में किया जा सकता है, क्योंकि यह पाया गया है कि

12-15 महीने की उम्र में बच्चे को जन्म देने वाली भेड़ों/बकरियों की जीवन भर की उत्पादकता उन भेड़ों/बकरियों की तुलना में अधिक होती है जो ऐसा नहीं करती हैं।

सारांश :

अल्ट्रासाउंड तकनीक को जुगाली करने वाले छोटे पशुओंके विभिन्न उत्पादन परिदृश्यों में प्रजनन प्रबंधन हेतु, सटीक उपकरण के रूप में उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण स्वरुप, जैसे आनुवंशिकी के ज़रिये मांस उत्पादन पर जोर देने वाली गहन उत्पादन प्रणाली एवंव्यापक उत्पादन प्रणाली के ज़रिये छोटे जुगाली वाले पशुओ की डेरी को प्रोत्साहन। अल्ट्रासाउंड स्कैनिंग गर्भावस्था की स्थिति, गर्भावस्था के चरण और भ्रूण की संख्या को निर्धारित करने की एक कम लागत वाली, सटीक विधि है। गर्भावस्था की स्थिति, चरण और/या मेमनों की संख्या के अनुसार बकरियों को समूहीकृत करके, प्रबंधक उत्पादन दक्षता बढ़ा सकते हैं, संसाधनों के आवंटन में सुधार कर सकते हैं और झुंड के स्वास्थ्य और कल्याण में सुधार कर सकते हैं।

***

पशुओं से मनुष्यों में फैलने वाले कुछ प्रमुख रोग और बचाव के तरीके

मनोज कुमार त्रिपाठी, राकेश कुमार, रजनी कुमारी, प्रदीप कुमार राय, ज्योति कुमार, पी. सी. चंद्रन एवं शंकर दयाल
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

वो बीमारियाँ जो कशेरुक (रीढधारी) जानवरों और मनुष्यों में आपस में फैलती है उनको जूनोटिक रोग कहते है। भारत में पाए जाने वाले जूनोटिक रोगों में रेबीज, ब्रूसेलोसिस, टोक्सोप्लास्मोसिस, सिस्टीसेर्कोसिस ईकिनोकोकोसिस, पीला बुखार, इन्फ्लुएंजा, एंथ्रेक्स, लेप्टोस्पायरोसिस, त्रिपनोसोमिआसिस सल्मोनेल्लोसिस, जापानी इन्सेफेलाइटिस (जापानी बुखार), प्लेग, निपाह, क्यासनूर बन रोग, स्क्रब टाईफस आदि प्रमुख है। जुनोटिक रोग सिर्फ भारत में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में होते है। बढती जनसंख्या, जंगलों के कटाव, शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण के कारण, जंगली पशुओं का प्राकृतिक आवास बर्बाद हो रहा है, जिससे जूनोटिक रोगों के होने का खतरा बढ़ा है। इसके अलावा स्थानीय संक्रमित पशुओ के मांस, खाल, ऊन इत्यादि के एक देश से दुसरे देशों में व्यापार से कई जूनोटिक बीमारिओं जैसे तपेदिक, ब्रुसेल्लोसिस, एंथ्रेक्स, खुरपका मुहपका, सल्मोनेल्लोसिस आदि का संक्रमण सरहद के पार भी फैल सकता है। कुछ प्रमुख जूनोटिक रोग तथा उसका बचाव का विवरण निम्न है।

ब्रूसीलोसिस : यह जीवाणु से होने वाली बीमारी है। इसकी वजह से पशुओं में गर्भपात, दूध में कमी, बाँझपन आदि के कारण किसानों को काफी आर्थिक नुकसान होता है। मनुष्यों में बीमारी से बुखार के अतिरिक्त अन्य कई तरह की दिक्कतें हो सकती है।

पशुओं में यह गाय, भैंस, भेंड, बकरी, ऊंट, घोड़ा, कुत्ता तथा सूअर में हो सकता है जिससे यह मनुष्यों में फ़ैल सकता है। यह बीमारी संक्रमित पशुओं से मनुष्यों में सीधे संपर्क से, संक्रमित खाद्य पदार्थ के खाने से या एयरोसोल के साँस लेने से होती है। इसका जीवाणु पशु के जनन तंत्र में होता है तथा यह मूत्र, दूध जैसे तरल पदार्थ से भी स्रावित होता है। योनी से निकलने वाले पदार्थ, संक्रमित भ्रूण या गर्भपात का पदार्थ, जेर, मूत्र, कच्चे दूध या उससे बने हुए उत्पाद जैसे चीज, मक्खन, क्रीम, इत्यादि सेसंक्रमण फ़ैल सकता है। इसके अतिरिक्त संक्रमित पशु के कच्चे मांस, खून या लसिका गांठ के सीधे संपर्क, उनके मूत्र या गोबर से संक्रमित सब्जिओं, संक्रमित पशुओं जैसे भेंड के ऊन की धूल, संक्रमित पशुओं के रहने के क्षेत्रो से एयरोसोल या उनको ले जाने वाली गाडिओं द्वारा संक्रमण फ़ैल सकता है। उबालने या पास्चुराईज करने से दूध में ब्रुसल्ला का जीवाणु भी मर जाता है और संक्रमण नहीं होता है। इससे बचाव के लिए इसका टीका 4-8 महीने की उम्र में लगवाना चाहिए।

जापानी इन्सेफेलाइटिस/जापानीबुखार: वायरस जनित यह बीमारी अत्यंत खतरनाक है और भारत सहित एशिया के कई सारे देशों में पाई जाती है। मानसून के समय या उससे पहले इस बीमारी के होने की संभावना अधिक होती है। मनुष्यों में इस रोग के लक्षणों में तेज बुखार, सिरदर्द, मस्तिक में समस्या, गले में जकडन, कपकपी, आक्षेपतथा मूर्छा आना है और 20-50% लोगों में मृत्यु भी हो सकती है। यह क्यूलेक्स मच्छर के काटने से होता है। इसका वायरस मुख्यतया सूअरों में विषाणु के संग्राहक के रूप में पाया जाता है हलाकि यह वायरस गाय, घोड़े, बतख तथा कुछ अन्य पक्षियों में भी पाया जा सकता है। संग्राहक जीवों से फिर यह मनुष्यों में क्यूलेक्स मच्छर द्वारा फैलता है। मनुष्यों में संक्रमण संग्राहक पशुओं जैसे सुकरों के नजदीकस्थानों पर ज्यादा देखने को मिल सकता है। बीमारी की शुरुवात में ही इलाज शुरू करने पर मृत्यु दर काफी कम हो जाती है। बीमारी की उचित निगरानी, मच्छरों पर नियंत्रण तथा टीकाकरण द्वारा इस पर काबू पाया जा सकता है।

लेपटोस्पिरोसिस : इसके कई नाम है जैसेमिट्टी का बुखार, वील की बीमारी, रक्तस्रावी पीलिया, संक्रामक पीलिया, दलदल बुखार इत्यादि। यह दुनिया की सबसे ज्यादा पाए जाने वाले जूनोटिक रोगों में से एक है। इसका जीवाणु (स्पाइरोचीट) किडनी अर्थात गुर्दा में रहता है। इसका संग्राहक मुख्यतः चूहा, जंगली बिल्ली, लोमड़ी तथा खरगोश है। यद्यपि इसके संग्राहक जंगली तथा पालतू पशु भी हो सकते है। संक्रमित चूहों या पशुओं के मूत्र से इसका जीवाणुमनुष्यों और अन्य पशुओं जैसे गाय, सुअर या कुत्ते में फैलता है। यद्यपि संक्रमित पशु के गर्भपात के बाद बच्चेदानी से स्रावित पदार्थो से भी फ़ैल सकता है। इसका जीवाणु नम और गर्म परिस्थिथिओ में 6 माह तक जिन्दा रह सकता है तथा ठहरा हुआ पानी संक्रमण का सबसे अच्छा स्रोत है। इसका जीवाणु मूत्र द्वारा संक्रमित मिट्टी, चारे, पानी या अन्य आहार के द्वारा श्लेष्मझिली या कटे हुए स्थान से शरीर में प्रवेश कर जाता है। इस बीमारी में केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र, प्रजनन तंत्र, यकृत, गुर्दा, फेफड़ा, खून तथा आखें प्रभावित होती है। बिभिन्न पशुओं की प्रजतिओं में कुछ अलग- अलग लक्षण दिख सकते है जैसे गायों में एक महीने से कम उम्र के बछड़े ज्यादा प्रभावित होते है जिसमे तेज बुखार, भूख न लगना, पीलिया होना,एनीमिया (खून की कमी) तथा लाल रंग का मूत्र, आदि लक्षण दिखाई देते है तथा मृत्यु दर भी ज्यादा होती है। ज्यादा उम्र के गायों में गर्भावस्था की अंतिम तिमाही में गर्भपात होने का खतरा रहता है तथा दूध कम हो जाता है तथा उसका रंग गुलाबी-पीला जिसमे खून के थक्के भी दिखाई दे सकते है। खून की लाल

रुधिर कणिकाओं के टूटने से मूत्र का रंग लाल हो जाता है और कुछ पशुओं में लंगड़ापन भी मिल सकता है। मनुष्य में भी यह बीमारी हलके (कम खतरनाक) या तीव्र (ज्यादा खतरनाक) रूप में हो सकती है। इसके हल्के रूप में पीलिया नहीं होता है तथा बुखार, सिर, छाती या पूरे शरीर में दर्द, आँखों का लाल होना, खांसी इत्यादी लक्षण हो सकते है। इसके तीव्र रूप में पीलिया के साथ में उपरोक्त लक्षण बहुत तीव्रता के साथ हो सकते है तथा गुर्दा तथा जिगर बहुत ज्यादा प्रभावित हो जाते है। जिगर के आकार के बढ़ जाने के अलावा गुर्दे में सूजन हो जाती है जिसके फलस्वरूप हाथ पर में सूजन, मूत्र का कम निकलना, साँस लेने में परेशानी होना, बेहोशी इत्यादि लक्षण पये जा सकते है।

बचाव के उपाय – स्वच्छता का ध्यान रखें। पशु के बाड़े को कीटाणुनाशक पदार्थ से साफ रखें। मनुष्य या पशु के मूत्र के सीधे संपर्क से बचे। बाढ़/पानी से भरे खेतों में काम करने वाले लोगों को रबर के जूते और दस्ताना पहनकर काम करना चाहिए तथा यदि हाथ या पैर में कही कटा हो तो कोई एंटीसेप्टिक क्रीम जैसे बीटाडीन लगाना चाहिए। चूहा इस बीमारी के सबसे प्रमुख संग्राहक है इसलिए चूहे से बचने का उपाय करना चाहिए। पशुओं में टीकाकरण से भी बीमारी की तीव्रता को कम कर सकते है। हालाँकि टीकाकरण के वावजूद पशु के मूत्र से इसका जीवाणु आता रहता है।

एंथ्रेक्स : यह गाय, भैंस भेड, बकरी, ऊंट आदि पशुओं में पाया जाने वाला जीवाणु जनित रोग है। इसका जीवाणु छोटे-छोटे स्पोर बनाता है। ये स्पोर मिटटी में बहुत समय तक पड़े रह सकते है तथा चारा अथवा अन्य आहार, संक्रमित पशु के ऊन, बाल,चमड़ा, खून या मांस और हवा में एयरोसोल के माध्यम अन्य पशुओं और मनुष्यों को संक्रमित कर सकते है। यह बीमारी पशु की प्रजाति या नस्ल के आधार पर तीव्रतम (परएक्युट), तीव्र (एक्युट), या दीर्घकालिक (क्रोनिक) रूप में प्रकट हो सकती है. जैसे गाय, भेंड और बकरी में यह तीव्रतम रूप में दिखती है जिसमेपशु अचानक बीमार पड़ता है, कुछ ही देर में साँस लेने में दिक्कत, लडखड़ाकर चलना, बेहोशी के लक्षण के साथ एकाएक मृत्यु हो सकती है। गायों में इसके तीव्र रूप में 107°F तक बुखार हो सकता है, खाने में कमी, दूध की उत्पादकता में कमी, साँस लेने में दिक्कत, लडखड़ाकर चलना, शरीर में कई जगह पर त्वचा के नीचे सूजन, मूर्छा, गर्भवती पशुओं में गर्भपात तथा फिर मृत्यु हो जाती है। इसके अलावा प्राकृतिक छिद्रों जैसे नाक, मुह, कान, गुदा से रक्त निकल सकता है। घोड़े में भी यह बीमारी तीव्र रूप में हो सकती है जिसमे बुखार, खून की दस्त, पेट दर्द (कोलिक), भूख न लगना जैसे अन्य लक्षण प्रदर्शित होते है और फिर 2-3 दिन में मृत्यु हो जाती है। सुकर में तीव्र या दीर्घकालिक बीमारी हो सकती है। हालाँकि वे अपेक्षाकृत इस बीमारी से प्रतिरोधक होते है। इनमे अन्य लक्षणों के अलावा मुह और गले के नीचे सूजन हो सकती है और समय पर इलाज के बाद बच सकते है हालाँकि इनमे भी मृत्यु हो सकती है। कुत्ते, बिलियों और अन्य मांसभक्षी पशुओं में बीमारी सुकर से मिलती जुलती है। वैसे तो बीमारी को कन्फर्म करने के लिए प्रयोगशाला जाँच आवश्यक है किन्तु लक्षणों के आधार पर भी बीमारी पहचानने में आसानी होती है जैसे प्राकृतिक छिद्रों जैसे नाक, मुँह, कान, गुदा से रक्त निकलना, खून का थक्का बनने में बहुत देर होना, मरने के बाद शरीर का पूर्ण रूप से नहीं जकड़ना इत्यादि। मनुष्यों में यह बीमारी संक्रमित पशु के ऊन, बाल, चमड़ा के माध्यम से या संक्रमित मांस खाने से हो सकती है। मनुष्यों में यह किन्ही तीन रूपों में पाया जाता है- त्वचीय एंथ्रेक्स, अन्तःश्वसन एंथ्रेक्स तथा आंत सम्बन्धी एंथ्रेक्स। त्वचीय एंथ्रेक्स संक्रमित पशु के ऊन, बाल, चमड़ा के माध्यम से हाथ या अन्य जगह पर कटे हुए स्थान से जीवाणु के प्रवेश के कारण हो जाता है जिसमे पहले मच्छर के काटने जैसा घाव होता है जो बाद में फफोले का आकार ले लेता है, थोडा बुखार आ सकता है, कभी कभी संक्रमण खून में पहुँच जाता है जो खतरनाक हो सकता है। अधिकांशतः यह एंटीबायोटिक देने से ठीक हो जाती है। अन्तःश्वसन एंथ्रेक्स में शुरुवाती लक्षण जुकाम जैसे होते है, साँस लेने में दिक्कत होती है जबकि आंत सम्बन्धी एंथ्रेक्स जोकि संक्रमित पशु का मांस खाने से होता है, में उल्टी, दस्त, बुखार, पेट दर्द, दस्त में खून, लसिका ग्रंथि में सूजन आदि लक्षण हो सकते है और समय पर इलाज नहीं करने से मृत्यु भी हो सकती है। इस बीमारी की रोकथाम के लिए टीकाकरण आवश्यक है। उस क्षेत्र विशेष में जहाँ एंथ्रेक्स होता है वहां मई या जून में टीका लगवाना चाहिए। एंथ्रेक्स संक्रमित पशु का पोस्टमार्टम या चीरा नहीं लगाना चाहिए और मृत्यु के उपरांत पशु को तथा सम्बंधित संक्रमित सामग्रियों को गहरा गड्ढा करके दफना देना चाहिए या फिर जला देना ज्यादा उपयुक्त है। पशु के रहने के स्थान को 5% फॉर्मलडीहाईड के द्वारा जीवाणुविहीन या साफ करना चाहिए। दूसरे आस पास के पशुओं को 20 दिन के लिए क्वेरेंटाइन या आवागमन पर रोक लगाना चाहिए।

रेबीज: यह एक विषाणु जनित बीमारी है जो मुख्यतः संक्रमित कुत्तो के काटने से उसके लार के माध्यम से मनुष्य सहित अनेक पशु प्रजातिओं में फैलता है। यह बीमारी दूसरे संक्रमित पशुओं जैसे बन्दर, लोमड़ी, बिल्ली, नेवला आदि से भी मनुष्यों में फ़ैल सकती है। यदि कोई रेबीज से संक्रमित कुत्ता या जंगली जानवर किसी पशु या मनुष्य को काट लेता है या कटे जगह पर चाट लेता है तो यथाशीघ्र ही घाव को न्यूनतम दस मिनट तक साबुन का उपयोग कर लगातार धुले फिर चिकित्सक के पास जाकर टिटनेस की सुई तथा टीकाकरण (0, 3, 7, 14, 28 और 90 वें दिन) करवाएं।

***

कार्बन खेती: टिकाऊ कृषि एवं आयवर्धन का एक स्थायी विकल्प

रचना दूबे, सीमा कुमारी, उमेश कुमार मिश्र एवं अभिषेक कुमार
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

हाल के दशक मे बढ़ती आबादी और अर्थव्यवस्था ने भारत के ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में काफी तेजी से वृद्धि की है। नतीजतन, इस वृद्धि ने भारत को चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद ग्रीनहाउस गैस में दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा उत्सर्जक बना दिया है। 2021 में, भारत ने लगभग 3.9 गीगाटन कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य उत्सर्जन किया। भारत में, कृषि क्षेत्र कुल ग्रीनहाउस गैसउत्सर्जन का 23.2% हिस्सा साझा करने वाला दूसरा सबसे बड़ा उत्सर्जक है (चित्र 1)। कृषि से होने वाला मुख्य उत्सर्जन मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड गैस के रूप में होता है, जिसमें पारंपरिक चावल उत्पादन, उर्वरक प्रबंधन और मवेशियों में एंटरिक किण्वन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालाँकि वर्तमान भूमि प्रबंधन तकनीकों के तहत वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में कृषि सबसे बड़े योगदानकर्ताओं में से एक है, लेकिन यह एकमात्र आर्थिक क्षेत्र है जो कार्बन खेती के रूप में संदर्भित विधियों का उपयोग करके शुद्ध कार्बन सिंक बन सकता है।

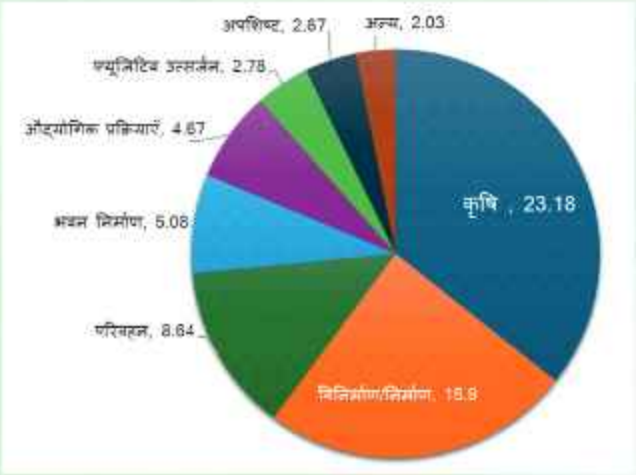

चित्र 1: भारत में ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन का क्षेत्रवार योगदान

कार्बन खेती

"कार्बन खेती" शब्द का तात्पर्य पुनर्स्थापन भूमि उपयोग के सर्वोत्तम प्रबंधन तकनीकों को उद्देश्यपूर्ण रूप से अपनाना है। यह सकारात्मक मृदा/पारिस्थितिकी तंत्र कार्बन बजट का उत्पादन करते हैं और मिट्टी और बायोमास में वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड को अलग करते हैं। यह कृषि पारिस्थितिकी तंत्र प्रक्रियाओं में एक ढांचा है जो सिस्टम परिवर्तन की ओर ले जाता है। कार्बन खेती में, सौर ऊर्जा खेत पारिस्थितिकी तंत्र की गतिशीलता को संचालित करती है, और वह कार्बन उस ऊर्जा को पूरे खेत प्रणाली में ले जाता है। कार्बन खेती "पुनर्जनन कृषि" का पर्याय है जो बुनियादी प्रणाली गतिशीलता और सकारात्मक प्रक्रियाओं की समझ में निहित है जो पुनर्योजी मिट्टी की उर्वरता और खेत की उत्पादकता को बढ़ाती है। सरल शब्दों में, कार्बन खेती वे प्रबंधन तकनीकें हैं जो कार्बन को अलग करने और ग्रीन हाउस गैसउत्सर्जन को कम करने के लिए जानी जाती हैं।

कार्बन खेती या भूमि आधारित कार्बन पृथक्करण मृदा कार्बन पूल को बढ़ाकर किया जा सकता है। हम या तो मृदा अकार्बनिक या कार्बनिक कार्बन पूल को बढ़ा सकते हैं। मृदा अकार्बनिक कार्बन पूल द्वितीयक कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट के माध्यम से बनता है। हालाँकि यह कृषि में एक तरीका है, लेकिन हम मुख्य रूप से मिट्टी के कार्बनिक कार्बन पूल को बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। बायोमास का जैव-रासायनिक संशोधन ऑर्गेनो-खनिज परिसरों में होता है जिसे स्थिर माइक्रोएग्रीगेट्स के माध्यम से संरक्षित किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा कार्बनिक कार्बनपूल के रूप में पृथक्करण होता है। कार्बन खेती के लिए एक प्रयास निष्क्रिय भाग पर केंद्रित है क्योंकि इसका एक लंबा औसत निवास समय होता है। कार्बन खेती के लिए कृषि में सामान्य विधियाँ जैसे की संरक्षण कृषि,वानिकी, एकीकृत कृषि प्रणाली, कवर क्रॉपिंग, सटीक कृषि, मल्चिंग, सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली आदि हैं (चित्र 2)।

चित्र 2 : कृषि में कार्बन खेती करने के तरीके। कार्बन खेती के लाभ

कार्बन खेती के पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक लाभ हैं। कार्बन खेती न केवल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करती है बल्कि क्षरित भूमि को बहाल करने में भी मदद करती है। यह मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार करती है जिससे उपज बढ़ती है। यह मिट्टी के कटाव और जल प्रदूषण को कम करती है। मिट्टी में अधिक कार्बन का मतलब है अधिक सूक्ष्मजीव विविधता जो मिट्टी के स्वास्थ्य को और बेहतर बनाती है, साथ ही लंबे समय में समग्र कृषि पारिस्थितिकी तंत्र पर इसके बहुआयामी प्रभाव हैं। है। इसलिए कार्बन खेती के माध्यम से किसानों द्वारा कार्बन क्रेडिट अर्जित किया जा सकता है खासकर वोलंटरी कार्बन मार्किट के आ जाने से। भारत सरकार ने कृषि उत्पादन में सुधार, पर्यावरणीय पदचिह्न को कम करने और किसानों की आय बढ़ाने के लिए टिकाऊ खेती पद्धतियों के लिए भारतीय कृषि के लिए कार्बन बाजार विकसित करने के लिए एक विधेयक 2022 में पारित किया।

कार्बन क्रेडिट क्या है?

कार्बन क्रेडिट एक व्यापार योग्य परमिट है जो कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य के एक टन का प्रतिनिधित्व करता है जिसे कार्बन ट्रेडिंग के माध्यम से बेचा जाता है। यह कार्बन क्रेडिट की खरीद और बिक्री को संदर्भित करता है जो खेतों और अन्य कृषि भूमि पर कार्बन पृथक्करण को बढ़ाने या ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने के तरीकों से उत्पन्न होते हैं। कार्बन खेती के अधिकांश तरीके कृषि और संबद्ध क्षेत्रों में कार्बन पृथक्करण प्रक्रियाओं को बढ़ाने में मदद करते हैं। जब किसान इन कार्बन खेती के तरीकों को अपनाते हैं, तो न केवल मिट्टी की सेहत में सुधार होता है बल्कि बदले में उन्हें बेहतर उपज भी मिलती है। लेकिन इनमें से अधिकांश कुछ वर्षों के बाद मिट्टी में बदलाव के रूप में अपना प्रभाव उत्पन्न करती हैं। किसानों को इन उपयुक्त खेती पद्धतियों और बेहतर कौशल के बारे में अधिक जानकारी की आवश्यकता होती है ताकि उद्देश्य प्राप्त किया जा सके। वर्तमान स्थिति में, स्वैच्छिक कार्बन ट्रेडिंग किसानों के लिए एक प्रोत्साहन के रूप में कार्य कर सकती है जहाँ कार्बन क्रेडिट अल्पावधि में अतिरिक्त रिटर्न प्रदान कर सकते हैं।

कार्बन ट्रेडिंग कैसे की जाती है?

कार्बन ट्रेडिंग न केवल किसानों के लिए बल्कि कई हितधारकों और कई वैज्ञानिकों के लिए भी एक नई अवधारणा है। हमें बड़े पैमाने पर जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है कि कार्बन खेती से संबंधित प्रथाओं को अपनाकर, हम न केवल मिट्टी के स्वास्थ्य और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं में सुधार करना चाहते हैं, बल्कि किसानों के लिए आय सृजन का एक अतिरिक्त अवसर भी बनाना चाहते हैं। कृषि में कार्बन क्रेडिट अर्जित करने के लिए कार्बन ट्रेडिंग करने के चरण नीचे सूचीबद्ध हैं:

(i) **सही कार्बन कार्यक्रम ढूँढना:** सही कार्बन कार्यक्रम ढूँढने से शुरू करें: जहाँ किसान या किसानों के समूह किसी संगठन से जुड़ सकें, अधिमानतः गैर-सरकारी संगठन (NGO) और किसान उत्पादक संगठन (FPO)। भारत में काम करने वाले कुछ संगठन जैसे की भू-मित्र, नर्चर फ़ार्म, कार्बन एक्स और कार्बन काउंट ट्रेड हैं। इन संगठनों के साथ सहयोग करके, प्रक्रिया को संस्थागत बनाया जाता है जहाँ किसानों को पंजीकृत किया जाता है और परियोजना को सूचीबद्ध किया जाता है, और मानक प्रक्रिया के अनुसार कार्बन ट्रेडिंग को सुव्यवस्थित किया जाता है।

(ii) **प्रारंभिक कृषि मूल्यांकन:** एक बार जब किसान या किसानों का समूह नियम और शर्तों से सहमत हो जाते है, तो प्रारंभिक मिट्टी की जांच, पिछले दो-तीन वर्षों का फसल इतिहास, जुताई के तरीके और अन्य प्रासंगिक जानकारी जैसी कृषि स्थितियों को समझने के लिए आधारभूत मूल्यांकन किया जाता है।

(iii) **विभिन्न कार्बन खेती पद्धतियों का पालन करना:** जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, व्यवहार्यता, किसान की उपयुक्तता और जरूरतों के अनुसार विभिन्न कार्बन खेती प्रथाओं को अपनाया जा सकता है। उद्धरण के तौर पे अगर उस खेत में गहरी जुताई की जाती है, तो जीरो टिलेज जैसी कार्बन खेती का पालन किया जा सकता है, या बाढ़ सिंचाई को माइक्रो सिंचाई प्रणाली से प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

(iv) **मापना, रिपोर्ट करना और सत्यापित करना (एमआरवी):** एमआरवी सबसे महत्वपूर्ण कदम है जो खेत स्तर पर अपनाई जा रही विभिन्न पद्धतियों की प्रगति को ट्रैक करता है। उदाहरण के लिए, प्रारंभिक स्तर पर मिट्टी कार्बन, फिर पद्धति में बदलाव के बाद वर्षवार प्रगति दर्ज की जानी चाहिए।

(v) **परिणामों का सत्यापन (परिणामों की लेखा परीक्षा):** इस चरण में, खेती की पद्धतियों के दौरान एकत्र किए गए सभी डेटा की तुलना आधारभूत जानकारी से की जाती है और परिणामों को कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य (टन में) के संदर्भ में किया जाता है। यह ज्यादातर वेरा जैसी सत्यापन एजेंसियों द्वारा किया जाता है।

(vi) **प्रमाणित कार्बन क्रेडिट अर्जित करें:** एक बार जब कार्बन डाइऑक्साइड को विभिन्न कार्बन खेती पद्धतियों के माध्यम से एक टन कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य के रूप में मात्राबद्ध किया जाता है। फिर कार्बन क्रेडिट अर्जित किया जाता है और परियोजना के नाम पर पंजीकृत कंपनी द्वारा कारोबार किया जाता है। अर्जित क्रेडिट एफपीओ या व्यक्तिगत किसान को वितरित किए जाते हैं जो कि अपनाई गई खेती पद्धतियों के आधार पर 20-90 अमेरिकी डॉलर से भिन्न हो सकते हैं। आमतौर पर, पैसे के रूप में क्रेडिट प्राप्त करने में लगभग 8-12 महीने लगते हैं।, एक एकड़ खेत 3-5 कार्बन क्रेडिट [1 कार्बन क्रेडिट = 1t CO_2e] कमा सकता है।

चित्र 3. आईसीएआर-आरसीईआर, पटना में चल रही कार्बन खेती परियोजना का एक क्षेत्र दृश्य

एक भारतीय किसान की सफलता की कहानी

यह उन भारतीय किसानों के लिए प्रेरणादायक और प्रेरक कहानियों में से एक है, जो या तो लाभों से अनजान हैं या विभिन्न कार्बन खेती विधियों के माध्यम से कार्बन क्रेडिट अर्जित करने से जुड़ी अवधारणा का पालन करने के लिए अनिच्छुक हैं। हरियाणा के करनाल के सदरपुर गाँव में एक किसान कुलदीप सिंह चीमा। उन्होंने 2011 में खेती शुरू की, लेकिन जल्द ही मिट्टी की उर्वरता, मजदूरों की कमी, अधिक उर्वरकों का उपयोग, कम उत्पादकता और कई अन्य समस्याओं का सामना करना पड़ा। 2019 में, उन्होंने प्रतिरोपित धान की जगह सीधे बीज वाली धान की खेती की, जिससे जल्दी बुवाई करने के साथ-साथ पानी की भारी मात्रा में बचत करने में मदद मिली। इसे अपनाकर, वे प्रतिरोपित धान के खेतों से मीथेन उत्सर्जन को कम करने में सक्षम हुए। इसके अलावा, उन्होंने पंजाब और हरियाणा राज्यों में प्रचलित धान के अवशेष को नहीं जलाया। इसके बजाय उन्होंने गेहूं की बुवाई की शून्य जुताई विधि का उपयोग किया, जिससे इसकी भूमि की उर्वरता (कार्बन सहित) की बहाली और मिट्टी की नमी को बनाए रखने में मदद मिली। इन सभी ने पानी की बचत (पानी की निकासी से उत्सर्जन को कम करना), मिट्टी के कार्बन को बढ़ाना (शून्य जुताई के माध्यम से) और उपज को बढ़ाने में मदद की। इन सबके ज़रिए, चार साल में, वे अपनी 65 एकड़ ज़मीन से 3.2 लाख रुपये का कार्बन क्रेडिट अर्जित करने में सफल रहे। चीमा को उम्मीद है कि उन्हें मिलने वाला कार्बन क्रेडिट उनके जैसे किसानों के लिए जलवायु-अनुकूल तकनीक अपनाने के लिए प्रेरणा और प्रेरणा का काम करेगा।

चुनौतियाँ

किसी भी बदलाव के साथ कई चुनौतियाँ जुड़ी होती हैं। कार्बन खेती से जुड़ी चुनौतियों की ओर इशारा किया गया है।

- किसानों/हितधारकों में इसके बारे में बहुत कम जागरूकता है।
- एमआरवी के लिए कार्यप्रणाली मानकीकृत नहीं है और हर कंपनी के नतीजे अलग-अलग हो सकते हैं।
- किसानों से नकद प्रोत्साहन प्राप्त करने में लगभग 8-12 महीने लगते हैं। इसके अलावा, कंपनी लिस्टिंग में प्रोजेक्ट को पंजीकृत करने में अतिरिक्त 12-18 महीने लग सकते हैं। किसानों को आकर्षित करने के लिए यह बहुत लंबा समय है।
- भारतीय किसानों के पास औसतन 1 हेक्टेयर से कम खेत हैं, जिससे उन्हें बहुत कम कार्बन क्रेडिट मिलेगा, इसलिए किसानों को नई पुनर्योजी कार्बन खेती पद्धतियों को अपनाने

के लिए प्रेरित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है

भविष्य योजनायें

- भौगोलिक सूचना प्रणाली और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से निष्पक्ष मूल्यांकन और परिमाणीकरण प्रक्रिया तैयार करना जो उत्पन्न कार्बन क्रेडिट का सटीक अनुमान लगाएगा।
- राज्य और केंद्र स्तर पर नीति निर्माताओं को मौजूदा कार्बन खेती विधियाँ जैसे जैविक खेती, शून्य जुताई, कृषि वानिकी आदि को संरेखित करने का प्रयास करना चाहिए ताकि किसानों को दिखाया जा सके कि कार्बन क्रेडिट कैसे काम करता है।
- किसानों और विभिन्न हितधारकों दोनों के लिए इसके बारे में विस्तार से जानने के लिए प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करें।

निष्कर्ष

ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने, मृदा स्वास्थ्य में सुधार के माध्यम से फसल उत्पादकता बढ़ाने और किसानों की आय बढ़ाने के लिए कार्बन खेती समय की मांग है। यह प्रयास कृषि में बदलाव लायेगा, जलवायु परिवर्तन का समाधान बना देगा और सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में योगदान देगा। किसानों को कार्बन क्रेडिट कार्यक्रमों के अस्तित्व और लाभों के बारे में जागरूक करना हमारी जिम्मेदारी है। इन कार्बन खेती विधियों को अपनाने वाले किसानों को प्रोत्साहित करने में भारत सरकार की पहल बदलाव के उत्प्रेरक के रूप में कार्य कर सकती है। मध्यम अवधि में, इन किसानों का समर्थन करने और पहल को आगे बढ़ाने के लिए पर्याप्त सक्षम वातावरण बनाने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया में किसानों की सुविधा के लिए हितधारकों विशेष रूप से संगठनों की भागीदारी भी तेज होनी चाहिए। लंबे समय में, कृषि से कार्बन ट्रेडिंग किसानों के लिए एक उत्पादक और लाभदायक प्रस्ताव हो सकता है।

***

भारत में फसल उत्पादन के लिए कुशल कृषि-प्रौद्योगिकियां

सोनका घोष, वेद प्रकाश, कीर्ति सौरभ, मणिभूषण एवं आशुतोष उपाध्याय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

सारांश

यह लेख भारत में कृषि उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और सतत कृषि विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न कृषि-प्रौद्योगिकियों और प्रबंधन दृष्टिकोणों की समीक्षा करता है। इसमें जल प्रबंधन, ग्रीनहाउस गैस शमन, संरक्षण कृषि, फसल विविधीकरण, और एकीकृत कृषि प्रणाली जैसे पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। ये तकनीकें न केवल कृषि उत्पादन की स्थिरता और किसानों की आय को बढ़ाने में सहायक हैं, बल्कि जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों को भी कम करती हैं। दस्तावेज़ में सुझाए गए उपाय भारतीय कृषि को अधिक टिकाऊ, लचीला और पर्यावरण-अनुकूल बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हैं।

परिचय

जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग वर्तमान में दुनिया भर में एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय बने हुए हैं। विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देशों में, जहां बड़ी आबादी की मांगें प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव डाल रही हैं, इस संकट से निपटने के लिए ठोस कदम उठाना आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न होने वाले जोखिमों के लिए विभिन्न शमन रणनीतियाँ अपनाई जा रही हैं, जिनमें से कुछ में अजैविक और जैविक तनावों के प्रति सहनशीलता वाली फसल किस्मों का विकास, संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों को अपनाना, और जल उपयोग दक्षता में सुधार करना शामिल है। इसके अतिरिक्त, किसानों की कृषि और आजीविका को सुरक्षित रखने के लिए एकीकृत कृषि प्रणालियों को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। इस संदर्भ में, मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने के लिए पोषक तत्वों के विवेकपूर्ण उपयोग पर भी जोर दिया जाना चाहिए। यह उर्वरक आवेदन के लिए अच्छी फसल प्रतिक्रिया का समर्थन करने में सहायक हो सकता है। यह लेख भारतीय कृषि में प्रचलित संभावित फसल प्रबंधन प्रथाओं पर ध्यान केंद्रित करेगा और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए कारगर रणनीतियों का विश्लेषण करेगा।

1. कुशल जल प्रबंधन दृष्टिकोण

कृषि में जल प्रबंधन का महत्व: जल कृषि में एक प्रमुख संसाधन है, जो फसल उत्पादन और पशुपालन दोनों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। पौधों को बेहतर ढंग से सिंचित न करने से अच्छे बीज और उर्वरक भी अपनी पूरी क्षमता प्राप्त नहीं कर पाते। भारत में, दुनिया की आबादी का लगभग 17% हिस्सा है, लेकिन यह देश केवल 4% ताजे जल संसाधनों का ही मालिक है। इस स्थिति को देखते हुए, जल संरक्षण तकनीकों का उपयोग आवश्यक हो जाता है। सूक्ष्म सिंचाई जैसे संसाधन-प्रभावी तकनीकों को हाल के वर्षों में आक्रामक रूप से बढ़ावा दिया गया है, विशेष रूप से शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में। इस तरह के उपाय जल संरक्षण के साथ-साथ कृषि उत्पादन को बनाए रखने में भी सहायक होते हैं। जल उपयोग दक्षता में सुधार के लिए सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई का उपयोग अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हो सकता है। यह न केवल पानी की बचत करता है, बल्कि उच्च फसल उत्पादन भी सुनिश्चित करता है। इसी तरह, नई कृषि संबंधी पद्धतियों जैसे रिज-फ़रो विधि, उपसतह सिंचाई, और सटीक खेती जल उपयोग को कम करने में बड़ी भूमिका निभाती हैं। इसके अतिरिक्त, वैकल्पिक रोपण विधियों जैसे कि चावल उत्पादन गहनता और सीधे बीज वाले चावल की प्रणाली से भी जल संरक्षण और उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है। पानी का कुशलतापूर्वक उपयोग करने के लिए विभिन्न दृष्टिकोण सामने रखे गए हैं, जिनमें से कुछ नीचे सूचीबद्ध हैं:

- स्प्रिंकलर और ड्रिप सिंचाई प्रणाली जैसी पानी बचाने वाली तकनीकों को अपनाने से न केवल जल संरक्षण बल्कि उच्च पैदावार भी हुई है।
- जल परिवहन हानि को कम करने के लिए सिंचाई प्रणाली की उचित डिजाइनिंग।
- नई कृषि संबंधी पद्धतियां जैसे उठे हुए क्यारी रोपण, बुवाई की रिज-फ़रो विधि, उपसतह सिंचाई, और सटीक खेती जो पानी के उपयोग को कम करने के लिए एक विशाल गुंजाइश प्रदान करती है।
- वैकल्पिक रोपण विधियों को बढ़ावा देने जैसे कि चावल उत्पादन गहनता और सीधे बीज वाले चावल की प्रणाली से पानी की बचत हो सकती है और उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है।
- बहु जल उपयोग की अवधारणा को अपनाकर जल उत्पादकता में सुधार किया जा सकता है, जो उत्पादक क्षेत्रों की पारंपरिक क्षेत्रीय बाधाओं से परे है। वहाँ है फसल विविधीकरण और कृषि प्रणाली में मछली, मुर्गी पालन और अन्य उद्यमों के एकीकरण के माध्यम से आय बढ़ाने की गुंजाइश।

- उपयुक्त क्षेत्रों में वाटरशेड विकास और वर्षा जल संचयन के लिए सूक्ष्म जल संरचनाओं के विकास के माध्यम से जल संसाधन संरक्षण पर जोर दिया जाना चाहिए।
- प्रभावी जल प्रबंधन गंभीर रूप से स्थानीय स्तर के जल संस्थानों के प्रदर्शन से जुड़ा हुआ है। इसलिए, भागीदारी के पक्ष में संस्थागत पुनर्गठन सिंचाई प्रबंधन और जल उपयोगकर्ता संघों को मजबूत करने की जरूरत है।
- बड़े पैमाने पर संरक्षण कृषि का अभ्यास करने से मिट्टी की नमी के संरक्षण, मिट्टी के पोषक तत्व की स्थिति में सुधार, मिट्टी की बनावट, कम खरपतवार, आदि का अतिरिक्त लाभ मिलता है।
- कृषि क्षेत्र के लिए जल मूल्य निर्धारण की समीक्षा और संशोधन किया जाना चाहिए।
- सतह की सुरक्षा के लिए मार्ग प्रशस्त करने के लिए वाटरशेड विकास की योजना बनाई जानी चाहिए और भूजल पुनर्भरण तंत्र।
- कृषि क्षेत्र में जल उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए जागरूकता बढ़ाना। घटते जल स्तर के परिणामस्वरूप पम्पिंग, लवणीकरण की लागत में वृद्धि होती है। भारी धातुओं आदि की उपस्थिति, इस प्रकार फसल उत्पादन की लागत पर सवाल उठाती है और उपज की गुणवत्ता।

2. भारतीय कृषि में ग्रीनहाउस गैस शमन विकल्प

कृषि क्षेत्र में ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन की समस्या: वैश्विक स्तर पर, कृषि को बढ़ती खाद्य मांग को पूरा करने के लिए उत्पादन बढ़ाने की चुनौती का सामना करना पड़ता है। इस दौरान, जीएचजी उत्सर्जन को कम करना और बदलती जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल होना भी आवश्यक है। भारत विश्व में तीसरा सबसे बड़ा जीएचजी उत्सर्जक है, जहां कृषि कुल राष्ट्रीय उत्सर्जन का लगभग 18% के लिए जिम्मेदार है। जीएचजी उत्सर्जन को कम करने के लिए कृषि में विभिन्न प्रथाओं को अपनाया जा सकता है, जैसे कि धीमी गति से निकलने वाले उर्वरकों का उपयोग, उर्वरक लगाने का सही समय, और सही स्थान पर पोषक तत्वों का उपयोग। इन उपायों से उर्वरक-प्रेरित क्षेत्र उत्सर्जन को कम किया जा सकता है, साथ ही उर्वरक खपत को भी घटाया जा सकता है। इस प्रकार, जीएचजी शमन उपायों को अपनाने के संबंध में सामाजिक-राजनीतिक वातावरण और किसानों के व्यवहार को समझकर उपयुक्त नीतियों को डिजाइन किया जा सकता है।

3. संरक्षण कृषि

संरक्षण कृषि (सीए) की अवधारणा और इसके लाभ: संरक्षण कृषि का लक्ष्य कृषि प्रणालियों को अधिक टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल बनाना है। इसमें मिट्टी की न्यूनतम गड़बड़ी, बायोमास का गीली मिट्टी के आवरण के रूप में उपयोग, और फसल विविधीकरण जैसे सिद्धांतों का पालन किया जाता है। सीए के माध्यम से भूमि और जल प्रदूषण को कम किया जा सकता है, मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है, और जल उपयोग दक्षता में वृद्धि की जा सकती है। इसके अलावा, संरक्षण कृषि खाद्य उत्पादन में वृद्धि करते हुए पर्यावरणीय दबाव को कम करने में भी मदद करती है। यह दृष्टिकोण किसानों को पर्यावरणीय स्थिरता के साथ-साथ आर्थिक लाभ भी प्रदान करता है।

चित्र-1. संरक्षण कृषि के 3 सिद्धांत

4. फसल विविधीकरण

फसल विविधीकरण को फसलों की विविधता को बढ़ाने के प्रयास के रूप में माना जा सकता है। भारत में फसल विविधीकरण को आम तौर पर पारंपरिक रूप से उगाई जाने वाली कम लाभकारी फसलों से अधिक लाभकारी फसलों की ओर बढ़ने के रूप में देखा जाता है। फसल विविधीकरण की आवश्यकता: कृषि में विविधता बढ़ाने से किसानों को अपनी आय के लिए एक ही फसल पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। यह अप्रत्याशित जलवायु घटनाओं के प्रभावों से बचाने में मदद करता है और फसल उत्पादन को अधिक लचीला बनाता है। फसल विविधीकरण के माध्यम से फसल उत्पादन में स्थिरता और लाभप्रदता बढ़ाई जा सकती है। यह कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को अधिक लचीला बनाता है और किसानों को जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक लचीला होने में सहायता करता है।

5. समेकित कृषि प्रणाली

समेकित कृषि प्रणाली खाद्य उत्पादन की मांग में निरंतर वृद्धि, आय की स्थिरता और विशेष रूप से सीमित संसाधनों वाले छोटे और सीमांत किसानों के लिए पोषण में सुधार का संभावित समाधान प्रतीत होता है। समेकित कृषि प्रणाली का महत्व: समेकित कृषि प्रणाली एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसमें कई फसलों और उद्यमों को एक साथ जोड़ा जाता है।

इसका उद्देश्य संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना और उत्पादन में सुधार करना है। यह प्रणाली छोटे और सीमांत किसानों के लिए अत्यधिक लाभकारी हो सकती है, जो कुल कृषक समुदाय का लगभग 85% हैं। समेकित कृषि प्रणाली में विभिन्न कृषि पद्धतियों का उपयोग किया जाता है, जैसे कि अनाज, फलियां, सब्जियाँ, पशुधन, मछली पालन, आदि। यह प्रणाली किसानों की आय में वृद्धि करने के साथ-साथ पर्यावरण को भी संरक्षित करती है। समेकित कृषि प्रणाली ही एकमात्र दृष्टिकोण है जो विभिन्न उद्यमों के उप-उत्पादों के पुनर्चक्रण के कारण गुणवत्ता वाले खाद्य उत्पादों का उत्पादन करके भारतीय किसानों को वैश्विक बाजार में आत्मनिर्भर और प्रतिस्पर्धी बना सकता है।

6. धान की सीधी बुवाई

जल और श्रम की कमी के कारण पारंपरिक रोपित चावल के उत्पादन में समस्याएँ आती हैं। सीधे बीज वाले चावल (डीएसआर) एक प्रभावी विकल्प है जो जल की बचत, श्रम की कमी और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी कर सकता है। डीएसआर में बीज को सीधे खेत में बोया जाता है, जिससे फसल की जल की आवश्यकताएँ कम होती हैं और उत्पादन लागत घटती है। यह विधि कई किसानों को डीएसआर पर स्विच करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है, हालांकि खरपतवार नियंत्रण एक महत्वपूर्ण चुनौती है।

चित्र 2. धान की सीधी बुआई

7. लेजर लैंड लेवलिंग एवम मेड़ पर रोपण

लेजर लैंड लेवलिंग स्थायी कृषि में योगदान करती है, सिंचाई जल की बचत, बेहतर इनपुट दक्षता और उच्च पैदावार प्रदान करती है। यह तकनीक पानी और उर्वरकों के उपयोग में सुधार करती है और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करती है। इसका उपयोग अन्य संसाधन-बचत प्रथाओं के साथ किया जाए तो लाभ और बढ़ सकते हैं। क्यारियों में फसलें बारी-बारी से उगाई जाती हैं, जिससे बीज, पानी और पोषक तत्वों की बचत होती है। एफआईआरबीएस प्रणाली से अनाज की उपज प्रभावित किए बिना बीज, पानी और पोषक तत्वों की 25-40% बचत होती है। यह विधि खरपतवार प्रबंधन और फसल विविधीकरण में भी सहायक है।

8. जैविक खेती एवम साइट विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन

जैविक कृषि कृत्रिम उर्वरकों और कीटनाशकों से बचने के लिए फसल चक्र, फसल अवशेष, पशु खाद और जैविक कीट नियंत्रण पर निर्भर करती है। यह प्रणाली मिट्टी और पारिस्थितिक तंत्र की सेहत को बनाए रखने के सिद्धांतों पर आधारित है और किसानों को रसायनों के बजाय प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को प्रोत्साहित करती है। साइट-विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन '5R ' सिद्धांतों (सही समय, मात्रा, स्थान, स्रोत, और तरीका/संयोजन) पर निर्भर करता है। यह दृष्टिकोण फसल की आवश्यकताओं के अनुसार पोषक तत्वों का उपयोग बढ़ाता है, जिससे उच्च उपज और बेहतर आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। हाल की प्रौद्योगिकियाँ जैसे SPAD मीटर और ग्रीन सीकर इसका समर्थन करती हैं।

चित्र 3. पोषक तत्व प्रबंधन के नियम

निष्कर्ष:

भारत में कुशल कृषि-प्रौद्योगिकियों का उपयोग फसल उत्पादन में सुधार के लिए आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए जल उपयोग दक्षता में सुधार, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करना, संरक्षण कृषि को अपनाना, और फसल विविधीकरण जैसे उपाय महत्वपूर्ण हैं। एकीकृत कृषि प्रणाली को बढ़ावा देकर, किसानों की आय में वृद्धि की जा सकती है, जबकि पर्यावरणीय स्थिरता भी सुनिश्चित की जा सकती है। इस प्रकार, भारतीय कृषि में कुशल कृषि-प्रौद्योगिकियों का उपयोग करते हुए, किसानों को जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक लचीला और टिकाऊ बनाने के लिए एक ठोस कदम उठाया जा सकता है।

***

हरित ऊर्जा की उपयोगिता

मनीषा टम्टा[1], नेहा चंद[2], हिमानी बिष्ट[2], नेहा पारीक[4], उमेश कुमार मिश्र[1],अभिषेक कुमार[1], अभिषेक कुमार दूबे[1], कुमारी शुभा[1] एवं शिवानी[1]

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना[1] ; जी.बी.पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर[2]

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली[3] ; बिहार कृषि विश्वविद्यालय, भागलपुर[4]

हमारे दैनिक जीवन में लगभग हर क्षेत्र में हमें किसी न किसी प्रकार के ऊर्जा (विद्युत अथवा यांत्रिक) की आवश्यकता होती है। आज के इस तकनीकी और डिजिटल युग में व्यक्तिगत अथवा औद्योगिक क्षेत्र में हर जगह घर विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता में वृद्धि हुई है। कई दशकों से हमने इस ऊर्जा की आपूर्ति जीवाश्म ईंधन द्वारा की है। जीवाश्म ईंधन प्रकृति में निश्चित मात्रा में उपलब्ध है और साथ ही इसकी उत्पादन प्रक्रिया में भारी प्रदूषण उत्पन्न होता है। वर्तमान समय में बढ़ती आबादी, घटते प्राकृतिक संसाधन और जलवायु परिवर्तन सभी के लिए बड़ी चुनौती बन गए हैं, ऐसे में "हरित ऊर्जा" को एक टिकाऊ ऊर्जा विकल्प के रूप में देखा जा सकता है। हरित ऊर्जा जलवायु परिवर्तन से निपटने, पर्यावरण प्रदूषण को कम करके वायु की गुणवत्ता में सुधार करने में सक्षम है। हरित ऊर्जा वर्तमान समय और आने वाले एक बेहतर भविष्य भी जरूरत है। यह एक नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत होने के कारण पर्यावरण के अनुकूल है, रोजगार सृजन में सहायक है और उपयोगकर्ता की आर्थिक स्थिति को को भी मजबूत करती है। इस लेख का उद्देश्य आम जनता के बीच इसकी उपयोगिता को बढ़ाने के लिए इसके बारे में उचित जानकारी प्रदान करना है।

हरित ऊर्जा: यह शब्द उस ऊर्जा के लिए उपयोग किया जाता है जो नवीकरणीय स्रोतों (जैसे- सूर्य का प्रकाश, पानी और हवा, इत्यादि। यह ऐसे स्रोत हैं, जिनकी लगातार पुन:पूर्ति की जा सकती है) से आती है। हरित ऊर्जा एक स्वच्छ और टिकाऊ ऊर्जा है, जिसका उत्पादन किसी भी प्रकार की ग्रीनहाउस गैसों को वायुमंडल में नहीं छोड़ता है। अर्थात इस ऊर्जा का कोई भी पर्यावरणीय दुष्प्रभाव नही है।हरा रंग प्रकृति का प्रतीक है और क्योंकि यह ऊर्जा पृथ्वी द्वारा प्राप्त प्राकृतिक संसाधनों से आती है, इसीलिए इसे "हरित ऊर्जा" नाम से जाना जाता है। इस ऊर्जा का हम ज्यादातर बिजली के रूप में उपयोग करते हैं। अक्सर 'नवीकरणीय ऊर्जा', 'हरित ऊर्जा' और 'स्वच्छ ऊर्जा' शब्द को एक दूसरे के स्थान पर उपयोग किया जाता है लेकिन इनके बीच महत्वपूर्ण अंतर है। नवीकरणीय ऊर्जा, प्राकृतिक रूप से उत्पन्न स्रोतों आती है जिन्हें प्राकृतिक रूप से और पूरी तरह से प्रतिस्थापित किया जा सकता है। हरित ऊर्जा भी प्राकृतिक स्रोतों से ही आती है और नवीकरणीय ऊर्जा का ही एक उपसमूह है, जिसमें ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए किसी भी प्रकार का कार्बन उत्सर्जन नहीं किया जाता। हरित ऊर्जा सबसे छोटे पर्यावरणीय पदचिह्न वाले संसाधनों का प्रतिनिधित्व करता है। अधिकांश हरित ऊर्जा स्रोत नवीकरणीय होते हैं, परन्तु सभी नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत को पूरी तरह से हरित नहीं होते। स्वच्छ ऊर्जा आवश्यक रूप से नवीकरणीय नहीं होती है और इसके उत्पादन के दौरान शून्य या बहुत कम मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड और रासायनिक संदूषक होता है।

हरित ऊर्जा के प्रकार-

- **सौर ऊर्जा :** सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होने वाली ऊर्जा को हम सौर ऊर्जा कहते हैं। इस ऊर्जा को उपयोग में लाने के लिए सौर पैनल लगाए जाते हैं। जो सूरज की रोशनी को बिजली में परिवर्तित करते हैं। यह एक अपेक्षाकृत सुलभ संसाधन है, जिसे लोग घरों, इमारतों और खेतों में सौर पैनल स्थापित करके व्यक्तिगत या औद्योगिक रूप से उपयोग कर सकते हैं।
- **पवन ऊर्जा :** पवन की गतिज ऊर्जा से प्राप्त होने वाली ऊर्जा को पवन ऊर्जा कहते हैं। इस ऊर्जा से बिजली उत्पन्न करने के लिए पवन टरबाइन का उपयोग किया जाता है। इस ऊर्जा को पर्यावरण के सबसे अनुकूल संसाधनों में से एक माना जाता है।
- **जलविद्युत :** नदियों की धाराओं की गतिज ऊर्जा से प्राप्त की जाने वाली ऊर्जा को जल ऊर्जा/ जलविद्युत कहते हैं। इस ऊर्जा से बिजली उत्पन्न करने के लिए नदियों पर बनाए जाते हैं और टरबाइन का उपयोग किया जाता है।
- **जैव ऊर्जा :** यह कार्बनिक कचरे से उत्पन्न की गई एक प्रकार की ऊर्जा (स्वच्छ ऊर्जा)है, जिसके लिए सामान्यत: कृषि, शहरी और औद्योगिक कचरे का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार के उपलब्ध कचरे को जलाकर बायोमास बनाई जाती है। बायोमास में पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से उत्पन्न की गई रासायनिक ऊर्जा सन्निहित होती है। इसकी उत्पादन प्रक्रिया में ग्रीनहाउस गैसें निकलती हैं, जिसकी मात्रा जीवाश्म ईंधन से होने वाले प्रदूषण से कम ही होती है। इसका एक प्रमुख उदाहरण बायोएथेनॉल है जिसके लिए गेहूं, चुकंदर, गन्ना और मक्का को किण्वित किया जाता है।

- **भूतापीय ऊर्जा :** पृथ्वी से प्राप्त ऊष्मा को भूतापीय ऊर्जा कहा जाता है। यह ऊर्जा एक प्रकार के गर्म पानी के भंडारों से प्राप्त की जाती है जो पृथ्वी की सतह के नीचे अलग-अलग तापमान और गहराई पर प्राकृतिक रूप से मौजूद हैं अथवा मानव निर्मित हैं। इस ऊर्जा का उपयोग करने के लिए भूमिगत जलाशयों में मीलों गहरे कुएं खोदे जाते हैं। जिससे अंततः टर्बाइनों का उपयोग कर बिजली उत्पन्न की जाती है।

हरित ऊर्जा के लाभ:

- हरित ऊर्जा का उपयोग हानिकारक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम कर पर्यावरण को स्वच्छ रखने में मदद करता है।
- विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, वायु प्रदूषण के कारण दुनिया भर में सालाना 4.2 मिलियन मौतें होती हैं। हरित ऊर्जा वायु प्रदूषण को कम कर शारीरिक स्वास्थ्य में वृद्धि करने में भी सहायक है।
- हरित ऊर्जा का उपयोग हानिकारक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम कर जलवायु परिवर्तन से निपटने में सहायक है।
- हरित ऊर्जा का उपयोग प्राकृतिक संसाधनों की स्थिरता और निरन्तरता को भी सुनिश्चित करता है।
- हरित ऊर्जा, रोजगार उपलब्ध कराने और जीवाश्म ईंधन पर खर्च कम करके आय में वृद्धि करने में सहायक है।
- हरित ऊर्जा प्लांट एक बार स्थापित करने पर कई सालों तक आर्थिक लाभ देने में सक्षम हैं और यह घरेलू, व्यावसायिक एवं वाणिज्यिक सभी प्रकार के क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होते हैं।
- हरित ऊर्जा से उत्पादित बिजली को बैटरियों में जमा किया जा सकता है, जिसका प्रयोग आवश्यकता पड़ने पर कभी-भी और कहीं-भी किया जा सकता है।

हरित ऊर्जा की सीमाएं:

- हरित ऊर्जा उत्पादन मौसमीय और वायुमंडलीय स्थितियों पर निर्भर करता है। जलविद्युत ऊर्जा हेतु पर्याप्त वर्षा की आवश्यकता होती है, पवन टर्बाइनों की ब्लेडों को हिलाने के लिए न्यूनतम हवा की गति (10 किलोमीटर प्रति घंटा) की आवश्यकता होती है और सौर ऊर्जा हेतु सौर पैनलों को सूर्य की रोशनी, साफ आसमान और पर्याप्त धूप की आवश्यकता होती है।
- हरित ऊर्जा प्लांट का रखरखाव कई बार काफी महंगा हो सकता है, जिससे कंपनियों और सरकारों का निवेश प्रभावित हो सकता है।
- हरित ऊर्जा प्लांट, क्षेत्र विशेष की मांग करते है और साथ ही अधिक भूमि की आवश्यकता रखते हैं। ऊर्जा के अन्य स्रोतों की तुलना में, नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत ऊर्जा उत्पादन के लिए जगह घेरते हैं, जैसे - लगभग 20 मेगावाट सौर ऊर्जा बिजली उत्पादन हेतु सोलर प्लांट को 100 एकड़ भूमि की आवश्यकता होती है और 2 मेगावाट की पवन टरबाइन के लिए 1.5 एकड़ जगह की आवश्यकता होती है।
- नवीकरणीय ऊर्जा को संग्रहीत करने के लिए बैटरी की आवश्यकता होती है और केवल 6 kWh की एक सोलर बैटरी की कीमत 90,000 से 2,50,000 रुपये तक हो सकती है।
- **हरित ऊर्जा का कृषि में उपयोग:** खेती के प्रत्येक चरण (जुताई, बुवाई, सिंचाई, खरपतवार- कीट- बीमारी- पोषक तत्व प्रबंधन, फसल कटाई, इत्यादि) में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। कृषि क्षेत्र में डीजल और विद्युत दोनों ही प्रकार की ऊर्जा का उपयोग होता है। कृषि उपकरणों जैसे ट्रैक्टर, पावर टिलर, फर्टि कम सीड ड्रिल, मोटर पंप सेट, हार्वेस्टर, इत्यादि सभी का उपयोग ऊर्जा की पूर्ति पर निर्भर करता है। भारत में प्रति हेक्टेर कृषि हेतु बिजली की खपत 2.49 किलोवाट है और वर्तमान समय में आधुनिक कृषि में ऊर्जा की खपत और भी अधिक बढ़ गई है। दिन प्रति दिन डीजल और विद्युत दोनों की ही मांग और कीमतों में वृद्धि हो रही है, जिस कारण कृषि कार्य प्रभावित होते हैं और खर्च भी बढ़ता है। हरित ऊर्जा का उपयोग कृषि में विद्युत ऊर्जा की निरंतर उपलब्धता बनाए रखने और संबंधित खर्च को कम करने में पूर्ण रूप से सक्षम है। कृषि में हरित ऊर्जा का उपयोग विभिन्न माध्यमों से किया जा सकता है-
- **सौर ऊर्जा का उपयोग:** अनाज को सुखाने, प्रसंस्करण, जल ऊष्मन, खाना पकाने, जल परिष्करण, प्रशीतलन और विद्युत ऊर्जा के उत्पादन के लिए सौर ऊर्जा का सहज रूप से उपयोग किया जा सकता है। जिसके लिए बाजार में कई तरह के उपकरण जैसे - सोलर ड्रायर, सोलर स्पेस हीटिंग सिस्टम, सोलर वाटर हीटर, सोलर कुकिंग सिस्टम, सोलर स्टीम जनरेशन, सोलर वाटर पंप, सोलर पावर जनरेटर, इत्यादि उपलब्ध हैं। सौर ऊर्जा का उपयोग करने से सिंचाई और अन्य कृषि कार्यों हेतु जीवश्म ईंधन की खपत कम होती है और

उससे जुड़े खर्च भी कम होते है। सौर- वृक्ष और एग्रीवोल्टिक सिस्टम के नीचे भूमिगत क्षेत्र का उपयोग कृषि कार्यों हेतु किया जा सकता है। यह दोनों सिस्टम बहुत अच्छी मात्रा में विद्युत ऊर्जा (बिजली) का उत्पादन करते हैं जिसका उपयोग ई- कृषि उपकरणों जैसे ई-ट्रैक्टर, ई-पावर टाइल, ई- वाटर पंपिंग के संचालन हेतु बड़ी ही आसानी से किया जा सकता है।

- **जैव ऊर्जा का उपयोग:**गन्ना की खोई के बायोमास से विद्युत उत्पादन किया जाता है। गन्ना उत्पादक किसान गन्ने की खोई से भी विद्युत उत्पादन में सहयोग कर आर्थिक लाभ पा सकते हैं। बायोगैस के उत्पादन के लिए रसोई की व्यर्थ, कृषि अवशेषों और गोबर का प्रयोग किया जाता है। इस प्रक्रिया के द्वारा बनी गैस का उपयोग रसोई गैस और बिजली के रूप में किया जाता है। इस प्रक्रिया के पूर्ण होने पर बचे ठोस अवशेष और स्लरी को खाद के रूप में खेतों के प्रयोग किया जा सकता है, जिससे मृदा की गुणवत्ता में सुधार होता है और फसल पैदावार में वृद्धि होती है। बायोडीजल, वनस्पति तेल और एल्कोहॉल के पार-ईस्टरीकरण के माध्यम से तैयार किया जाता है। यह एक प्रकार का जैविक ईंधन है, इस तेल को पूर्ण अथवा आंशिक तौर पर पेट्रोल और डीजल के स्थान पर उपयोग किया जा सकता है। इसके लिए सोयाबीन / पाम तेल / अखाद्य धान एवं गेहूँ का भूसा / बंजर जमीन पर उगने वाली फसलों जैसे करंज एवं जट्रोफा का उपयोग किया जाता है। किसान बंधु इन फसलों को उगाकर अतिरिक्त आर्थिक लाभ कमा सकते हैं।

- **पवन ऊर्जा का उपयोग:** पवन ऊर्जा का दोहन अधिकतर समुद्र तटवर्तीय क्षेत्रों में किया जाता है, क्योंकि इन तटवर्तीय क्षेत्रों में वर्षभर वायु की गति अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक होती है। पवन ऊर्जा के दोहन के लिए पवन चक्कियाँ स्थापित की जाती हैं, सामान्यतः जिनका उपयोग एक बड़े पैमाने पर विद्युत उत्पादन के लिए किया जाता है। पवन ऊर्जा चालित जल- पंप का उपयोग कृषि हेतु सिंचाई के काम में किया जाता है।

हरित ऊर्जा उत्पादन की दिशा में सरकारी प्रयास:भारत सरकार ने "नेशनल एक्शन प्लान ऑन क्लाइमेट चेंज" के तहत" राष्ट्रीय सौर मिशन" की स्थापना की, जिसमें वर्ष 2013 में 1000 मेगावाट सौर ऊर्जा प्राप्त करने की योजना बनाई। इसके बाद सरकार ने वर्ष 2019 में वर्ष 2030 तक नवीकरणीय ऊर्जा की अपनी स्थापित क्षमता को 450 GW तक ले जाने का लक्ष्य रखा। सरकार ने सौर ऊर्जा क्षमता का दोहन करने और किसानों को वित्तीय एवं जल सुरक्षा प्रदान के लिए पीएम-कुसुम (प्रधानमंत्री-किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान) योजन के अंतर्गत वर्ष 25,750 मेगावाट ऊर्जा उत्पादन का लक्ष्य रखा है। जिसके लिए सरकार सूक्ष्म, लघु और मध्यम औद्योगिक इकाइयों को नवीकरणीय ऊर्जा ग्रिड बनाने हेतु वित्तीय सहायता प्रदान कर रही है। सरकार जल-पंपों का सोलराइज़ेशन कर उपभोक्ता को दरवाज़े पर उपलब्ध बिजली वितरण की दिशा में भी कार्य कर रही है।ऊर्जा उत्पादन को बढ़ाने के लिए,भारत सरकार का नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय अपनी वेबसाइट पर अक्षय ऊर्जा पोर्टल और इंडिया रिन्यूएबल आइडिया एक्सचेंज (IRIX) पोर्टल की भी होस्टिंग करता है।पर्यावरण को सुरक्षित रखने में आम जनता की सहभागिता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सरकार हरित ऊर्जा के उपयोग हेतु नागरिकों को सब्सिडी परियोजनाओ के माध्यम से प्रोत्साहित कर रही है।इसके अतिरिक्त भी भारत सरकार कई सारी योजनाओं पर कार्य कर रही है, जैसे- प्रधानमंत्री सहज बिजली हर घर योजना (सौभाग्य), हरित ऊर्जा गलियारा (GEC), राष्ट्रीय स्मार्ट ग्रिड मिशन (NSGM) और राष्ट्रीय स्मार्ट मीटर कार्यक्रम (SMNP), हाइब्रिड और इलेक्ट्रिक वाहनों का तेज़ी से अंगीकरण और विनिर्माण (FAME), अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन (ISA), सौर पार्कों और अल्ट्रा मेगा सौर विद्युत परियोजनाओं का विकास, राष्ट्रीय जैवऊर्जा कार्यक्रम, ग्रिड कनेक्टेड सोलर रूफटॉप प्रोग्राम, सौर पीवी मॉड्यूल पीएलआई योजना, पीएम – सूर्य घर : मुफ्त बिजली योजना, इत्यादि।

निष्कर्ष: बीते कुछ समय से प्राकृतिक संसाधनों के संकुचित होने और निरंतर बढ़ती आबादी के कारण मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऊर्जा की मांग बढ़ी है। जिसकी आपूर्ति के लिए हरित ऊर्जा श्रोत एक टिकाऊ, पर्यावरण अनुकूल और लाभकारी विकल्प है। कृषि में प्रत्येक चरण पर, विशेषकर सिंचाई हेतु अत्यधिक ऊर्जा की खपत होती है, जिसके लिए सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा का उपयोग किया जा सकता है। हरित ऊर्जा वर्तमान ही नहीं अपितु भविष्य की भी ऊर्जा आवश्यकता को पूर्ण करने में सक्षम है। कोई भी भारतीय नागरिक सरकार द्वारा चलाई जा रही हरित ऊर्जा को बढ़ावा देने वाली परियोजनाओं का लाभ उठा सकता है। हरित ऊर्जा का अधिक से अधिक उपयोग देश को ऊर्जा दक्ष बनाने, जलवायु परिवर्तन के चलते खाद्य आपूर्ति, जल आपूर्ति और ऊर्जा आपूर्ति की चुनौतियों से लड़नेमें सक्षम बनाने और देश के शून्य उत्सर्जन लक्ष्य को हासिल करने में भीमदद करेगा।

***

झारखंड के पूर्वी पहाड़ी एवं पठारी क्षेत्र के कोड़ो बत्तख जर्मप्लाज्म का निरूपण

रीना कमल[1], पी.सी. चंद्रन[2], अमिताभ डे[2], ए.के. मिश्रा[1], रेखा शर्मा[2], अणिमा प्रभा[1], रजनी कुमारी[2], राकेश कुमार[2], कमल शर्मा[2], उमेश कुमार मिश्र[1] एवं अनुप दास[1]
कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची[1]; भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना[2]
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल[1]

सारांश

पशु आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण और सुधार के लिए उनकी शारीरिक विशेषताओं की जानकारी एक मूल आवश्यकता है। इस संदर्भ में, झारखंड के पांच जिलों (पश्चिम सिंहभूम, सरायकेला-खरसावां, राँची, दुमका और पाकुड़) की कोड़ो बत्तखों की शारीरिक विशेषताओं का अध्ययन किया गया तथा उनके रूपात्मक और मापात्मक लक्षणों पर आधारित आँकड़ों का विश्लेषण किया गया। परिणामों से पता चला कि नर बत्तखों (ड्रेक) और मादा बत्तखों (डक) में शरीर के विभिन्न भागों (सिर, गर्दन, छाती, पंख और पूंछ) की पंखों की रंगत में विविधता पाई गई। ड्रेक में सिर का प्रमुख रंग काला (44.86%) था, जबकि डक में यह काला-सफेद मिश्रण (65.33%) पाया गया। गर्दन का रंग ड्रेक में सफेद व काला/भूरा मिश्रण (57.94%) तथा डक में प्रमुखतः सफेद (79.33%) था। वक्ष का रंग ड्रेक में भूरा (41.25%) जबकि डक में सफेद व काला/भूरा मिश्रण (52.67%) पाया गया। पंखों में ड्रेक में काला/भूरा और सफेद मिश्रण (56.07%) तथा डक में 74.67% यही मिश्रण प्रमुख था। पूंछ का रंग दोनों लिंगों में प्रमुखतः काला था, जो ड्रेक में 57.94% तथा डक में 90.00% पाया गया। चोंच का प्रमुख रंग नर में हरा-काला (55.14%) तथा मादा में काला (58.67%) था। आँखों का प्रमुख रंग दोनों में भूरा पाया गया। टांगों एवं पंजों की झिल्ली दोनों का रंग मुख्यतः नारंगी (नर-57.94%, मादा-68.0%) था। कोड़ो बत्तखों का आकार-प्रकार, आकर्षक काले एवं सफेद मिश्रित रंग के पैटर्न वाले पंख के साथ अद्वितीय है। ये बत्तखें यहाँ की स्थानीय जलवायु परिस्थितियों में अच्छी तरह से अनुकूलित हैं और इन्हें पालने में बहुत कम निविष्टियों की आवश्यकता होती है। अंडों से बच्चे निकलने एवं पालन की प्रक्रिया प्राकृतिक होती है। इनमें औसतन अंडा उत्पादन 66.92±2.00 तथा वयस्क शरीर भार 1.63±4.23 किलोग्राम पाया गया। इनके गुणात्मक लक्षणों में भिन्नता देखी गई। झारखंड की स्थानीय बत्तखों में पाई गई शारीरिक विविधताएँ इनके प्रजनन कार्यक्रमों और चयन हेतु उपयोगी हो सकती है।

कुंजी शब्द: निरूपण, झारखंड, कोड़ो बत्तख, रूपात्मक लक्षण, मापात्मक लक्षण

प्रचलित शीर्षक:

झारखंड की बत्तखों का निरूपण

परिचय:

झारखंड में निर्धन किसान अपनी आजीविका के लिए व्यापक प्रबंधन प्रणाली के अंतर्गत पारंपरिक तरीके से स्थानीय बत्तखों का पालन करते हैं (कमल एवं अन्य, 2020)। देशी बत्तखों के अंडे मुर्गियों के अंडों की तुलना में बड़े आकार, अधिक स्वाद, उत्तम रंग और अधिक मूल्य वाले होने के कारण उपभोक्ताओं द्वारा अधिक पसंद किए जाते हैं। झारखंड में बत्तखों की संख्या कुक्कुट की कुल संख्या का केवल 6.90% है, और वर्ष 2019 में इनकी कुल संख्या लगभग 1.705 मिलियन थी (बी.ए.एच.एस. 2019)। कुल कुक्कुट उत्पादन में बत्तखों के कम योगदान के बावजूद ये बत्तखें झारखंड में, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, पोषण स्तर और आय में सुधार तथा भूख और खाद्य असुरक्षा को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारत में अंडा देने वाली खाकी कैम्पबेल नामक बत्तख की नस्ल उपलब्ध है, फिर भी किसानों द्वारा आकर्षक काले/भूरे और सफेद रंग के मिश्रित पंखों के कारण देशी बत्तखों को अधिक पसंद किया जाता है।

नस्ल का निरूपण, आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण के लिए एक अनिवार्य और पहली शर्त है (लैटशॉ एवं बिशप, 2001, विश्व खाद्य संगठन, 2012)। निरूपण या लक्षण-वर्णन से, चाहे वह बाहरी आकार-प्रकार (फीनोटाइपिक) हो या आनुवंशिक (जीनोटाइपिक), देशी नस्लों के सतत प्रबंधन और विभिन्न नस्लों के बीच आनुवंशिक विविधता को समझने के लिए महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है (याकूबू एवं अन्य, 2011, महारानी एवं अन्य, 2019)। नस्लों के लक्षणों में आपसी और पारिस्परिक भिन्नता उनके बीच चयन और उत्पादन कार्यक्रमों के लिए उत्कृष्ट अवसर प्रदान करती है।

शोधकर्ताओं द्वारा प्रारूपिक लक्षण की जानकारी का उपयोग विभिन्न कृषि-पर्यावरणीय क्षेत्रों में देशी कुक्कुट प्रजातियों की रूपात्मक विशेषताओं का वर्णन और तुलना करने के लिए किया गया है। उदाहरण के लिए, कुछ भारतीय बत्तखों जैसे असम की पाटी (महंता एवं अन्य, 2001), बिहार की मैथिली (कमल एवं अन्य, 2020), ओडिशा की देशी बत्तख (पाढ़ी 2014, कमल एवं अन्य, 2019), तमिलनाडु की सन्यासी एवं कीरी (वीरमणि एवं अन्य 2014), असम की नागेश्वरी (शर्मा एवं अन्य 2002) और नाइजीरिया की बत्तखों (याकूबू एवं अन्य, 2011, ऑगह एवं कबीर, 2014, ओगुटुंजी एवं एयोरिंदे, 2015) पर प्रारूपिक लक्षणों का अध्ययन किया गया है।

भारत में स्थानीय बत्तखों की नस्लों के निरूपण पर सीमित अध्ययन हुए हैं। अतः यह अध्ययन झारखंड की इस विशिष्ट देशी कोड़ो बत्तख, जिसे झारखंडी बत्तख के नाम से भी जाना जाता है, की रूपात्मक एवं मापात्मक विशेषताओं का अध्ययन करने के उद्देश्य से किया गया, जो निरूपण के आधार पर इनकी पहचान को परिभाषित करने में उपयोगी हो सकता है।

सामग्री एवं विधियाँ

अध्ययन का स्थान और प्रायोगिक पशु

यह अध्ययन झारखंड के पांच जिलों -पश्चिम सिंहभूम, सरायकेला-खरसावां, राँची, दुमका और पाकुड़ में किया गया। अधिकांश बत्तखें स्थानीय किसानों द्वारा पारंपरिक भ्रमणशील प्रणाली के अंतर्गत पाली जा रही थीं। अध्ययन के लिए सोच-समझकर उन गांवों का चयन किया गया जहाँ के ग्रामीणों के बीच स्थानीय प्रशासन द्वारा हाल में किसी भी विदेशी नस्ल की बत्तखों के बच्चों का वितरण नहीं किया गया। आंकड़े 12 से 18 माह आयु वर्ग की 150 मादा बत्तखों (डक) और 107 नर बत्तखों (ड्रेक) से एकत्र किए गए, जिन्हें यादृच्छिक रूप से चुना गया था। केवल देशी बत्तखों का पालन करने वाले परिवारों का चयन किया गया। विदेशी या संकर बत्तखें रखने वाले घरों को अध्ययन में शामिल नहीं किया गया। जानकारी एकत्र करने के लिए बत्तखों की

स्थिति, उनके प्रारूपिक लक्षण जैसे पंखों का रंग, पैटर्न, चोंच का रंग, त्वचा का रंग, टांगों का रंग, आंखों का रंग, पंजों की झिल्ली का रंग, शरीर की आकृति, चोंच की बनावट और अंडे के छिलके के रंग को प्रत्यक्ष अवलोकन के माध्यम से रिकॉर्ड किया गया। मापात्मक लक्षण जैसे चोंच की लंबाई एवं चौड़ाई, सिर की चौड़ाई, गर्दन की लंबाई, शरीर की लंबाई, पंखों का विस्तार और टांगों की लंबाई को उसी स्थान पर मापा गया।

मापे गए लक्षण

सभी बत्तखों का निरूपण, रूपात्मक और मापात्मक विशेषताओं के अनुसार किया गया, जैसा कि क्यूस्टा (2008) और फ्रांसेक एवं अन्य (2011) द्वारा दिए गए वर्णनों के अनुसार किया गया। रूपात्मक लक्षणों में पंखों का रंग (सिर, गर्दन, छाती, पंख, पूंछ), पंखों का पैटर्न, चोंच का रंग, त्वचा का रंग, टांगों का रंग, आंखों का रंग, पंजों की झिल्ली का रंग, शरीर की आकृति, चोंच का आकार, अंडे के छिलके का रंग शामिल थे। मापात्मक लक्षणों में चोंच की लंबाई एवं चौड़ाई, सिर की चौड़ाई, गर्दन की लंबाई, शरीर की लंबाई, पंखों का फैलाव, टांगों की लंबाई की माप की गई। सभी माप फीता और स्लाइड कैलिपर से सेंटीमीटर में की गईं। प्रारूपिक लक्षणों का आँखों से प्रत्यक्ष अवलोकन किया गया। 12 माह तक की आयु में बत्तखों की वृद्धि के आंकड़े भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनु.परि., पटना द्वारा बनाए गए झुंड रिकॉर्ड शीट से एकत्र किए गए।

सांख्यिकीय विश्लेषण

आंकड़ों का विश्लेषण एस.पी.पी.एस.14 सॉफ्टवेयर के उपयोग द्वारा किया गया जिससे माध्य, मानक त्रुटि, सीमा, आवृत्ति और प्रतिशत जैसे वर्णनात्मक आँकड़ों का विश्लेषण किया गया। रूपात्मक लक्षणों का विश्लेषण वर्णनात्मक सांख्यिकी द्वारा किया गया और प्रतिशत के रूप में तुलना की गई।

मापात्मक लक्षणों का विश्लेषण विविधताओं के एकतरफा विश्लेषण द्वारा किया गया और समूहों में महत्वपूर्ण अंतर (पी.<0.05) पाए जाने पर आगे का परीक्षण डंकन्स मल्टिपल रेंज टेस्ट द्वारा किया गया।

परिणाम और चर्चा

आकारिकी/गुणात्मक लक्षणों में भिन्नता

झारखंड की स्थानीय नर और मादा कोड़ो बत्तख की गुणात्मक विशेषताओं जैसे पंखों का रंग (अर्थात सिर, गर्दन, छाती, पंख और पूंछ), चोंच का रंग, त्वचा का रंग, टांगों का रंग, आँखों का रंग और पंजों की झिल्ली का रंग के विस्तृत आँकड़े तालिका-1 में प्रस्तुत किए गए हैं। पश्चिम बंगाल (बनर्जी, 2013), ओडिशा (कमल एवं अन्य, 2019) और बिहार (कमल एवं अन्य, 2020) की देशी बत्तखों में भी कोई विशिष्ट पंख पैटर्न नहीं पाया गया। विभिन्न बत्तखों में चोंच का रंग अलग-अलग देखा गया।

तालिका 1. झारखंड की कोड़ो बत्तखों में लिंग के आधार पर गुणात्मक लक्षणों में भिन्नता

	अंग	नर बत्तख	मादा बत्तख
1.	**पंखों का रंग**		
a.	सिर	काला (44.86%) हरायुक्त काला (31.78%) भूरा (23.36%)	काला एवं सफेद मिश्रित (65.33%) काला (24.67%) सफेद (10%)
b.	गर्दन	सफेद एवं काला/ भूरा मिश्रित (57.94%) भूरा सफेद छल्ला सहित या रहित (42.06%)	सफेद (79.33%) सफेद एवं भूरा मिश्रित (20.67%)
c.	छाती	भूरा (41.25%) खाकी (40%) सफेद (18.75%)	सफेद एवं काला/भूरा मिश्रित (52.67%) सफेद (47.33%)
d.	पंख	भूरा सफेद मिश्रित (56.07%) काला एवं सफेद (43.93%)	भूरा/काला एवं सफेद मिश्रित (74.67%) भूरा (25.33%)
e.	पूँछ	काला (57.94%)	काला (90%)
		भूरा (42.06%)	भूरा (10%)
2.	**पंखों का पैटर्न**	काला एवं सफेद मिश्रित (67.29%) भूरा एवं सफेद मिश्रित (32.71%)	काला एवं सफेद (55.14) भूरा एवं सफेद (44.86)
3.	चोंच का रंग	हरायुक्त काला (55.14%) नारंगी (24.30%) पीला (20.56%)	काला (58.67%) नारंगी (22%) पीला (19.33%)

4.	त्वचा	सफेद (100%)	सफेद (100%)
5.	पैरों/ टांग का रंग	नारंगी (57.94%) पीला (28.04%) काला (14.02%)	नारंगी (68%) पीला (11.33%) काला (20.67%)
6.	आँखों का रंग	भूरा (71.03%) खाकी (28.97%)	भूरा (84%) खाकी (16%)
7.	पैरों का पंजा /झिल्ली	नारंगी (57.94%) पीला (28.04%) काला (14.02%)	नारंगी (68%) पीला (11.33%) काला (20.67%)
8.	**अन्य जानकारी**		
	शरीर की मुद्रा	हल्का उठा हुआ (100%)	हल्का उठा हुआ (100%)
	चोंच का आकार	क्षैतिज (100%)	क्षैतिज (100%)

चित्र 1. काले-सफेद पंख पैटर्न और नारंगी झिल्लियों वाली झारखंड की कोड़ो बत्तख

Fig. 2. काले-सफेद पंख पैटर्न और नारंगी झिल्लियों वाला झारखंड का कोड़ो ड्रेक

Fig. 3. भूरे और सफेद मिश्रित पंख पैटर्न वाला झारखंड का कोड़ो ड्रेक

पक्षावरण (शरीर के पंखों) का रंग

सिर का रंग

कोड़ो बत्तखों के सिर का रंग काला और सफेद मिश्रित था लेकिन नर बत्तखों में सिर का प्रमुख रंग काला (44.86%) और उसके बाद हरायुक्त काला (31.78%) पाया गया जबकि तमिलनाडु की स्थानीय बत्तख सन्यासी और कीरी के सिर क्रमशः चमकदार भूरे और काले पंखों से ढँके थे (वीरमणि एवं अन्य, 2014)।

गर्दन का रंग

कोड़ो बत्तखों में गर्दन के चार रंग (नर में सफेद और काला/भूरा मिश्रित और भूरा तथा मादा में सफेद और सफेद और भूरा मिश्रित) देखे गए। नर बत्तखों में सफेद और काला/भूरा मिश्रित गर्दन (57.94%) और मादा बत्तखों में सफेद (79.33%) सबसे अधिक पाया गया। नागेश्वरी बत्तखों में नर और मादा दोनों की गर्दन का रंग पूरी तरह से काला था (मोर्दुज्जमान एवं अन्य, 2015) तथा तमिलनाडु के नर बत्तखों में सन्यासी और कीरी की गर्दन का रंग काला था (वीरमणि एवं अन्य, 2014)।

छाती का रंग

कोड़ो नर बत्तख में छाती का रंग 41.25% भूरा, खाकी (40.00%) और मादाओं में 52.67% सफेद और काला/भूरा मिश्रित था। नागेश्वरी बत्तख में, नर में छाती का रंग 84.62% सफेद था, जबकि मादाओं में 93.75% सफेद था (शर्मा एवं अन्य, 2002)।

पंखों का रंग और पूँछ का रंग

पंखों का सामान्य रंग नर (56.07%) और मादा (74.67%) दोनों में काले/भूरे और सफेद मिश्रित रूप में पाया गया, जिसके बाद जिसके बाद नर (43.93%) और मादा (25.33%) में स्लेटी (ऐश) और सफेद रंग का मिश्रण देखा गया। नर (57.94%) और मादा (90.00%) दोनों में पूँछ का रंग क्रमशः काला था। नागेश्वरी बत्तख में, नर और मादा दोनों में पंख और पूँछ का रंग पूर्णतः काला था (शर्मा एवं अन्य, 2002)

जबकि बिहार की मैथिली बत्तख के पंखों का रंग दोनों लिंगों में 50.00% से अधिक मामलों में भूरा, काला और सफेद मिश्रित होता है। नर बत्तख में पूंछ का रंग भूरा (53.33%) से लेकर काला (46.67%) तक होता है और मादा बत्तख में पूंछ का रंग भूरा होता है। देशी बत्तखों में पंखों का रंग पैटर्न मुख्यतः मोज़ेक होता है (कमल एवं अन्य, 2020)।

पंखों का पैटर्न

झारखंड की स्थानीय कोड़ो बत्तखों के पंख काले और सफेद रंग के होते हैं तथा नर बत्तखों के पंख गहरे भूरे रंग के होते हैं जिनमें काला रंग मिला होता है और गर्दन के चारों ओर अक्सर सफेद छल्ला होता है। नागेश्वरी बत्तख (मोर्दुज्जमान एवं अन्य, 2015) में भी थोड़े अंतर के साथ ऐसा ही पंख पैटर्न पाया जाता है। तमिलनाडु की सन्यासी मादा बत्तखों के पंख केसरिया रंग के होते हैं जिनमें गर्दन के चारों ओर अक्सर सफेद छल्ला होता है और नर बत्तखों के पंख कालायुक्त गहरे भूरे रंग के होते हैं। कीरी बत्तखों में काले और भूरे रंग के मिश्रित पंख होते हैं, जो गर्दन के चारों ओर सफेद छल्ले जैसे पंखों के साथ या उनके बिना धारियाँ बनाते हैं जबकि नर बत्तखों में गहरे काले और सफेद रंग के मिश्रित पंख होते हैं (वीरमणि एवं अन्य, 2014)।

चोंच का रंग

नर बत्तखों में चोंच का रंग हरायुक्त काला (55.14%), नारंगी (24.30%) और पीला (20.56%) पाया गया। मादा बत्तखों में चोंच का रंग काला (58.67%), नारंगी (22.00%) और पीला (19.33%) पाया गया। वर्तमान अध्ययन में चोंच का सर्वाधिक देखा गया काला रंग, मुस्कोवी बत्तखों पर बघेल (2007), नाइजीरियाई बत्तखों पर ओगुंटुंजी और अयोरिंडे (2015) एवं नागेश्वरी बत्तखों की रिपोर्ट (मोर्दुज्जमान एवं अन्य, 2015) की पुष्टि करती है। नागेश्वरी बत्तख में नर बत्तख की चोंच का रंग पीला (19.23%), काला (57.69%) और पीलेपन के साथ काला (23.07%) पाया गया। मादा बत्तख में चोंच का रंग काला (93.75%) और पीलायुक्त काला (6.25%) पाया गया। वीरमणि एवं अन्य (2014) ने पाया कि तमिलनाडु की स्थानीय बत्तखों (सन्यासी) में मादा की चोंच का रंग नारंगी और नर की चोंच का रंग पीलायुक्त नारंगी होता है, जबकि कीरी नर बत्तख की चोंच का रंग गहरा पीला होता है। बिहार की मैथिली बत्तख में, नर और मादा दोनों की चोंच का मुख्य रंग क्रमशः 43.33% और 43.75% था जबकि दोनों लिंगों में क्रमशः गहरा भूरा/काला रंग (40.00% और 37.50%) और नारंगी रंग (16.67% और 18.75%) भी देखा गया।

त्वचा और आँखों का रंग

नर बत्तख और मादा बत्तख दोनों की त्वचा का रंग सफेद था। कमल एवं अन्य (2019) द्वारा ओडिशा की देशी बत्तख और बिहार की मैथिली बत्तख में भी ऐसा ही पाया गया। (कमल एवं अन्य, 2020)।

नर बत्तख और मादा बत्तख दोनों में भूरे और राख जैसे रंग की आँखों का रंग क्रमशः 71.03 और 84.00%, 28.97 और 16.00% था। इसी प्रकार, मैथिली बत्तख में कमल एवं अन्य 2020 ने पाया कि दोनों लिंगों की आँखों का रंग भूरे (58.33% और 77.50%) से लेकर राख जैसे रंग (41.67% और 22.50%) तक भिन्न होता है। जबकि नर और मादा दोनों में काले और खाकी रंग की आँखों का रंग क्रमशः 88.46% और 84.37%, नागेश्वरी बत्तखमें 11.54% और 15.62% था (मोर्दुज्जमान एवं अन्य 2015)।

टांग का रंग

नर (57.94%) और मादा (68.00%), दोनों में टांगें मुख्यतः नारंगी रंग की होती हैं। इसी तरह का पंख पैटर्न, वीरमणि एवं अन्य (2014) और मुरुगन एवं अन्य (2009) द्वारा स्थानीय तमिलनाडु की सन्यासी और कीरी बत्तखों में भी देखा गया। सन्यासी बत्तख और कीरी बत्तख में नरक और बत्तख दोनों में टांग का रंग नारंगी होता है जबकि बिहार की मैथिली बत्तख में नर (51.67%) में टांग और झिल्लियों का रंग मुख्यतः नारंगी और मादा (56.25%) में पीला था। हालाँकि नर में पीला (48.33%) और मादा में नारंगी (43.75%) भी देखा गया (कमल एवं अन्य, 2020)।

पैरों का पंजा/झिल्लियों (वेब) का रंग

नर में झिल्लियों का रंग 57.94% नारंगी, 28.04% पीला और 14.02% काला पाया गया, जबकि मादा में यह 68.00% नारंगी (चित्र 1), 20.67% काला (चित्र 2) और 11.33% पीला (चित्र 3) था। इसी प्रकार, मोर्दुज्जमान एवं अन्य (2015) ने दो प्रकार के रंगों (काला, पीलायुक्त काला) के मिलने की सूचना दी।

शारीरिक संरचना

नर और मादा दोनों की शारीरिक संरचना हल्का उठा हुआ और चोंच क्षैतिज थी। ओडिशा देशी (कमल एवं अन्य, 2019) और मैथिली बत्तख (कमल एवं अन्य, 2020) के जननद्रव्य में भी इसी तरह की शारीरिक संरचना देखी गई।

अंडे के छिलके का रंग

झारखंड की स्थानीय कोड़ो बत्तखों के अंडे के छिलके का रंग क्रीमी सफेद पाया गया जो कमल एवं अन्य, (2019) द्वारा ओडिशा देशी बत्तख और कमल एवं अन्य, (2020) द्वारा बिहार की मैथिली बत्तखों में किए गए अवलोकन के समान था जबकि असम की नागेश्वरी बत्तख (शर्मा एवं अन्य 2002) में अंडे के रंग में नीलापन देखा गया।

आकारिक लक्षणों में भिन्नता

झारखंड की स्थानीय कोड़ो बत्तखों के आकारिक/मात्रात्मक लक्षणों की माध्य और मानक त्रुटियाँ तालिका 2 में वर्णित हैं। नर और मादा बत्तखों में, चोंच और सिर की चौड़ाई को छोड़कर सभी मात्रात्मक लक्षणों में भिन्नता पाई गई जो माध्य ($P<0.05$) के महत्वपूर्ण अंतर द्वारा दर्शाई गई है।

शारीरिक वजन

नर बत्तख और मादा वयस्क बत्तखों का औसत वजन क्रमशः 1.64±23.19 और 1.51±30.09 किग्रा. था। यह पूर्व की कमल एवं अन्य, 2019 की रिपोर्ट से मेल खाता है जिन्होंने ओडिशा बत्तख में नर बत्तख और मादा बत्तखों का औसत वयस्क वजन क्रमशः 1.80±0.02 और 1.41±0.02 किग्रा. बताया था। बिहार की मैथिली बत्तख में वयस्क नर और मादा देशी बत्तखों का औसत वजन क्रमशः 1.45±0.07 और 1.37±0.08 किग्रा. था (कमल एवं अन्य, 2020)। पाढ़ी एवं साहू (2011) ने ओडिशा की देशी बत्तखों में वयस्क नर एवं मादा बत्तख का शारीरिक भार 1.32 से 1.53 किग्रा. दर्ज किया। हालाँकि, विज एवं अन्य, (2010) ने पश्चिम बंगाल की देशी बत्तखों में वयस्क नर एवं मादा बत्तख का भार क्रमशः 1.30 और 1.50 किग्रा. बताया।

चोंच की लंबाई

मादा बत्तख (5.72±0.09 सेंमी.) की तुलना में नर बत्तख (6.22±0.06 सेंमी.) की

चोंच की लंबाई अधिक थी। इससे लिंगों के बीच महत्वपूर्ण अंतर का पता चला। वर्तमान निष्कर्ष कमल एवं अन्य, 2019 द्वारा समर्थित रहा, जिन्होंने मादा बत्तखों (5.60 सेंमी.,) की तुलना में नर बत्तखों (6.11 सेंमी.,) की चोंच की लंबाई अधिक बताई। मादा बत्तखों की तुलना में नर बत्तखों में चोंच की अधिक लंबाई उनके बड़े आकार और अनुकूलन क्षमता के कारण हो सकता है। हमारे द्वारा मापी गई चोंच की लंबाई के मान, मुरुगन एवं अन्य (2009) और वीरमणि एवं अन्य (2014) द्वारा सन्यासी (6.82±0.02) और कीरी (6.87±0.01 सेंमी.) बत्तखों की किस्मों के लिए बताए गए मानों से कम थे, लेकिन नागेश्वरी बत्तखों के मानों अर्थात, नर में 5.87±0.09 और मादा में 5.54±0.07 सेंमी., से अधिक थे (मोर्दुज्जमान एवं अन्य, 2015) और साथ ही पश्चिम बंगाल की देशी बत्तख के मानों से भी अधिक थे लिए (विज एवं अन्य, 2010)। इसी प्रकार, अजित एवं अन्य, (2009) द्वारा केरल की चारा और चेम्बल्ली बत्तखों के संबंध में नर बत्तखों की चोंच की लंबाई मादा बत्तखों की तुलना में उल्लेखनीय रूप से अधिक दर्ज की गई। जबकि याकूबु (2009) द्वारा अफ्रीकी मस्कोवी नर एवं मादा बत्तखों की चोंच की लंबाई क्रमशः 4.98 और 3.75 सेंमी.दर्ज की गई।

चोंच की चौड़ाई

वर्तमान परीक्षण में, नर बत्तख और मादा बत्तख की चोंच की चौड़ाई क्रमशः 3.17±0.05 सेंमी. और 3.14±0.04 सेंमी. दर्ज की गई। जबकि कमल एवं अन्य द्वारा ओडिशा के देशी नर बत्तख और मादा बत्तख में क्रमशः 3.70±0.04 सेंमी. और 3.46±0.03 सेंमी. चोंच की चौड़ाई देखी गई। ये निष्कर्ष पश्चिम बंगाल की देशी बत्तख (विज एवं अन्य, 2010) और नागेश्वरी बत्तख (मोर्दुज्जमान एवं अन्य, 2015) में पाई गई माप के समान ही थे।

सिर की चौड़ाई

झारखंड में स्थानीय कोड़ो बत्तखों के सिर की चौड़ाई क्रमशः नर बत्तख और मादा बत्तखों में क्रमशः 2.72±0.07 और 2.65±0.07 सेंमी. मापी गई। वर्तमान परीक्षण में नर बत्तख के सिर की चौड़ाई मादा बत्तख की तुलना में अधिक थी। निष्कर्ष ओडिशा की देशी बत्तखों (कमल एवं अन्य, 2019) में देखे गए रुझान के समान थे। पश्चिम बंगाल की देशी बत्तख (विज एवं अन्य, 2010) और नागेश्वरी बत्तखों (मोर्दुज्जमान एवं अन्य, 2015) में भी यही रुझान देखा गया। नागेश्वरी बत्तखों में सिर की चौड़ाई 3.49±0.02 और 3.36±0.04 सेंमी. मापी गई, जो वर्तमान अध्ययन (मोर्दुज्जमान एवं अन्य, 2015) से अधिक है। सिर की चौड़ाई पर वर्तमान अवलोकन कमोबेश विज एवं अन्य (2010) के निष्कर्ष के समान थे जिन्होंने बताया कि पश्चिम बंगाल में देशी बत्तखों के सिर की चौड़ाई क्रमशः 3.02±0.03 सेंमी. थी।

गर्दन की लंबाई

झारखंड के स्थानीय नर कोड़ो बत्तखों और मादा बत्तखों की गर्दन की लंबाई क्रमशः 13.60±0.28 और 12.25±0.29 दर्ज की गई। दोनों लिंगों में गर्दन की लंबाई में महत्वपूर्ण अंतर था ($P<0.05$)। कमल एवं अन्य (2019) ने ओडिशा के स्थानीय बत्तखों के नर और मादा के गर्दन की में क्रमशः 12.42±0.21 सेंमी. और 10.32±0.05 सेंमी. की औसत लंबाई दर्ज की, जबकि मुरुगन एवं अन्य (2009) ने नर और मादा सन्यासी बत्तखों के लिए क्रमशः 21.10 ±0.12 और 18.70 ±0.24 की गर्दन की लंबाई (सेंमी.) दर्ज की। कीरी नस्ल के नर और मादा बत्तखों की गर्दन की लंबाई 20.23 ±0.14 और 17.15 ±0.45 सेंमी. दर्ज की गई। मोर्दुज्जमान एवं अन्य (2014) द्वारा नागेश्वरी नस्ल में, नर बत्तखों की औसत गर्दन की लंबाई क्रमशः 23.49±0.58 सेंमी. और मादा बत्तखों की 21.59±0.49 सेंमी. दर्ज की गई।

शरीर की लंबाई

कुल मिलकर शरीर की लंबाई क्रमशः नर बत्तखों में 36.85±0.50 सेंमी. और मादा बत्तखों में 35.08±0.47 सेंमी. दर्ज की गई। दोनों लिंगों के बीच महत्वपूर्ण अंतर था ($P<0.05$)। वीरमणि एवं अन्य (2014) ने भी लिंगों के बीच समान अंतर पाए जाने की सूचना दी। इसके विपरीत, कमल एवं अन्य (2019) ने नर बत्तख और मादा बत्तख (ओडिशा देशी बत्तख) में शरीर की लंबाई (सेंमी.) के औसत मान 42.69±0.55 सेंमी. और 41.30±0.29 सेंमी. दर्ज किए। इसी प्रकार भारत में, सन्यासी और कीरी (मुरुगन एवं अन्य, 2009) तथा नागेश्वरी (जमान एवं अन्य, 2007) की शरीर की लंबाई क्रमशः 32.73, 31.26 evan 23.79 सेंमी. पाई गई है। इस अध्ययन में पाए गए निम्न मान नस्लों में अंतर के कारण है।

डैनों का विस्तार

झारखंड की स्थानीय कोड़ो बत्तखों में डैनों का फैलाव क्रमशः नर बत्तखों में 35.77±0.42 सेंमी. और मादा बत्तखों में 34.58±0.47 सेंमी. मापा गया। औसत पंख फैलाव नर की तुलना में मादा बत्तखों में अधिक पाया गया। बिहार की मैथिली बत्तखों के पंखों की औसत लंबाई नर बत्तखों में क्रमशः 31.36±1.56 सेंमी. और मादा बत्तखों में 32.07±1.70 सेंमी. पाई गई। जबकि ओडिशा की देशी बत्तख (कमल एवं अन्य, 2019) में यह माप भिन्न लेकिन अधिक पाई गई, जबकि नागेश्वरी नस्ल (मोर्दुज्जमान एवं अन्य, 2015) तथा सन्यासी और कीरी नस्ल की बत्तखों (मुरुगन एवं अन्य, 2009) में पंखों की लंबाई का मान कम देखा गया। नागेश्वरी बत्तख के पंखों की लंबाई नर बत्तखों और मादा बत्तखों में क्रमशः 24.58±0.49 सेंमी. और 21.99±0.53 सेंमी. दर्ज की गई।

टांगों की लंबाई

वर्तमान परीक्षण में, झारखंड के कोड़ो नर बत्तखों में टांग की औसत लंबाई (सेंमी.) 6.18±0.05 और बत्तखों में 6.09±0.06 थी। यह अवलोकन कमल एवं अन्य (2019) के निष्कर्ष से लगभग मिलता-जुलता था जिन्होंने बताया था कि ओडिशा के नर बत्तखों में टांग की औसत लंबाई (सेंमी.) 6.21 और मादा बत्तखों में 5.89 थी। जबकि रेंची एवं अन्य (1979) ने 12 सप्ताह की आयु वाले केरल के नर और मादा देशी बत्तखों में टांग की औसत लंबाई 6.44±0.04 और 6.15±0.02 सेंमी. दर्ज की और बताया कि नर बत्तखों की टांग की लंबाई मादा बत्तखों की तुलना में काफी अधिक थी तथा अजित एवं अन्य (2009) द्वारा भी केरल की चारा और चेम्बल्ली बत्तखों के लिए इसी प्रकार के मान दर्ज किए गए। जबकि, असम की नागेश्वरी बत्तखों में, जमान एवं अन्य (2007) द्वारा नर और मादा की टांगों की औसत लंबाई क्रमशः 6.67±0.71 और 6.12±0.68 सेंमी. दर्ज की गई। शर्मा एवं अन्य (2003) द्वारा 20 सप्ताह की आयु वाले नर और मादा नागेश्वरी बत्तख की टांगों की लंबाई क्रमशः 6.49 और 6.16 सेंमी. तथा विज एवं अन्य (2010) द्वारा पश्चिम बंगाल की देशी बत्तखों की टांगों की लंबाई 5.67 सेंमी. पाई गई। वीरमणि एवं अन्य (2014) द्वारा सन्यासी और कीरी नस्लों में मादा (5.56±0.01) की तुलना में नर बत्तखों की टांगों की लंबाई (5.61±0.02) उल्लेखनीय रूप से अधिक पाई गई। देशी बत्तखों की विभिन्न नस्लों की टांगों की लंबाई में अंतर, देशी जर्मप्लाज्म में भिन्नता और पालन-पोषण वातावरण के प्रति अनुकूलनशीलता के कारण हो सकता है।

तालिका 2. झारखंड की स्थानीय कोड़ो बत्तखों के मापे गए विभिन्न अंगों के मात्रात्मक लक्षणों का माध्य (±एस.ई.), (सेंमी.)

	नर	मादा
मापदंड	औसत	औसत
चोंच की लंबाई	6.22^{b}±0.06	5.72^{a}±0.09
चोंच की चौड़ाई	3.17±0.05	3.14±0.04
सिर की चौड़ाई	2.72±0.07	2.65±0.07
गर्दन की लंबाई	13.60^{b}±0.28	12.25^{a}±0.29
शरीर की लंबाई	36.85^{b}±0.50	35.08^{a}±0.50
डैनों का विस्तार	35.77^{b}±0.42	34.58^{a}±0.47
टांगों की लंबाई	6.18^{b}±0.05	6.09^{a}±0.06

एक पंक्ति में अलग-अलग सुपरस्क्रिप्ट वाले आंकड़े विशेष रूप से भिन्न हैं (P<0.05)

प्रजनन और उत्पादन लक्षण

प्रथम बार अंडे देने की औसत आयु 187.02±2.20 थी। प्रथम अंडे देने की औसत आयु के वर्तमान निष्कर्ष इस्लाम एवं अन्य (2002), शर्मा एवं अन्य (2003), ज़मान एवं अन्य (2005) तथा कमल एवं अन्य (2020) की रिपोर्टों से कम पाई गई। शर्मा एवं अन्य (2003) ने प्रथम अंडे देने की औसत आयु 181.94±1.57 दिन पाई। अन्य अध्ययनों में, ज़मान एवं अन्य (2005) तथा इस्लाम एवं अन्य (2002) ने बताया कि नागेश्वरी बत्तख की प्रथम अंडे देने की औसत आयु (ए.एफ.ई.) क्रमशः 174-198 दिन और 180-195 दिन के बीच 188 दिन पाई। कमल एवं अन्य (2020) ने बिहार की मैथिली बत्तख में यह आयु 191.12±1.63 दिन की सूचना दी। गिरी एवं अन्य (2014) द्वारा ओडिशा की देशी बत्तख में प्रथम अंडे देने की आयु 167±4.48 दिन देखी गई। पाढ़ी (2010) ने देशी बत्तख के झुंड के प्रथम अंडे देने की आयु 118 ±1.15 दिन बताई। यह भिन्नता नस्ल में अंतर के कारण हो सकती है।

वर्तमान अध्ययन में प्रति वर्ष दिए गए अंडों की संख्या (संख्या) 66.92±2.00 पाई गई। ओडिशा की देशी बत्तख में 40 सप्ताह और 72 सप्ताह की आयु तक अंडा उत्पादन क्रमशः 64.36 और 165.27 अंडे प्रतिदिन बताया गया (पाढ़ी एवं अन्य, 2009)। गिरी एवं अन्य (2014) ने ओडिशा की देशी बत्तखों में 40वें सप्ताह की आयु तक मुर्गी का प्रतिदिन अंडा उत्पादन (%) 57.81% पाया। पाढ़ी (2010) द्वारा किए गए एक अन्य परीक्षण में पाया गया कि 40 सप्ताह की आयु तक अंडा उत्पादन 65.09 अंडे (±2.30) और 60 सप्ताह की आयु तक अंडा उत्पादन 113.66 अंडे (±4.04) था। पश्चिम बंगाल की स्थानीय बत्तख (हलदर एवं अन्य 2007) में प्रति बत्तख प्रति वर्ष औसत अंडा उत्पादन 96.2 अंडे था, जबकि बिहार की स्थानीय बत्तख मैथिली (कमल एवं अन्य 2020) में यह 54.6 था। मोर्दुज्जमान एवं अन्य (2015) ने बांग्लादेश की नागेश्वरी बत्तख में यह संख्या 46 से 201 अंडे और औसत अंडा उत्पादन 173.63±3.39 अंडे की सूचना दी।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से झारखंड की स्थानीय बत्तखों में रूपात्मक (फेनोटाइपिक) लक्षणों में बहुत कम विविधता का पता चला। हालाँकि, झारखंड की बत्तखें अपनी रूपात्मक विशेषताओं में आकर्षक काले और सफेद पंखों के रंग पैटर्न के साथ अद्वितीय हैं। बत्तखें स्थानीय कृषि-जलवायु परिस्थितियों से अनुकूलित हैं और बत्तख पालकों से कम निवेश की आवश्यकता है। यद्यपि कोड़ो बत्तखों की उत्पादकता अन्य स्थानीय बत्तख जननद्रव्यों की तुलना में कम है तथापि अगली पीढ़ी के माता-पिता के रूप में श्रेष्ठ बत्तखों का उपयोग करके चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से इनके प्रदर्शन में सुधार की संभावना है।

आभार

लेखक वर्तमान शोध कार्य हेतु आवश्यक सुविधाएँ और निधि उपलब्ध कराने तथा कार्य सम्पादन हेतु मंत्र प्रदान करने के लिए भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना, बिहार के निदेशक के आभारी हैं।

संदर्भ

- अजित बी.बी., पडवाल एन.पी., अनीश डी., दीपा जी.एम., एवं पीतांबरन पी.ए. 2009. केरल की कुट्टनाड बत्तखों में चोंच की लंबाई और टांग की लंबाई का मूल्यांकन। चतुर्थ विश्व जलपक्षी सम्मेलन का कार्यवृत्त, त्रिचूर, भारत, 11-13 नवंबर, पृष्ठ 173.
- बीएएचएस. 2019. बुनियादी पशुपालन और मत्स्य पालन सांख्यिकी। पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन विभाग, कृषि मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली।
- बघेल एल के. 2007. छत्तीसगढ़ की गहन और मुक्त-श्रेणी उत्पादन प्रणाली के अंतर्गत बनाए गए मस्कॉवी बत्तख (नाग-हंस) का फेनोटाइपिक लक्षण वर्णन और उत्पादन प्रदर्शन। मास्टर थीसिस। रायपुर: इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय।
- बनर्जी एस. 2013. पश्चिम बंगाल, भारत की बत्तख और हंस नस्लों के रूपात्मक लक्षण। पशु आनुवंशिक संसाधन 52: 1–16।
- क्यूस्टा एम. एल. 2008. मुर्गियों और बत्तखों के फेनोटाइपिक लक्षण वर्णन के लिए चित्रात्मक मार्गदर्शन। एफएओ. जीसीपी / आरएएस / 228 / जीईआर कार्य पत्र संख्या 15. रोम।
- एफएओ 2007. में: खाद्य और कृषि के लिए विश्व के पशु आनुवंशिक संसाधनों की स्थिति। रोम: बारबरा रिस्कोव्स्की और डैफिड पिलिंग।

- एफएओ 2012. पशु आनुवंशिक संसाधनों का फेनोटाइपिक लक्षण वर्णन। रोम: एफएओ पशु उत्पादन और स्वास्थ्य दिशानिर्देश संख्या 11।
- फ्रांसेश ए, बिलाल्बा आई, कार्टाना एम. 2011. मुर्गियों के रूपात्मक लक्षण वर्णन की पद्धति और पेनेडेसेंका और एम्पोरडेनेसा नस्लों की तुलना में इसका अनुप्रयोग। पशु आनुवंशिक संसाधन 48:79-84।
- कमल आर., चंद्रन पी. सी., डे ए., भट्ट बी.पी. 2020. बिहार के मध्य गंगा के मैदान में मैथिली बत्तख का लक्षण वर्णन। इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंसेज 90(7): 1018–1023.
- कमल आर, डे ए, चंद्रन पी सी, मोहंता आर के, गिरी एस सी, मोहंती एस, गुप्ता एस के, और बरारी एस के. 2019. ओडिशा की देशी बत्तख का फेनोटाइपिक और मॉर्फोमेट्रिक लक्षण वर्णन। इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंसेज 89(3): 334–336.
- लैटशॉ जे डी, बिशप बी एल. 2001. गैर-आक्रामक मापों का उपयोग करके मुर्गियों के शरीर के वजन और शारीरिक संरचना का अनुमान लगाना। पोल्ट्री साइंस 80:868-873.
- महंता जे डी, सपकोटा डी, मिली डी सी और चक्रवर्ती ए. 2001. असम के लखीमपुर और धेमाजी जिलों में बत्तख पालन पर एक सर्वेक्षण। इंडियन वेटरनरी जर्नल 78(6): 531–32.
- महारानी डी, हरियोनो डी एन एच, पुत्र डीडीआई, ली जेएच, सिदादोलो जे एच पी. 2019. इंडोनेशिया में स्थानीय मादा बत्तख आबादी का फेनोटाइपिक लक्षण वर्णन। जर्नल ऑफ एशिया-पैसिफिक बायोडायवर्सिटी 12(4): 508-514.
- मोरदुज्जमां एम, भुइयां ए के एफ एच, राणा एम, इस्लाम एम आर और भुइयां एम एस ए. 2015. बांग्लादेश में नागेश्वरी बत्तख का फेनोटाइपिक लक्षण वर्णन और उत्पादन क्षमताएँ। बांग्लादेश जर्नल ऑफ एनिमल साइंस 44(2): 92–99.
- मुरुगन एम, गोपीनाथन ए और शिवकुमार टी. 2009. तमिलनाडु के उत्तर पूर्वी कृषि जलवायु क्षेत्र के उत्थिरामेरुर ब्लॉक में देशी बत्तख की किस्में। केरल कृषि विश्वविद्यालय द्वारा 11 से 13 नवंबर तक आयोजित चतुर्थ विश्व जलपक्षी सम्मेलन। पृष्ठ 74–76.
- ओगाह डी.एम., कबीर एम. 2014. मस्कॉवी बत्तखों में उम्र के साथ आकार और आकृति में परिवर्तनशीलता: प्रमुख घटक विश्लेषण। पशुपालन में जैव प्रौद्योगिकी। 30:125-136।
- ओगुटुंजी ए.ओ., अयोरिंडे के.एल. 2015. नाइजीरियाई मस्कॉवी बत्तखों (कैरिना मोस्काटा) का फेनोटाइपिक लक्षण वर्णन। एनिमल जेनेटिक रिसोर्सेज 56:37-45।
- पाढ़ी एम.के. 2014. ओडिशा, भारत की देशी बत्तखों का मूल्यांकन। वर्ल्ड्स पोल्ट्री साइंस जर्नल 3(3): 617-626।
- रेंची पी.जी., नायर जी.आर., नायर आर.एस., नायर बी.आर.के. और उन्नी ए.के.के. 1979. देशी बत्तखों में टांग की लंबाई और शरीर के वजन के बीच संबंध। इंडियन वेटरनरी जर्नल 56: 937-939।
- शर्मा एस.एस., ज़मान जी., गोस्वामी आर.एन., महंत जे.डी. 2003. रेंज की स्थिति में असम की नागेश्वरी बत्तखों के कुछ प्रदर्शन लक्षण। इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंस 73: 831–32।
- शर्मा एस.एस., ज़मान जी., गोस्वामी आर.एन., रॉय टी.सी. और महंत जे.डी. 2002. असम की नागेश्वरी बत्तख के अंडों की शारीरिक विशेषताएँ। इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंसेज 72(12):1177-1178।
- वीरमणि पी., प्रभाकरन आर., सेलवन एस.टी. 2014. तमिलनाडु की देशी बत्तखों की आकृति विज्ञान और आकारमिति। ग्लोबल जर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च 14: 17-20।
- विज पी.के., तांतिया एम.एस., पान एस. और विज आर.के. 2010. देशी बत्तखों की आकारमिति और अंडों की विशेषताएँ। जर्नल ऑफ लाइवस्टॉक बायोडायवर्सिटी 2(2): 77–80।
- याकूबु ए, कांकुका एफ जी, उगबो एस बी. 2011. नाइजीरिया के दो कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों से मस्कॉवी बत्तखों के आकारमितीय लक्षण। ट्रॉपिकल्टुरा 29:121-124।
- ज़मान जी, गोस्वामी आर एन, अज़ीज़ ए, नाहरदेका एन और महंत जे डी. 2007. असम की नागेश्वरी बत्तख के शरीर के वजन और टांग की लंबाई पर अध्ययन। इंडियन जर्नल पोल्ट्री साइंस 42(1): 79–80।

***

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में वर्ष 2024 के दौरान राजभाषा संबंधी महत्वपूर्ण गतिविधियाँ

अनुप दास[1], आशुतोष उपाध्याय[1], बाल कृष्ण झा[1], शिवानी[1], ज्योति कुमार[1], रजनी कुमारी[1], कुमारी शुभा[1], अणिमा प्रभा[1] एवं उमेश कुमार मिश्र[1]

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना[1] ; कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची[1]

शुभारंभ

भारत मंडपम, नई दिल्ली में दिनांक 14-15 सितम्बर, 2024 को हिन्दी दिवस एवं चतुर्थ अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन का भव्य संयुक्त आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता माननीय केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह जी ने की। यह समारोह "राजभाषा हीरक जयंती" के रूप में अत्यंत उत्साह और गौरव के साथ मनाया गया, जिसमें देशभर के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, संस्थानों एवं सार्वजनिक उपक्रमों के राजभाषा से जुड़े अधिकारियों एवं कर्मियों ने भाग लिया।

इस अवसर पर राजभाषा नीति के प्रभावी कार्यान्वयन, तकनीकी माध्यमों में हिंदी के प्रयोग, तथा सरकारी कामकाज में हिंदी के व्यापक उपयोग को लेकर विस्तृत विचार-विमर्श हुआ। इस ऐतिहासिक अवसर पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना से हिंदी अनुवादक श्री उमेश कुमार मिश्र एवं वैयक्तिक सहायक श्री आकाश पटेल ने प्रतिनिधित्व करते हुए सक्रिय सहभागिता की।

प्रतियोगिता

संस्थान में हिंदी पखवाड़ा के दौरान निबंध, यूनिकोड टंकण, व्याकरण, शब्दार्थ, प्रश्नमंच, आशुभाषण, स्वरचित काव्य पाठ, अंताक्षरी एवं हिंदी कार्यशाला जैसी बहुआयामी प्रतियोगिताएँ एवं कार्यक्रम आयोजित किए गए, जिनमें वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सक्रिय भागीदारी रही। प्रतियोगिताओं के समुचित संचालन हेतु विभिन्न समन्वयक एवं निर्णायक भी बनाए गए थे। हिंदी और हिंदीतर भाषियों के लिए पृथक मूल्यांकन व्यवस्था सुनिश्चित की गई थी, जिससे सहभागिता और अधिक समावेशी बन सके।

समापन-सह-पुरस्कार वितरण समारोह

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में हिंदी पखवाडा-2024 का समापन समारोह दिनांक 30 सितम्बर 2024 को संपन्न हुआ। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. नज़ीर अहमद, पूर्व कुलपति, एस.के.यू.ए.एस.टी., कश्मीर; विशिष्ट अतिथि के रूप में डॉ. टी. के. बेहेरा, निदेशक, भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु और विशेष अतिथि के रूप में डॉ. आर. के. यादव, प्रोफ़ेसर-सह-प्रधान वैज्ञानिक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली उपस्थित थे | सभी गणमान्य अतिथियों ने संस्थान द्वारा राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में किए जा रहे कार्यों की प्रशंसा की और कहा कि आगे भी इसी तरह सरल हिंदी भाषा का प्रयोग कर इसे जन-जन तक पहुंचाते रहें |

डॉ. शिवानी, प्रधान वैज्ञानिक ने मंच का संचालन करते हुए उपस्थित सभी गणमान्य अतिथियों एवं कर्मियों के प्रति आभार व्यक्त किया, जिसके उपरांत डॉ. आशुतोष उपाध्याय, प्रभागाध्यक्ष, भूमि एवं जल प्रबंधन ने संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति और राजभाषा हिंदी की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए इस पखवाड़ा में दिनांक 14.09.2024 से 29.09.2024 तक आयोजित प्रतियोगिताओं के बारे में जानकारी दी।

संस्थान के निदेशक डॉ. अनुप दास ने अपने अभिभाषण में राजभाषा हिंदी में अधिकाधिक कार्यालयी कार्य करने पर बल दिया | उन्होंने बताया कि हमारा संस्थान 'क' क्षेत्र में आता है। अतः, यह हम लोगों नैतिक एवं संवैधानिक जिम्मेदारी है कि हम अपने सभी कार्यालयीन कार्य 100% हिंदी में ही करें, ताकि राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा दिए गए लक्ष्य को पूरा कर सकें। उन्होंने सभी वैज्ञानिकों को सरल हिंदी का प्रयोग करते हुए कृषि से संबंधित तकनीकों को संकलित एवं प्रकाशित करने के लिए भी प्रोत्साहित किया | कार्यक्रम में गणमान्य अतिथियों एवं निदेशक डॉ. दास के हाथों संस्थान के अधिकारियों और कर्मचारियों को हिंदी पखवाड़ा के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में प्रदर्शन के आधार पर उन्हें प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं सांत्वना पुरस्कार प्रदान कर उत्साहवर्धन किया गया।

कार्यक्रम के दौरान डॉ. आशुतोष उपाध्याय, प्रभागाध्यक्ष, भूमि एवं जल प्रबंधन ने अपने प्रेरणात्मक हिंदी कविता से और डॉ. तन्मय कुमार कोले, वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं डॉ. अभिषेक कुमार, वैज्ञानिक ने हिंदी गीत से सभागार में उपस्थित सभी कर्मियों का दिल जीत लिया।

पखवाड़ा कार्यक्रम के सफल आयोजन में डॉ. रजनी कुमारी, डॉ. ज्योति कुमार, डॉ. कुमारी शुभा, श्रीमती प्रभा कुमारी, हिंदी अनुवादक उमेश कुमार मिश्र तथा प्रशासनिक एवं तकनीकी अधिकारियों की सराहनीय भूमिका रही। राष्ट्रगान के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

राजभाषा संबंधी प्रमुख उपलब्धियाँ:-

- संस्थान एवं अधीनस्थ केंद्र में राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) का अनुपालन किया गया|
- हिंदी में प्राप्त पत्रों के उत्तर हिंदी में ही दिए गए|
- नगर राजभाषा कार्यान्वन समिति की छमाही बैठक में संस्थान द्वारा भाग लिया गया|
- प्रत्येक तिमाही में हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया|
- 'समृद्ध कृषि द्वारा विकसित भारत' विषय पर कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें बिहार कृषि विश्वविद्यालय, भागलपुर के वैज्ञानिकों ने भी सहभागिता की|
- हिंदी पत्रिका "अक्षय खेती' का प्रकाशन किया गया|
- संस्थान में आयोजित विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का राजभाषा हिंदी में प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से प्रचार-प्रसार किया गया|
- संस्थान द्वारा तिमाही राजभाषा प्रगति रिपोर्ट परिषद मुख्यालय एवं नगर राजभाषा कार्यान्वन समिति को भेजी गई तथा उक्त रिपोर्ट को राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के वेबसाइट में भी अपलोड किया गया|
- संस्थान में हिंदी पखवाड़ा एवं विभिन्न हिंदी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया, जिसमें विजेताओं को नकद पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र से सम्मानित किया गया|

हिंदी प्रकाशन :

पत्रिका : अक्षय खेती

प्रसार पुस्तिका:

- सूखे किण्वित चावल से देसी मुर्गियों का आहार लागत प्रभावी एवं स्थाई विकल्प
- केंद्रीय योजनाओं द्वारा कृषक-सशक्तिकरण

तकनीकी बुलेटिन :

- वैज्ञानिक विधि से सूर्यमुखी की खेती
- सूक्ष्म पोषक तत्वों के कार्य
- उत्तरी छोटानागपुर पठारी क्षेत्रों में आलू की वैज्ञानिक खेती
- स्वच्छ पशुशाला
- थनैला रोग
- किसानों के लिए सरकारी योजनाएं

KRISHI JAGRAN

Home / News / पटना में हुआ हिन्दी पखवाड़ा-2024 का समाप-

पटना में हुआ हिन्दी पखवाड़ा-2024 का समापन, प्रतियोगियों को किया गया सम्मानित!

पटना में हिंदी पखवाड़ा-2024 का समापन समारोह 30 सितंबर 2024 को संपन्न हुआ. कार्यक्रम में मुख्य अतिथि, विशिष्ट अतिथि और विशेष अतिथि उपस्थित रहें. सभी गणमान्य ने संस्थान द्वारा राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में किए जा रहे कार्यों की प्रशंसा की.

24X7 खबर आपकी, खबर हमारी।

कृषि अनुसंधान परिसर पटना में हिन्दी पखवाड़ा - 2024 का समापन-सह-पुरस्कार वितरण समारोह

कृषि अनुसंधान परिसर पटना में हिन्दी पखवाड़ा - 2024 का समापन-सह-पुरस्कार वितरण समारोह

संस्थान के कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केंद्र, राँची में वर्ष 2024 के दौरान राजभाषा संबंधी मुख्य गतिविधियाँ

1. कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची में दिनांक 14 से 30 सितंबर, 2024 के दौरान हिन्दी पखवाड़ा का सफल आयोजन किया गया। इसके अंतर्गत निबंध, काव्य, शब्दार्थ, लोकगीत, प्रश्नोत्तरी, अंताक्षरी, यूनिकोड टंकण एवं वार्षिक कार्य मूल्यांकन प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया पखवाड़ा का उद्घाटन करते हुए केन्द्र प्रधान डॉ. अरुण कुमार सिंह ने सभी कार्मिकों को हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया और हिन्दी पखवाड़ा में उत्साहपूर्वक भाग लेने का आह्वान किया। इसके अंतर्गत हिन्दीभाषी और हिन्दी पर भाषी दो वर्गों में निबंध प्रतियोगिता का निबंध लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इसी प्रकार काव्य, शब्दार्थ, यूनिकोड टंकण, लोकगीत, अंताक्षरी और प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया गया जिनमें कार्यालय के कार्मिकों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। कार्यालय में पूरे वर्ष में हिन्दी में सर्वाधिक कार्य करने वाले कर्मचारियों को वार्षिक कार्य मूल्यांकन प्रतियोगिता के अंतर्गत चयनित किया गया। हिन्दी पखवाड़ा के समापन-सह-पुरस्कार वितरण समारोह में प्रतियोगिताओं के विजेता कार्मिकों को पुरस्कृत किया गया।

2. दिनांक 04.10.24 को हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें सेंट जेवियर्स कॉलेज के हिन्दी विभाग के पूर्व-विभागाध्यक्ष एवं प्रख्यात शिक्षाविद्, लेखक एवं संस्कृतिकर्मी डा. कमल कुमार बोस द्वारा "हिन्दी की प्रयोजनमूलकता" पर व्याख्यान प्रदान किया गया। उन्होंने कहा कि हिन्दी में हमारे सभी भावों को स्पष्टता के साथ व्यक्त करने की पूरी-पूरी क्षमता है। अनेक शब्दों एवं वाक्यों के उदहारण द्वारा उन्होंने हिन्दी को अनुवाद की भाषा से ऊपर उठकर सरल शब्दों वाली व्यावहारिक हिन्दी के रूप में उपयोग में लाने की सलाह दी। निर्मला कॉलेज, रांची की हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्ष डॉ. रेणु सिन्हा द्वारा "स्वतंत्र भारत में हिन्दी की स्थिति" विषय पर व्याख्यान एवं प्रशिक्षण प्रदान किया गया। उन्होंने केन्द्र के वैज्ञानिकगण से जनसाधारण के बीच सरल एवं सुबोध हिन्दी का उपयोग करने का आह्वान किया।

3. कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची द्वारा वित्तीय वर्ष 2024-25 के दौरान किसानों को पंद्रह प्रशिक्षण प्रदान किए गए जो पूर्णतः हिन्दी में प्रदान किए गए। प्रशिक्षण की सामग्री एवं प्रमाण पत्र भी हिन्दी में प्रदान किए गए।

4. केन्द्र पर दिनांक 19-20 मार्च को "किसान समृद्धि मेला" का आयोजन किया गया जिसमें समस्त विशेषज्ञों द्वारा हिन्दी में व्याख्यान एवं प्रशिक्षण प्रदान किया गया। मेला में द्विभाषी नामपट्ट प्रदर्शित किए गए।

5. केन्द्र पर दिनांक 19.12.2024 को "झारखंड में एफ.पी.ओ. को सुदृढ़ करने के लिए हितधारकों का ओरिएंटेशन कार्यक्रम" पूर्णतः हिन्दी में आयोजित किया गया।

6. केन्द्र पर दिनांक 19.03.2024 को "किसान समृद्धि मेला" का आयोजन किया गया जिसमें समस्त विशेषज्ञों द्वारा हिन्दी में व्याख्यान एवं प्रशिक्षण प्रदान किया गया। मेला में द्विभाषी नामपट्ट प्रदर्शित किए गए।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में वर्ष 2024 के दौरान आयोजित महत्वपूर्ण कार्यक्रम / बैठक / संगोष्ठी / कार्यशाला

अनुप दास, आशुतोष उपाध्याय, शिवानी, संजय राजपूत एवं उमेश कुमार मिश्र
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

युवा दिवस

डॉ. एस. के. चौधरी, उप महानिदेशक महोदय की अध्यक्षता में समीक्षा बैठक

गणतंत्र दिवस

"टिकाऊ कृषि एवं हरित विकास" विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी

स्थापना दिवस

विश्व जल दिवस

विश्व पर्यावरण दिवस

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में वर्ष 2024 के दौरान आयोजित महत्वपूर्ण कार्यक्रम / बैठक / संगोष्ठी / कार्यशाला

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस

पंचवर्षीय समीक्षा बैठक

संस्थान अनुसंधान परिषद की बैठक

साप्ताहिक संगोष्ठी

स्वतंत्रता दिवस

गाजरघास जागरूकता सप्ताह

हिंदी पखवाड़ा-2024

हिंदी कार्यशाला

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में वर्ष 2024 के दौरान आयोजित महत्वपूर्ण कार्यक्रम / बैठक / संगोष्ठी / कार्यशाला

स्वच्छता अभियान

"धान की सीधी बुआई" विषय पर पारस्परिक बैठक

संस्थान उद्योग बैठक

एक पेड़ माँ के नाम

दीक्षारम्भ

विश्व खाद्य दिवस

सामूहिक धान कटाई

सत्यनिष्ठा शपथ

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में वर्ष 2024 के दौरान आयोजित महत्वपूर्ण कार्यक्रम / बैठक / संगोष्ठी / कार्यशाला

डॉ. त्रिलोचन महापात्र, अध्यक्ष, पौधा किस्म और कृषक संरक्षण प्राधिकरण की अध्यक्षता में आईएआरआई पटना हब के छात्रों के साथ संवाद सत्र

राष्ट्रीय किसान दिवस

विश्व मृदा दिवस

स्वच्छता अभियान के तहत चित्रकला प्रतियोगिता

आईएआरआई पटना हब के छात्रों के लिए सांस्कृतिक कार्यशाला

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में वर्ष 2024 के दौरान गणमान्य अधिकारियों/किसानों द्वारा प्रक्षेत्र भ्रमण

अनुप दास, आशुतोष उपाध्याय, शिवानी, संजय राजपूत एवं उमेश कुमार मिश्र
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में वर्ष 2024 के दौरान गणमान्य अधिकारियों/किसानों द्वारा प्रक्षेत्र भ्रमण

अख़बारों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

अनुप दास, आशुतोष उपाध्याय, शिवानी, उज्ज्वल कुमार, अभय कुमार, धीरज कुमार सिंह, संजय राजपूत एवं उमेश कुमार मिश्र
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

राष्ट्रीय खबर पटना

रासायनिक उर्वरकों का त्याग कर प्राकृतिक खेती पर जोर दें किसान : राज्यपाल

DNB

केन्द्रीय राज्य मंत्री रामनाथ ठाकुर ने कृषि अनुसंधान परिसर पटना में मत्स्यपालन के लिए निर्मित बायोफ्लॉक इकाई का लोकार्पण एवं वृक्षारोपण किया

भंडाफोड़

प्राकृतिक खेती पर जोर दें किसान : राज्यपाल

भंडाफोड़

सरसों का अग्रिम पंक्ति प्रत्यक्षण एवं कृषि आदानों का वितरण

मिट्टी की जांच के साथ उचित मात्रा में उर्वरक का प्रयोग करें किसान: डॉ. हिमांशु पाठक

भविष्य की चुनौतियों से निपटने के लिए अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियाँ जरूरी : टीम

नवादा-शेखपुरा भास्कर

कृषि में आधुनिक तकनीक के महत्व के बारे में दी जानकारी

धान की उन्नत खेती के बारे में किसानों को दी जानकारी

धान के लिए सेंटर ऑफ एक्सीलेंस बनाने का प्रस्ताव

पटना। आइसीएआर पटना में मंगलवार को धान की सीधी बुआई तकनीक विषय पर संवाद आयोजित किया गया। इसमें अंतरराष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान फिलीपींस और बिल एंड मिलिंडा गेट्स फाउंडेशन के वैज्ञानिकों ने भी भाग लिया। मुख्य अतिथि डॉ. हैरी पटेलिन ने कहा कि सीधी बुआई वाली धान में खर-पतवार प्रबंधन के लिए प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए। संस्थान में धान प्रजनन कार्यक्रम के लिए जीनोमिक प्रेडिक्शन तकनीक का उपयोग करने की बात कही।

सहारा

खबरें एक नजर में

पंच वार्षिक समीक्षा टीम द्वारा किया गया कृषि विज्ञान केन्द्र का भ्रमण

आज पटना

लघु और सीमांत किसानों के लिए समेकित मत्स्यपालन आवश्यक : डॉ. अनुप दास

राजधानी

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के तहत आठ परियोजनाओं की समीक्षा व हितधारकों के साथ बैठक सम्पन्न

दैनिक भास्कर पटना 04-01-2024

नई तकनीक • आईसीएआर पटना में प्राकृतिक खेती के लिए चल रहा है रिसर्च

प्राकृतिक खेती के लिए नई किस्म के बीजों को किया जाएगा विकसित

अख़बारों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

एक पेड़ मां के नाम वैश्विक अभियान के तहत कृषि अनुसंधान परिसर ने किया पौधारोपण

भंडाफोड

मंगलवार, 03 सितम्बर 2024 पटना

जलवायु अनुकूल कृषि कार्यक्रम के द्वारा धान परती भूमि प्रबंधन एवं किसानों का सशक्तिकरण

मशरूम उत्पादन की दी गयी जानकारी

दैनिक भास्कर रांची 03-10-2024

स्वच्छता ही सेवा कार्यक्रम में कर्मियों को मिला सम्मान

आय दोगुनी करने किसानों को नई तकनीकी अपनाने की सलाह

कृषि अनुसंधान परिसर में किया गया विश्व खाद्य दिवस -2024 का आयोजन

क्रांतिकारी संकेत जशपुर 18/10/2024

दलहन एवं तिलहन फसलों के ऊपर प्रत्यक्षण कार्यक्रम एवं किसान गोष्ठी आयोजित

पोषण वाटिका से महिलाएं रह सकती हैं स्वस्थ

दैनिक भास्कर 16-09-2024

किसानों को आय बढ़ाने के तरीके बताए

नामकुम के प्लांडू अनुसंधान केन्द्र में केन्द्र की समिति ने दौरा किया

धान–परती प्रणाली प्रबंधन पर एक दिवसीय प्रशिक्षण का हुआ आयोजन

किसानों को फसल विविधीकरण के महत्व की जानकारी मिली

अख़बारों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

'एक पेड़ मां के नाम' अभियान के तहत कृषि अनुसंधान परिसर में हुआ पौधारोपण

किसान उत्पादक संगठन एक उत्पाद पर ध्यान केन्द्रित करें : डा. दास

बेतिया भास्कर 17-03-2024

किसानों को पशु पालन और उन्नत किस्म की खेती की दी गई ट्रेनिंग

कृषि अनुसंधान परिसर पटना में हिन्दी पखवाड़ा - 2024 का समापन-सह-पुरस्कार वितरण समारोह

कृषि अनुसंधान परिसर पटना की पहल पर दो दिवसीय "जनजातीय कृषक सम्मेलन" सम्पन्न

मशरूम उत्पादन कर युवक होंगे समृद्ध

किसानों को रबी फसल में उर्वरक प्रबंधन की दी गई जानकारी

कृषि से संबंधित कई क्षेत्रों में बेहतर भविष्य

किसानों को जलवायु अनुकूल कृषि अपनाने का आह्वान

02.03.2024 05

किसानों को दिया धान परती प्रणाली प्रबंधन पर प्रशिक्षण

ARMY PUBLIC SCHOOL RANCHI

दैनिक भास्कर रांची 06-03-2024

पलांडु में ओडिशा व नामकुम के किसानों ने लिया प्रशिक्षण

नामकुम | कृषि अनुसंधान केंद्र पलांडु में सप्ताहभर से चल रहे ओडिशा और झारखंड के अनुसूचित जनजाति के किसानों का समेकित कृषि प्रणाली जीविका सुरक्षा प्रशिक्षण मंगलवार को संपन्न हो गया।

यह प्रशिक्षण भारतीय जैव-प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा वित्तपोषित अनुसूचित जाति उप योजना तथा अनुसूचित जनजाति उप योजना के अंतर्गत दिया गया। इसमें ओडिशा के सुंदरगढ़ के 25 और नामकुम के पलांडु गांव के 25 किसान शामिल हुए। प्रशिक्षण के अंत में पाठ्यक्रम निदेशक डॉ. धीरेंद्र कुमार यादव ने बदलती जलवायु के परिवेश में समेकित कृषि अपनाने के उपायों पर प्रकाश डाला। प्रमुख वैज्ञानिक डॉ. आरएस पान ने किसानों को जीविका में सुधार के लिए सब्जियों की खेती में विविधता लाने की सलाह दी। प्रमुख वैज्ञानिक डॉ. एसके नायक ने किसानों को समेकित पोषक प्रबंधन द्वारा फसल का उत्पादन बढ़ाने का सुझाव दिया। वैज्ञानिक डॉ. मीनू कुमारी ने सब्जियों की खेती की उन्नत तकनीक बताई। डॉ. रीना कुमारी कमल ने समेकित कृषि प्रणाली में कुक्कुट पालन और बकरी पालन को जोड़ने पर बल दिया। प्रमुख वैज्ञानिक डॉ. अजीत कुमार झा ने किसानों को मत्स्य उत्पादन, कीट वैज्ञानिक डॉ. जयपाल सिंह चौधरी ने फसलों में कीट प्रबंधन और डॉ. रेशमा शिंदे ने जैविक खाद बनाने के गुर सिखाए।

दैनिक भास्कर 2024-09-17 रामगढ़ (3)

घर समेत आसपास मुहल्ले में ना गंदगी करेंगे और ना ही होने देंगे : डॉ. सुधांशु

दैनिक भास्कर रामगढ़ 05-10-2024

मांडू में सफाई कर्मियों को किया गया सम्मानित

कृषि अनुसंधान परिसर के कर्मियों ने ली स्वच्छता की शपथ

अख़बारों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

छात्र-छात्राओं ने कृषक महिलाओं के साथ सामूहिक धान कटनी की

रामगढ़ 25-11-2024

मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए जैविक खाद का प्रयोग बहुत जरूरी : डॉ. अनूप दास

कृषि विज्ञानियों ने रबी फसल के लिए किया जागरूक

बेतिया भास्कर 21-03-2024

मसाला की खेती का वैज्ञानिक ने किया निरीक्षण, दिए निर्देश

मसाला में अन्य फसलों की तुलना में कीट, बीमारी का प्रकोप कम होता है

स्वर्ण श्रेया धान की प्रजाति जलवायु अनुकूल, उत्पादन क्षमता भी अधिक

कृषि में नए प्रयोग पर जोर देने की जरूरत

जहानाबाद / अरवल भास्कर 06-08-2024

पशु चिकित्सा शिविर में 120 मवेशियों का किया इलाज

भंडाफोड

'भविष्य की चुनौतियों से निपटने के लिए अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियाँ जरूरी' : पंचवर्षीय समीक्षा टीम

एमबीए के छात्रों ने केविके का किया भ्रमण

सेमिनार में कृषि विज्ञान केंद्र में 'मृदा की देखभाल एवं मृदाक्षरण रोकने के उपाय' पर हुई चर्चा

'किसान मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनाए रखें'

कृषि अनुसंधान केंद्र पलांडू में विकसित सोयाबीन का बीज का हुआ वितरण

दैनिक भास्कर 2024-09-19 रामगढ़ (3)

वैज्ञानिकों ने जागरूकता रैली निकाल कर लोगों को दिया स्वच्छता का संदेश

रामगढ़ 10-06-2024

कृषि अनुसंधान परिसर पटना के कर्मियों ने सत्यनिष्ठा की शपथ ली

वैज्ञानिक तरीके से दी मत्स्यपालन की सलाह

पटना. आइसीएआर, पटना में सोमवार को वैज्ञानिक विधि से मत्स्यपालन विषय पर पांच दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किया गया.

04-11-2024

प्राकृतिक खेती के लिए नई किस्म के बीजों को किया जाएगा विकसित

नवादा-शेखपुरा भास्कर

कृषि तकनीक का उपयोग कर उपज बढ़ाएं किसान

नोट

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर

पोस्ट ऑफिस : बिहार वेटनरी कॉलेज, पटना-800 014 (बिहार)